Pratibandhit Hindi Sahitya Aur Itihas Lekhan Kee Samsyayen

A Thesis Submitted to the University of Hyderabad in Partial Fulfilment for the Award of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

IN

Department of Hindi

BY

Ashutosh Kumar Pandey

15HHPH03

Department of Hindi

School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad – 500 046

March 2021

‘प्रतिबंधित हिंदी साहित्य और इतिहास लेखन की समस्याएं’

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबंध

2021

शोधार्थी

आशुतोष कुमार पाण्डेय

15HHPH03

शोध-निर्देशक

प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500046

तेलंगाना

भारत

DECLARATION

I, Ashutosh Kumar Pandey (15HHPH03), hereby declare that this thesis titled "**Pratibandhit Hindi Sahitya Aur Itihas Lekhan Kee Samsyayen**", submitted to the University of Hyderabad, under the guidance and supervision of Professor Gajendra Kumar Pathak, Department of Hindi, University of Hyderabad, Hyderabad, India, is a bonafide research work which is also free from plagiarism. I also hereby declare that it has not been submitted in full or in part to this university or any other university or institute for the award of any degree or any diploma, in India or any place in the world. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date:

Hyderabad

Countersigned by:

Professor Gajendra Kumar Pathak

(Research Supervisor)

Signature of the Candidate

Name: Ashutosh Kumar Pandey

Reg No: 15HHPH03

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis titled "**Pratibandhit Hindi Sahitya Aur Itihas Lekhan Kee Samsyayen**" submitted by **Ashutosh Kumar Pandey** bearing registration number **15HHPH03** in partial fulfilment of the requirements for the award of **Doctor of Philosophy** in **Department of Hindi** is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted in part or in full to this university or any other university or institution for the award of any degree or diploma.

Parts related to this thesis have been:

A. published in the following:

1. Ashutosh Kumar Pandey. "Aaina Kiyun N Doon Ki Tamasha Khe Jise : Itihas, Mukti Aandolan Aur Pratibandhit Hindi Kahaniyan". Madhumati (2020): 59-71. (ISSN 2321-5569).
2. Ashutosh Kumar Pandey. "Sachmuch Main Andhere Yug Mein Jee Rha Hoon: Swadheenta Aandolan Hindi Kavita Aur Pratibandhit Hindi Kavita". Madhumati(2021): 42-52 (ISSN 2321-5569)

and

B. Presented in the following conferences.

1. Ashutosh Kumar Pandey, "Swadheenta Aandolan Aur Pratibandhit Hindi Natak", at Nehru Memorial Museum & Library, New Delhi on 15th March 2019.
2. Ashutosh Kumar Pandey, "Banned Hindi Poetry And Folklore", at SOAS, University of London on 24th April 2019

Further, the student has passed the following courses towards the fulfilment of Coursework requirement for PhD:

Course Code		Name	Credit	Result
1.	801	Critical Approaches to Research	4	Pass
2.	802	Research Paper (Project work)	4	Pass
3.	826	Ideological Background of Hindi Literature	4	Pass
4.	827	Practical Review of the Texts	4	Pass

The student has also passed M. Phil degree of this university. He studied the following courses in this programme.

Course Code		Name	Grade	Credit	Result
1.	HN701	Research Methodology	C	4	Pass
2.	HN722	Sociology of Literature	B	4	Pass
3.	HN723	Philosophy of History of Literature	B+	4	Pass
4.	HN726	Sahitya Media Aur Sanskriti	B+	4	Pass
5.	HH750	Dissertation	B+	16	Pass

Therefore, the student has been exempted from repeating Research Methodology course (as recommended by the Research Advisory Committee) in his Ph.D. programme.

Supervisor Head of the Department Dean of the School

अनुक्रम

भूमिक :..I-VI

प्रथम अध्याय : ब्रिटिश राज में प्रतिबंध संबंधी कानूनों का इतिहास............. 1-17

क. 1878 अधिनियम 4
ख. 1898 अधिनियम..9
ग. 1910 अधिनियम 12
घ. 1918 अधिनियम 14
ङ. 1930 अधिनियम 15

द्वितीय अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दुस्तानी कविता और लोकगीत 18-77

क. ज़ब्तशुदा गीत : आज़ादी और एकता के तराने 30
ख. आज़ादी के तराने 40
ग. खून के छींटे, मुक्त संगीत, विद्रोहणी और तूफ़ान कविता संग्रह 50
घ. राष्ट्रीय आल्हा, अंग्रेजों की इस तौर से करो बोलती को बंद, अंग्रेजों की अकड़ फूँ निकल गई, अहिंसा का समशीर, राष्ट्रीय आल्हा यानि भगत सिंह की लड़ाई, आग का गोला और आज़ादी का बिगुल कविता संग्रह 69

तृतीय अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दुस्तानी कथा साहित्य 78-141

क. प्रेमचंद और उनकी प्रतिबंधित कहानियाँ..96
ख. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की प्रतिबंधित कहानियाँ 106
ग. मुनीश्वरदत्त अवस्थी की प्रतिबंधित कहानियाँ 115
घ. ऋषभचरण जैन की प्रतिबंधित कहानियाँ 126
ङ. अन्य प्रतिबंधित कहानियाँ.. 131
च. ब्रजेन्द्रनाथ गौड़ का प्रतिबंधित उपन्यास.. 136

चतुर्थ अध्याय : प्रतिबंधित हिन्दी नाटक 142-218

क. कुली-प्रथा 163
ख. पंजाब ट्रेजडी अर्थात ज़ख्मी पंजाब 170
ग. शासन की पोल 177
घ. लाल क्रांति के पंजे में 181

ङ. बरबादिय हिन्द 190
च. रक्तध्वज 201
छ. लवण-लीला 210

पंचम अध्याय : प्रतिबंधित साहित्येतर लेखन........ 219-245

क. देश की बात : सखाराम गणेश देउस्कर 229
ख. देश की बात : देवनारायण द्विवेदी 238

- ***उपसंहार 246-259***

- ***संदर्भ ग्रन्थ 260-264***

भूमिका

शासक अपने वर्चस्व और सत्ता को मजबूत करने के लिए अन्य उपकरणों के साथ 'प्रतिबन्ध' नामक उपकरण का सहारा भी लेता है। भारत में अंग्रेजी राज के दौरान इस उपकरण का अंग्रेजी शासकों ने खूब सहारा लिया । जिसके नतिजन 'विभिन्न भारतीय भाषाओं में 3908 पुस्तकें प्रतिबंधित हुई । जिसमें हिंदी में सर्वाधिक 1391 पुस्तकें प्रतिबंधित हुई ।'[1] भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी (उपनिवेश स्थापित करने का पहला प्रयास) की स्थापना से लेकर 20वीं सदी के मध्य तक अंग्रेजी राज कायम था । लेकिन 18वीं सदी के मध्य के बाद इन उपनिवेशवादी ताकतों को अपनी स्थिति भारत में मजबूत करने की जरूरत महसूस हुई । जिसे बिना कानून का सहारा लिए नहीं किया जा सकता था । इसलिए 'केवल 1799ई. से 1931ई. तक प्रेस और सेंसरशिप से सम्बंधित 13 कानून बनाये गये और संशोधित किये गये ।'[2] इन कानूनों के जरिये प्रतिबंधित पुस्तकों के लेखकों के ऊपर मुख्यतः राजद्रोह की धारायें जैसे -124ए और 153ए लगायी जाती थी। अगर हम प्रतिबन्ध के इतिहास को देखें तो सम्राट ऑगस्टस (27ई. पू.- 14 ई.) यूरोप में पहला शासक था 'जिसने लिखे या बोले शब्द को दण्डित करने का प्रयास किया था ।'[3] लेकिन यूरोप में उस दौर में या बाद के दौर तक धर्म और नीति से सम्बंधित पुस्तकें ही प्रतिबंधित या जलाई जाती थी । जिस प्रकार प्रतिबन्ध सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक बदलाव के लिए बहस को दबाने के लिए होता है । उसी प्रकार औपनिवेशिक प्रतिबन्ध मुख्यतः उपनिवेशितों की अभिव्यक्ति की धार कुंद करने का हथियार था । इस शासन ने भारत में निम्नलिखित प्रतिबन्ध के मानदंड निर्धारित किए थे –

- सन् 1857 के आन्दोलन के समर्थन में लिखी हुई कोई रचना प्रकाशित नहीं हो सकती ।

[1] Barrier Gerald N. (F. E.1976), Banned controversial literature and political control in British India 1907-1947, Manohar publication New Delhi : P. 167

[2] Blog Access date 06/05/2018, https://netjrfmasscomm.blogspot.in/2010/04/major-press-laws-enacted-during-british.html

[3] नरेंद्र शुक्ल (प्र.सं. 2017), उपनिवेश, अभिव्यक्ति और प्रतिबन्ध , अनन्य प्रकाशन, दिल्ली : पृष्ठ 14

- अंग्रेजी राज्य के दमन और शोषण के खिलाफ लिखा जाने वाला कोई भी लेख या रचना प्रकाशित नहीं हो सकती।
- दुनिया के किसी भी देश की स्वाधीनता आन्दोलन के समर्थन में लिखा हुआ कुछ भी प्रकाशित नहीं हो सकता।
- रूसी क्रांति और मार्क्सवाद के बारे में कुछ भी जानकारी देने वाली रचना प्रकाशित नहीं हो सकती।

भारत में उपनिवेशवाद आर्थिक आधार पर स्थापित हुआ। और अंत तक उसका आधार आर्थिक शोषण ही रहा। लेकिन इसके साधन के रूप में राजनीतिक और सामाजिक प्रभुत्व को अपनाया गया। संतोष भदौरिया ने जैक वाडिस का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "भारत में अंग्रेजी उपनिवेशवाद शासन का मुख्य उद्देश्य था आर्थिक शोषण करना। यह तथ्य है कि उस समय बिना राजनीतिक पराधीनता के किसी भी देश का आर्थिक शोषण नहीं किया जा सकता था। आर्थिक दोहन की अनिवार्य शर्त है राजनीतिक प्रभुत्व कायम करना। प्रसिद्ध अमरीकी विद्वान जैक वाडिस ने उपनिवेशवाद की व्याख्या करते हुए लिखा है – उपनिवेशवाद का राजनीतिक सारतत्व है-राजसत्ता के आधार पर एक देश द्वारा दूसरे देश को प्रत्यक्ष रूप से पूरी तरह अधीन रखना। इसमें राजसत्ता प्रभुत्वशाली विदेशी शक्ति के हाथों में होती है।"[4] प्रतिबंधित हिंदी साहित्य में इस आर्थिक शोषण का दर्द खूब सुनाई पड़ता है। एक उदाहरण बाबूराम पेंगोरिया की प्रतिबंधित कविता 'जुलाहों के साथ अत्याचार' से लिया जा सकता है –

"देखो भाइयों ध्यान लगा कर भारत में यह अत्याचार।

[4] **Blog Access date 06/05/2018, http://www.hindisamay.com/content/1081/1/संतोष-भदौरिया-आलोचना-प्रतिबंधित-सच-का-आर्थिक-रोज़नामचा.**

किस प्रकार से नष्ट हुआ भारत का सारा व्यापार।

वोल्टस ने अत्याचारों का पूरा विवर्ण दिया बताय।

हमरे अत्याचारों के कारण ही भई दुर्दशा जुलाहिन क्यार।।"[5]

भारतीय इतिहास के अंग्रेजी राज और उसमें मुक्ति के लिए किये गये गए संघर्ष में साहित्य की एक क्रांतिकारी भूमिका है। देश को ब्रिटिश शासन की गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए एक ओर जहाँ आन्दोलनकारी क्रांतिकारी तथा जन समुदाय सक्रिय था वहीं दूसरी ओर इस दौर में लिखे गए तमाम साहित्य, आज़ादी की भावना को प्रेरित करने, साम्राज्यवादी शक्तियों को उखाड़ फेंकने के लिए, जनता को उत्साहित करने में अहम् भूमिका निभा रहा था। सेंसरशिप के बावजूद लेखकों में कोई खौफ न था। सजा भुगतने के बाद भी ये अपने तरीके से साहित्यिक कृतियों के माध्यम से आग उगलते रहे। ऐसा साहित्य शासन के लिए खतरनाक साबित हो रहा था। लिहाजन आज़ादी की भावना से अनुप्राणित सारी रचनाओं को जब्त कर लिया गया। ऐसा सभी भाषाओं में रचित विधाओं (कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ, गीत, लोक-गीत, नज्म-ग़ज़ल) इसके आलावा इतिहास की पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएं, पैम्पलेट, इश्तिहार इत्यादि भी भारी मात्रा में जब्त हुए। इनके प्रतिबंधित होने का मुख्य कारण यह था कि-ये जनता को ब्रिटिश शासन के खिलाफ भड़काने में अपनी अहम् भूमिका निभा रहे थे।

21 वीं सदी में सूचना और तकनीक के इस विकसित दौर में 'प्रतिबंध' शब्द से हम रोज़ रूबरू होते हैं। इस विकसित दौर जब हम18वीं और 19 वीं सदी के 'प्रतिबंध' पर विचार करते हैं तो उस दौर की भयावहता हमारे सामने आती है। यह भय प्रतिबंधित साहित्य में निहित विषय-वस्तु, उत्पीड़न और नियमों-कानूनों आदि से होता है। इसमें हमारे राष्ट्र के बनने सम्बन्धी संघर्ष और सपने निहित है जिनके अनल प्रकार से प्रभावित किया गया है और कई रूप में कुछ आज भी अधूरे हैं। हम 15 अगस्त का आयोजन तो हम साल दर साल करते हैं और स्वाधीनता आन्दोलन में शहीद हुए वीरों को याद करते हैं

[5] प्रतिबंधित हिंदी कविताएं, सम्पा- मधुलिका बेन पटेल, स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली : पृष्ठ 127

। आज भी हमारे देश के बच्चे और युवा प्रतिबंध के कारण अनेक ऐसे वीरों के बलिदान के बारे में नहीं जानते जो प्रतिबंधित होने के कारण हमारे सामने नहीं आ पाए।

यह शोध कार्य मुख्यत: 1857 से 1947 तक के प्रतिबंधित रचनाओं पर केन्द्रित है। इस दौर में साहित्य की सभी विधाओं को प्रतिबंध का सामना करना पड़ा। इस कारण प्रस्तुत शोध का अध्याय विभाजन साहित्यिक विधाओं के आधार किया गया है। शोध का प्रथम अध्याय 'ब्रिटिश राज में प्रतिबंध सम्बन्धी कानूनों का इतिहास' में भारतीय साहित्य ऋग्वेद, अथर्ववेद, बृहदारण्यक उपनिषद और बौद्ध दर्शन से सम्बंधित पुस्तकों के गायब होने और प्रतिबंध जैसी अभिव्यक्तियों को दर्ज किया गया है। इसके आलावा इस अध्याय में ब्रिटिश शासनकाल में प्रतिबंध के लिए प्रयोग में लाये गये अधिनियमों और प्रतिबंध सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख किया गया है।

दूसरे अध्याय 'प्रतिबंधित हिन्दुस्तानी कविता और लोकगीत' में 1857 ई० से सम्बंधित प्रतिबंधित कविताओं और लोकगीतों का विश्लेषण किया गया है। इसके आलावा प्रतिबंधित कविताओं में साम्राज्यवाद के विरोध के विविध स्वरूप को भी चिह्नित किया गया है। इस अध्याय में भारत की आर्थिक शोषण के मुद्दे पर प्रतिबंधित और अप्रतिबंधित कविता का आलोचनात्मक दृष्टि से विश्लेषण किया गया है।

तीसरे अध्याय 'प्रतिबंधित हिन्दुस्तानी कथा साहित्य' अध्याय मुख्यत: प्रतिबंधित कहानियों और उपन्यासों पर केन्द्रित है। इसमें कहानी विधा की इतिहास में हुए विवादों का अध्ययन करने का प्रयास है। इस अध्याय में एक तरफ महात्मा गाँधी का स्वराज की परिकल्पना का प्रतिबंधित लेखकों का समर्थन है तो वहीं दूसरी तरफ, फ्रांसिसी, आयरिश, 1857 और रुसी क्रांति की पक्षधरता का विश्लेषण किया गया है। प्रतिबंधित कहानियों में स्त्री, मजदूर, किसान और फांसी जैसे विषयों और शोषण के विविध आयामों पर भी टिप्पणी प्रस्तुत की गयी है।

चौथे अध्याय प्रतिबंधित नाटकों पर केन्द्रित है। इसमें भारतेंदु युग से प्रसाद युग तक के हिंदी नाटकों को प्रतिबंधित नाटकों के बरक्स रखकर देखने की कोशिश की गई है। इस अध्याय में प्रतिबंधित नाटकों का जनमानस पर कैसा प्रभाव था इसको जानने के लिए सरकारी फाइलों और अदालती दस्तावेजों को भी आधार बनाया गया है। इसके आलावा 1857, रुसी क्रान्ति और जालियांवाला बाग़ हत्याकांड पर प्रतिबंधित लेखकों के दृष्टिकोण का आलोचनात्मक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

पंचम अर्थात अंतिम अध्याय 'प्रतिबंधित साहित्येत्तर लेखन' में सखाराम गणेश देउस्कर, महात्मा गाँधी, मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव, विनायक दामोदर सावरकर, देवनारायण द्विवेदी और सुन्दरलाल की पुस्तकों के हवाले से नवजागरण सम्बन्धी चेतना पर बात की गई है। इन लेखकों ने अंग्रेज शासन द्वारा भारत में विकास के बदले जो लूट की उसको अपनी पुस्तकों का केन्द्रीय विषय बनाया है। इनकी पुस्तकों में अंग्रेजी शासन की शिक्षा व्यवस्था, रेल और आर्थिक लूटों को तटस्थ रूप में दर्ज किया गया। इस अध्याय में तत्कालीन और बाद में हुए शोधों के हवाले से ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

उपसंहार में भारतीय हिंदी साहित्य इतिहास लेखन की शुरूआती प्रयासों और उन पर हुई बहसों की पड़ताल की गई है। इसके लिए ऐतिहासिक जीवनियों, विदेशी यात्रियों का वृतांत और मुस्लिम शासकों के दरबार में रहने वाले लोगों से लेकर प्राच्यवादी और फोर्ट विलियम कॉलेजों से सम्बंधित इतिहासकारों और इतिहास पुस्तकों का उपयोग किया गया है। इसमें भारतीय इतिहासकारों द्वारा लिखित इतिहास ग्रन्थों को भी शामिल किया गया है।

इस विषय पर अंग्रेजी में पहला काम एन. जेराल्ड बैरियर ने 1975 में किया। उनके पुस्तक का नाम Banned Controversial Literature and Political Control in British India 1907-1947 है। इस पुस्तक में उन्होंने प्रतिबंधित साहित्य का वर्गीकरण, प्रतिबन्ध सम्बन्धी कानून और सभी भारतीय भाषाओं में प्रतिबंधित रचनाओं की सूची प्रस्तुत किया है। इसके अलावा 1988 में प्रो. गेंदा सिंह ने 'सेडीशियस

लिट्रेचर इन पंजाब' नाम से पंजाबी प्रतिबंधित साहित्य पंजाबी भाषा में पहला भारतीय शोधार्थी द्वारा किया गया कार्य है। इसके बाद 2002 में सिवनायडू ने तेलगु में तेलगु प्रतिबंधित साहित्य पर काम किया। हिंदी में सन 2000 में रुस्तम राय ने 'प्रतिबंधित हिंदी साहित्य' नाम से दो भाग में प्रथम कार्य किया। लेकिन यह काम भारतीय अभिलेखागार में मौजूद प्रतिबंधित साहित्य का सम्पादन तक ही सीमित रहा। अभी हाल फिलहाल नरेंद्र शुक्ल ने दो महत्वपूर्ण कार्य किया। पहला उत्तर-प्रदेश में औपनिवेशिक कालखंड में प्रतिबंधित हुई रचनाओं से सबंधित तत्कालीन शासन द्वारा जारी विज्ञप्ति को आधार बनाकर और उत्तर प्रदेश में प्रतिबंधित रचनाओं की सूची पेश की है। इनका दूसरा कार्य 'ब्रिटिश राज्य और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता' नाम से प्रकाशित है। जिसमें इन्होंने प्रतिबंधन का इतिहास के साथ बैरियर द्वारा किया गया वर्गीकरण का ऐतिहासिक विश्लेषण किया है।

प्रस्तुत शोध पाठ आधारित विश्लेषण के साथ ऐतिहासिक और तत्कालीन समय की राजनैतिक समझ को विकसित करने में भागीदारी के लिए होगा। इसलिए इस शोध को देश-विदेश और प्रदेश स्तरीय अभिलेखागारों और पुस्तकालयों में मौजूद प्रतिबंधित साहित्य को इकट्ठा कर तत्कालीन समय के अप्रतिबंधित साहित्य के साथ तुलनात्मक और ऐतिहासिक प्राविधि अपनाई जाएगी।

इस शोध विषय पर शोध करने के लिए प्रेरित करने में शोध निर्देशक प्रो. गजेन्द्र पाठक ने महत्पूर्ण योगदान दिया। सर ने समय-समय पर शोध से सम्बन्धी महत्वपूर्ण सवालों पर ध्यान दिलाया और बहुमूल्य सुझाव दिया। इस शोध के लिए मैं राष्ट्रिय अभिलेखागार नई दिल्ली, राजकीय अभिलेखागार पटना और लखनऊ का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने सामग्री संकलन में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। भारतीय समाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद का विशेष तौर पर मैं आभारी हूँ जिन्होंने मुझे सामग्री संकलन हेतु ब्रिटिश लाइब्रेरी, लन्दन जाने के लिए अनुदान प्रदान किया। मैं विभाग के कर्मचारी विनोद जी, प्रदीप जी के साथ हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय के सभी छात्रों, शोधार्थियों और अध्यापकों का भी आभारी हूँ जिन्होनें उचित समय पर अपना बहुमूल्य सहयोग दिया।

अध्याय:1

ब्रिटिश राज में प्रतिबन्ध संबंधी कानूनों का इतिहास

अंग्रेजी के 'Ban' शब्द को हिंदी में 'प्रतिबन्ध' और हिन्दुस्तानी में 'ज़ब्त' कहते हैं। हिंदी में प्रतिबन्ध के कई समानार्थी शब्द हैं-जैसे- निषेध, रोक आदि। वहीं अंग्रेजी में 'Censor', 'Proscription', 'Prohibition', 'Proscribe' और 'Bowdlerize' जैसे शब्द हैं। जिसका राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में अर्थ उस वैधानिक कार्रवाई से है जो प्रकाशन, संगठन, सभा आदि को गैर-कानूनी घोषित कर दमनात्मक रुख़ अपनाता है। अंग्रेजी में इस शब्द की परिभाषा और अर्थ की व्यापकता 'ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' के अनुसार इस प्रकार है -

निर्णय देना की आधिकारिक तौर पर कहना कि अनुमति नहीं है।"

सेंसरशिप- किताबों को रोकने से सम्बंधित अधिनियम, नीति आदि।"

बॉडलराइज़ - " एक साहित्यिक कार्य को सेंसर या निष्कासित करने के लिए उन मार्ग को अश्लील मानना। यह शब्द डॉ थॉमस बॉडलर से आया है, जिन्होंने 1818 'द फैमिली शेक्सपियर' में प्रकाशित किया था, ' जिसमें उन शब्दों या अभिव्यक्तियों को छोड़ दिया जाता है, जो मर्यादाओं के साथ नहीं पढ़ सकते..."[6]

इन परिभाषाओं से यह ज्ञात होता है कि प्रतिबंध एक आधुनिक संकल्पना है। जिसे अवधारणा गत रूप में 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' कहा जाता है।

---

[6]Ban- Decide or say officially that is not allowed.

Censorship- The act policy of censoring books, etc.

Bowdlerize – "To censor or expurgate from a literary work those passages considered to be indecent or blasphemous. The word comes from Dr Thomas Bowdler, who published in 1818 The Family Shakespeare, 'in which those words or expressions are omitted which cannot with propriety be read aloud in a family…
Chris Baldick, 'Oxford Dictionary of Literary Terms', 2008 (Third Edition), P.: 41

प्रतिबंध प्राचीन काल से आधुनिक काल तक सभी तरह की सामाजिक संरचना में मौजूद दिखता है। भारत में प्राचीन काल में प्रतिबंध को लेकर नरेंद्र शुक्ल ने लिखा है कि, "प्राचीन भारतीय साहित्य में शासक एवं शासितों के मध्य, व्यक्तिगत अभिव्यक्ति जैसे प्रश्न पर बहुत कम, अस्पष्ट और मिले-जुले भाव मिलते हैं। जहाँ एक ओर ऋग्वेद का संदेश है, 'आ नौ भद्रा: क्रतवोयन्तु विश्वत:' – ज्ञान को सभी दिशाओं में आने दो तथा उपनिषद, स्वतंत्र प्रयास, आलोचनात्मक विश्लेषण, परस्पर संवाद के द्वारा सत्य की निर्भय खोज को महत्व देता है, वहीं दूसरी तरफ, बृहदारण्यक उपनिषद के प्रसंग में याज्ञवल्क्य द्वारा गार्गी को चेतावनी के स्वर में बहस करने से रोकता हुआ पाते हैं। लोक प्रतिनिधि संस्थाओं सभा और समिति का उल्लेख करते हुए अथर्ववेद में किसी साम्राज्य की समृद्धि के लिए राजा और इन प्रतिनिधि संस्थाओं के मध्य शांति और सामंजस्य को आवश्यक बताया है।"[7] इसी विषय पर सेंसरशिप वर्ल्ड इनसाइक्लोपीडिया' में लिखा गया है कि, "आर्य ("नोबल फ्लोक") जिन्होंने दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के मध्य में उत्तर-पश्चिम से भारत पर आक्रमण किया। ऋग्वेद में व्यक्त एक अलग धार्मिक जीवन विकसित किया, जो 1000 से अधिक भजनों का संग्रह था जो बाद में रूढ़िवादी हिंदू धर्म का पवित्र पाठ बन गया। 1500 और 900 ईसा पूर्व के बीच से यह आमतौर पर माना जाता है कि यह मौखिक रूप में ही प्रेषित किया जायेगा। ब्राह्मणों (हिंदू समाज की चार जातियों के बीच पहले पद पर) उसे याद करना सिखाया गया था, बजाय पहले मौजूद संस्करण को सुनाना, जिसमें 500 CE की तिथियां थीं। यहां तक कि वेद के नियमों को पार करने पर एक वर्जित था (और एक 14 वीं सदी के सीई कमेंटेटर कहते हैं कि "पांडुलिपि पढ़ना निषिद्ध है")। संस्कृत विद्वान एल रेमौ और सामाजिक मानवविज्ञानी जैक गुडी, हालांकि, "इस संभावना पर सहमत हैं कि ब्रह्म की अवधि से धार्मिक ग्रंथों का पाठ पांडुलिपियों के सहायक के रूप में उपयोग किया जाता था"।

इसके अलावा धार्मिक ग्रंथ, ऐसा प्रतीत होता है कि यह लेखन लगभग 500 CE से सामान्य था। लेकिन शिक्षा-अंकगणित, व्याकरण और कविता उच्च्च जातियों तक ही सीमित थी। जाति की संस्था,

---

[7] नरेंद्र शुक्ल 'उपनिवेश, अभिव्यक्ति और प्रतिबंध, 2017, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 33'

जो आर्य और गैर-आर्यों के बीच विभाजन में उत्पन्न हुई थी। भारतीय समाज के विकास में मौलिक भूमिका निभाई है।"[8] इस तरह कालिदास द्वारा रचित 'कुमारसंभवम्' को लेकर, हम एक मिथक सुनते हैं कि, इसका प्रथम आठ सर्ग ही कालिदास द्वारा रचित है, क्योंकि इस महाकाव्य में शिव पार्वती के संभोग के चित्रण के कारण कालिदास को कुष्ठ रोग हो गया था। इसलिए आगे नहीं लिख पाए। इसी तरह हम चार्वाक और अन्य मत के धर्मावलम्बियों के बारे में जानते हैं। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि, "अश्वघोष की कृतियाँ कभी इस देश में अत्यन्त लोकप्रिय थीं। फिर धीरे-धीरे वे रचनाएँ यहाँ से गायब हो गईं। कृतियों के गायब होने की यह प्रक्रिया केवल अश्वघोष तक सीमित नहीं रही है। इसके शिकार दूसरे बौद्ध दार्शनिक और कवि भी हुए हैं। नागार्जुन, आर्यदेव, असंग, वसुबंधु, दीङ-नाग, धर्म कीर्ति, शांति देव आदि की अधिकांश रचनाएँ, इस देश से गायब हो गयीं, और अब उनका केवल तिब्बती, चीनी, जापानी, अनुवाद ही उपलब्ध है या फिर अनुवादों अथवा प्रतिलिपियों के आधार पर उनका पुनर्निर्मित रूप। अगर इन कृतियों का चीनी और तिब्बती में अनुवाद नहीं होता तो भारत के साहित्य और दर्शन के इतिहास में अश्वघोष और दूसरे कवियों तथा दार्शनिकों का नाम लेने वाला भी कोई नहीं होता।"[9] इसी तरह मुग़ल काल में 'दारा शिकोह' और सूफ़ी फ़कीर 'सरमद' को औरंगजेब ने गला-काट कर मार दिया। इसके बावजूद मध्यकाल तक भारत में कोई संस्थागत प्रतिबंध नहीं था।

ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में दखल के कुछ वर्षों बाद आर्थिक बदलाव और शासन में अंग्रेजों की दखलंदाजी देखी जाती है। 1857 के भारत में लिखे और बोले के लिए सज़ा आम हो गई थी, और

---

[8] "The Aryans ("Noble Flok") who invaded India from the north – west in the middle of the second millennium BCE evolved a distinct religious life expressed in the Rig-veda, a collection of over 1000 hymns which later became the sacred text of orthodox Hinduism. The Vedas date from between 1500 and 900 BCE and, it has been usually assumed, were transmitted orally. The Brahmans (the first in rank among the four castes of Hindu society) were taught to memorize them, to recite rather than to the first surviving version of which dates from 500 CE, even refers to a taboo on transcribing the Vedas (and a 14th-century CE commentator states that "reading manuscript is prohibited"). The Sanskritic scholar L. Remou and the social anthropologist Jack Goody, however, agree on "the possibility that from the period of the brahman the recitation of religious texts was accompanied by the use of manuscripts as an accessory".

Religious texts apart, it appears that writing was normal from about 500 CE. But education-in arithmetic, grammar, and poetry – was restricted to upper castes. The institution of caste, which originated in the division between Aryan and non-Aryans, has played a fundamental part in the evolution of Indian society."

Censorship A World Encyclopaedia, Volume-2, E-K, Derek Jones, 2001, Fitzroy Dearborn Publication, London, P. 1156

[9] मैनेजर पाण्डेय, 'अनभै साँचा', 2014, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ: 179

1858 में भारत संस्थागत प्रतिबंध से रूबरू होता है। जिसके लिए तैयारी उन्नीसवीं सदी के शुरुआत से होने लगी थी। जिसके बारे में ए. आर. देसाई लिखते हैं, "अंग्रेजों के बीच भी स्वतंत्र भारतीय प्रेस विवादास्पद विषय रहा। उन्नीसवीं सदी में बेलजली, मिन्टो एडम, कैनिंग और लिटन प्रेस की आज़ादी पर कठोर प्रतिबंध के पक्षधर रहे, लेकिन हैसिंटग्स, मेटकाफ, मेकाले और रिपन ने भारत में स्वतंत्र प्रेस का समर्थन किया। सर टामस मनरो और लार्ड एलफिंसटन जैसे उदारवादी ब्रिटिश नेताओं ने भी भारतीय प्रेस पर कठोर प्रतिबंधों का समर्थन किया। उनका तर्क था कि पिछड़े हुए देश पर विदेशी शासन बनाए रखना कठिन होगा, अगर प्रेस को आज़ादी दी गई, क्योंकि इसका सेनाओं के अनुशासन पर भी बुरा असर पड़ सकता है।"[10]

1878 अधिनियम :

1780 में 'बंगाल गजट' को प्रतिबंधित कर, 1876 में 'नील दर्पण' पर रोक लगाकर , ब्रिटिश हुकूमत ने अपनी मंशा जाहिर कर दी थी। 1876 में 'ड्रामेटिक परफॉर्मेंस एक्ट' द्वारा भारत में शासन के विरुद्ध और जनता के अत्याचारों से सम्बंधित सभी नाटकों को प्रतिबंधित करने के लिए कानून अमल में लाया गया। बंगाल गजट के बारे में एन. जेराल्ड बैरियर ने लिखा कि, "उदाहरण के लिए, 1780 में, वॉरेन हेस्टिंग्स ने एक प्रकाशक पर मुकदमा चलाकर और मेल से पेपर पर प्रतिबंध लगाकर जे.ए. हिक्की के 'बंगाल गजट' में व्यक्तिगत हमलों पर प्रतिक्रिया व्यक्त की। चयनित सेंसरशिप और प्रेस के अन्य मजबूरी 1835 में चार्ल्स मेटकाल्फ की मुद्रित "मुक्ति" की राय तक जमा हो गए ।"[11] इसके बाद 1876 में 'प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम' लाया गया। इसके तहत सभी प्रकाशनों को, प्रकाश्य पुस्तकों को प्रकाशित या छपने से पहले सरकार को अवगत करना अनिवार्य कर

---

[10] ए, आर देसाई, 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि', 2016, ट्रिनिटी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ:183

[11] In 1780, for example, Warren Hastings reacted to personal attacks in J.A. Hickey's Bengal Gazette by prosecuting the publisher and banning the paper from the mails. Selected censorship and other restraints of the press accumulated until Charles Metcalfe's "liberation" of printed opinion in 1835."

N. Gerald Barrier, 'Banned Controversial Literature and Political Control in British India 1907-1947', 1976, Manohar Publication, New Delhi, P. 04

दिया गया था। लेकिन "घोषित रूप से तो यह एक विनियमन अधिनियम था, जिसका उद्देश्य प्रेस की गतिविधियों से सरकार को अवगत कराना था, न कि प्रेस या अख़बारों को प्रतिबंधित करना था, किन्तु अधिनियम का प्रभाव इससे कहीं व्यापक था। प्रेस एंड रजिस्ट्रेशन ऑफ़ बुक्स एक्ट-1876 के भाग II और 3, 4, 5 द्वारा ब्रिटिश भारत में मुद्रित प्रत्येक पुस्तक या अख़बार पर मुद्रक का नाम और मुद्रण स्थान, प्रकाशक और प्रकाशन स्थान का नाम स्पष्ट मुद्रित करना अनिवार्य कर दिया गया था। साथ ही प्रेस की स्थापना व ऐसी किसी भी मुद्रित पत्र-पत्रिका, जिसमें जन समाचार पर टिप्पणी छपी हो, ब्रिटिश भारत में प्रकाशित नहीं हो सकता था, जब तक वह इस सम्बंध में घोषणा न प्रस्तुत कर दे। मुद्रण या प्रकाशन स्थान बदलने पर अथवा मुद्रक या प्रकाशक, जिसने उक्त घोषणा की हो, ब्रिटिश भारत को छोड़ेगा, अथवा प्रकाशन बंद कर रहा है, तो इस संबंध में उसे नई घोषणा करनी थी (धारा-8)। इस अधिनियम के भाग चार में इन धाराओं के उल्लंघन, और दंडाधिकारी के समक्ष दोष सिद्ध पर अधिकतम पाँच हजार रुपये जुर्माना या अधिकतम दो वर्ष की साधारण कैद या दोनों सजाएँ एक साथ देने का प्रावधान (धारा-12, 13,14,15) किया गया था। ध्यातव्य है कि, घोषित रूप से 'मात्र विनियमन हेतु पारित' इस अधिनियम की धाराओं का उल्लंघन, किसी प्रेस के मुद्रक, प्रकाशक, संपादक को न केवल ऐसे भारी जुर्माने के नीचे दबा सकता था कि वह, प्रेस को बंद कर देने की स्थिति तक पहुंच जाए, बल्कि उसे कारागार तक पंहुचा सकता थी।"[12] अंग्रेजी हुकूमत ने इस अधिनियम को लाने में चतुराई दिखाई। इस अधिनियम को मात्र प्रेस के पंजीकरण हेतु अमल में लाया जाना था। लेकिन इस अधिनियम के जरिए अधिकारीयों ने प्रेस को नियंत्रित करना शुरू कर दिया। जैसा कि 1515 ई. के यूरोप में हम देखते हैं कि पुस्तक के छपने से पहले धर्माधिकारी या उससे जुड़े अधिकारी पुस्तक की सामग्री को जांचते थे। इसी तरह वहां बाद के वर्षों में केवल कुछ ही प्रकाशन संस्थानों से पुस्तकें छपवाने की अनुमति थी। "एलिजाबेथ के काल में हालाँकि मुद्रण की छूट दी गई किन्तु केवल वही पुस्तकें मुद्रित हो सकती थीं जिन्हें पहले "देखा और अनुमोदित" किया गया हो। मुद्रकों की संख्या को 20 तक सीमित किया गया

[12] नरेंद्र शुक्ल 'उपनिवेश, अभिव्यक्ति और प्रतिबंध, 2017, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 55

तथा उन्हें भी मुद्रण का अधिकार रानी की इच्छा पर ही निर्भर था। इसी बीच स्टार चैंबर ने एक आदेश जारी करते हुए व्यवस्था दी कि, अब कोई भी पुस्तक लन्दन, ऑक्सफोर्ड या कैंब्रिज से ही छपेगी। एक अन्य आदेश जारी करते हुए उसने व्यवस्था दी कि, यदि कोई ऐसी पुस्तक या पर्चा छपता है जो इंग्लैंड के किसी भी अधिनियम, राजाज्ञा, आदेश या उसके निहितार्थों का विरोध करता है, तो उसे कड़े दंड भोगने होंगे। लन्दन के सभी मुद्रणालयों को सप्ताह में राजशाही कार्यकर्ताओं द्वारा जांचा जाता और यदि कोई ऐसी लिखित/ मुद्रित सामग्री मिलती जो राजा या उसकी किसी आज्ञा का उल्लंघन करती है तो उसे सार्वजनिक तौर पर जला दिया जाता। यह उस विचार को वैसे ही मारना था जैसे विद्रोह के लिए किसी विरोधी व्यक्ति को।"[13] इसी समय भारत में प्रिंटिंग प्रेस का 1557 में आविर्भाव हुआ था। इसके बारे में एन. जेराल्ड बैरियर लिखते हैं, "भारतीय प्रकाशन उद्योग के उद्भव से किताबों और पत्रिकाओं ने ब्रिटिश शासकों राजनीतिक जीवन को जटिल बना दिया था। यह चैनल जानकारी के मूल्यवान स्रोत हो सकते हैं और बड़े पैमाने पर मीडिया की निगरानी और नियंत्रण के सवाल भी उठाए गए । उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, सरकार इस बात को लेकर उभरी थी कि भारतीय समाज में विचारों के प्रचलन की निगरानी कैसे की जाए।"[14] इसके बाद 1870 में हम इसके लिए दंड सम्बन्धी कानून का प्रावधान देखते हैं। "1870 में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय दंड सहिंता में धारा 124 ए को, जिसके तहत 'भारत में विधि द्वारा स्थापित' ब्रिटिश सरकार के प्रति विरोध की भावना भड़काने वाले व्यक्ति को तीन साल की कैद से लेकर आजीवन देश- निकाला तक की सज़ा दिए जाने का प्रावधान था। बाद में इस धारा में कई कड़े प्रावधान जोड़े गए।"[15] 1870 तक भारत में प्रेस की भूमिका अहम हो चुकी थी। इससे

---

[13] वही, पृष्ठ: 22

[14] The emergence of an Indian publication industry complicated the political life of the British rulers books and journals could be valuable sources of information of channeled also raised questions of surveillance and control of mass media. During the ninetieth century, the government was ambivalent about whether and how to supervise the circulation of ideas within Indian society."
N. Gerald Barrier, 'Banned Controversial Literature and Political Control in British India 1907-1947', 1976, Manohar Publication, New Delhi, P. 04

[15] बिपिन चन्द्र और अन्य, 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष', 2008, हिंदी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृष्ठ :56

निकलने वाली सामग्री या अख़बार देश की जनता को अंग्रेजी हुकूमत के अमानवीय व्यवहारों से परिचित कराते थे । इसको रोकने के लिए अंग्रेजी हुकूमत ने 1878 में 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' को अमल में लाया । "लार्ड लिटन के प्रशासन की तो उन्होंने खुलकर आलोचना की खासकर 1876-77 के अकाल पीड़ितों के प्रति ब्रिटिश सरकार के अमानवीय रवैये की तो जबरदस्त आलोचना उन्होंने की। इसके साथ ही अख़बारों का प्रसार भी बढ़ने लगा था और मध्यम वर्ग के पाठकों तक ही वे सीमित नहीं रह गए थे, बल्कि आम आदमी तक पहुँचने लगे थे । इससे ब्रिटिश सरकार की भौहें टेढ़ी होना स्वाभाविक था । उसने अचानक इन अख़बारों पर दमन की कुल्हाड़ी चलाई और 1878 में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट लागू किया । यह कानून भाषाई अख़बारों पर अंकुश लगाने के लिए बनाया गया था क्योंकि ब्रिटिश सरकार को उनकी ओर से बड़ा खतरा महसूस हो रहा था । वजह साफ़ थी कि ये अख़बार आम जनता में ब्रिटिश शासन के खिलाफ माहौल बनाने लगे थे । 1878 का वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट लागू करने का निर्णय अचानक लिया गया था और इस मामले में बड़ी गोपनीयता बरती गई थी और लेजिस्लेटिव काउन्सिल ने चंद मिनटों की चर्चा के बाद ही इस विधेयक को पारित कर दिया था । इस कानून में यह प्रावधान किया गया था कि 'अगर सरकार समझती है कि कोई अख़बार राजद्रोहात्मक सामग्री छाप रहा है या उसने सरकारी चेतावनी का उल्लंघन किया है, तो सरकार उस अख़बार उसके प्रेस व अन्य सामग्री को ज़ब्त कर सकती है ।"[16] इस एक्ट को 'देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम' के नाम से भी जाना जाता है । इसका देशी पत्र-पत्रिकाओं के साथ ब्रिटिश सांसदों ने भी विरोध किया जिसके विरोध स्वरूप बालकृष्ण भट्ट ने लिखा कि, "यह कहा जा रहा है कि देशी समाचार पत्रों के संपादक ठीक ढंग से पढ़े लिखे नहीं हैं । अगर इससे उनका मतलब यह है कि, देशीभाषी समाचार पत्रों के सम्पादक विश्वविद्यालयों से स्नातक नहीं है, या वे कोट, पतलून नहीं पहनते या वे अपनी पुरानी मान्यताओं, संस्कारों से चिपके हैं, तब यह काफी हद तक सही और गलत के बीच अंतर को पहचानने से है, ईमानदारी और देशप्रेम से है, तो देशी भाषी समाचार पत्रों के संपादक निश्चित रूप से पढ़े लिखे हैं ।...

[16] वहीं, पृष्ठ :68

दूसरे विधान परिषद के सदस्यों का यह भी कहना कि, देशी भाषी समाचार पत्र केवल अज्ञानी और अशिक्षितों द्वारा पढ़े जाते हैं, क्या सर दिनकर राव और सर सलारजंग जैसे व्यक्ति, जो अंग्रेजी से भली भांति परिचित नहीं है, और केवल देशी भाषी समाचार पत्र पढ़ते हैं उन्हें अशिक्षित व्यक्तियों के बीच में रखेंगे। तीसरे यह कहा जा रहा है कि, देशी भाषी प्रेसों के लेख लोगों के मस्तिष्क में असंतुष्टि का भाव भर रहें हैं, किन्तु यह देखा गया है कि देशी भाषी समाचार पत्रों ने कभी कोई असत्य समाचार नहीं छापा है जैसा कि समकालीन आंग्ल भारतीय प्रेस के समाचार पत्र करते हैं।... वास्तव में सरकार को हमसे ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि हम भूल जाएं कि, हम उनके लिए विदेशी है... विधायिका द्वारा देशी भाषी समाचार पत्र अधिनियम पारित करने का कारण हम समझ नहीं पा रहे हैं । यह लाइसेंस बिल सभी वर्गों और समुदायों को प्रभावित करेगा। हम इसके विरुद्ध ऊँची आवाज़ बुलंद कर रहें हैं, किन्तु कोई भी हमारी शिकायत सुनने को तैयार नहीं है।"[17] प्रेस के प्रचलन से भारतीय समाज में अख़बारों का प्रचलन बढ़ा था। जिसे पढ़ाना आता था, वह पढ़ता था और जिसे पढ़ाना नहीं आता था, वह पढ़वाकर सुनता था। जनता अख़बारों के लिए दो-दो, तीन-तीन दिनों तक इंतजार करती थी। वहीं लेखक अपनी रचनाओं और लेखों को सम्पादकों और समाचार पत्रों को भेजते थे। इन लेखों और रचनाओं में देश और समाज की तत्कालीन परिस्थितियों की आलोचना अधिक होती थी जिससे अंग्रेजी हुकूमत को नुकसान उठाना पड़ता था। 'हिंदी प्रदीप' के इसी अंक में लिखा गया कि "अब हमारी जीभ काट ली गई है, फिर भी हमारा मस्तिष्क लगातार कह रहा है कि यह अधिनियम अनैतिक और अन्यायपूर्ण है। अपने सम्पूर्ण प्रयास के बावजूद हमारे हृदय में जो देश भक्ति की आग जल चुकी है उसे रोक नहीं पा रहे हैं। अफ़सोस ! यह कैसा अभिशप्त समय है ! हम चढ़ने के लिए जो भी शाखा पकड़ते हैं वह काट दी जाती है ... हमारे पास धन नहीं है। हम अपनी समस्त शक्ति खो चुके हैं। हमारे

[17] उद्धृत द्वारा, नरेंद्र शुक्ल 'उपनिवेश, अभिव्यक्ति और प्रतिबंध, 2017, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 69

हाथ पैर ऐसे मजबूती से बाँध दिए गए हैं कि हम हिल भी नहीं सकते, फिर भी हम बोलने की स्वतंत्रता का उपयोग कर रहे थे, अब हमारे मुंह को भी बंद कर दिया गया।"[18]

1898 अधिनियम :

1898 में एक और अधिनियम लाया गया। जिसे 'डाक अधिनियम' कहा जाता है। इस अधिनियम में डाक से आने वाली सामग्रियों को जाँचा जाता था और सरकार की नज़र में जो सामग्री संदिग्ध या सरकार की भावनाओं के खिलाफ पाई जाती थी उसे ज़ब्त कर लिया जाता था। प्रेस और प्रकाशकों पर कड़े प्रतिबंध की वजह से प्रकाशित होने वाली सामग्री पर नज़र रखी जाती थी और उन्हें बंद या जुर्माना या प्रकाशक को जेल तक हो जाती थी। इसलिए भारत के बाहर से सामग्रियों को मंगाया जाता था। वहीं दूसरे तरफ अंग्रेजी हुकूमत के दमन की वजह से बहुत से सेनानियों को भारत छोड़कर भागना पड़ा था, या देश-निकाला कर दिया जाता था। वे सेनानी अपने विचार डाक के माध्यम से भारत में भेजा करते थे। इसके अलावा भारत से बाहर बसे भारतवासी भी अपने देश की चिंता करते थे, और वे बाहर में हो रही परिघटनाओं से देश की जनता को अवगत कराने के लिए सामग्री भेजा करते थे। इन सभी पर नज़र रखने के लिए अंग्रेजी सरकार ने '1898 डाक अधिनियम' पारित किया। इस सन्दर्भ में नरेंद्र शुक्ल लिखते हैं कि, "पोस्ट ऑफिस एक्ट 1898 के ये नियम (अनुच्छेद- 22, 23, 21, और 19 ए जैसे) स्वयं में इतने व्यापक अर्थ लिए हुए थे, जिनके प्रयोग से किसी भी प्रकार की डाक सामग्री को रोका, खोला व समाप्त किया जा सकता था। चूंकि डाक विभाग, वह व्यवस्था थी जिसके जरिए देश के समाचार और लोगों के विचार पत्रों एवं अन्य साहित्य के माध्यम से दूर-दूर तक पहुँचते थे। इसलिए प्रेस के लिए डाक विभाग 'प्राण वायु' से कम नहीं था। साथ ही प्रेस के लिए डाक व्यवस्था, आर्थिक कारणों से भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी। इस समय तक समाचार पत्रों का प्रसार सुदूर क्षेत्रों में भी होने लगा था, किन्तु डाक सामग्री के इस प्रकार बीच में रोके जाने से राजनैतिक व आर्थिक दोनों प्रकार से

[18] वहीं, पृष्ठ : 69

गम्भीर क्षति होने वाली थी।"[19] इसके साथ इसी वर्ष 1870 के अधिनियम को संशोधित किया गया, और 1878 के अधिनियम को भी। धारा 153ए (भारतीय दंड संहिता) और धारा 124ए और 505 को संशोधित किया गया।

'भारतीय दंड संहिता का संशोधित रूप इस प्रकार था:-

धारा 124-ए (भारतीय दंड सहिंता) 1898 में संशोधन

कोई व्यक्ति शब्द से बोलकर, या लिखकर या हस्ताक्षर से या साक्षात प्रतिनिधित्व से या किसी अन्य तरीके से घृणा या असंतोष फैलाता है या उत्तेजित करता है या उत्तेजित करने की कोशिश करता है, कानून द्वारा स्थापित ब्रिटिश भारत सरकार के विरुद्ध उत्तेजना फैलाता है, उसे छोटी अवधि या जीवन-भर के लिए देश निकाला, जिसमें अर्थदंड से भी दंडित किया जा सकता है या तीन साल की कैद हो सकती है, जिसके साथ अर्थदंड भी हो सकता है या केवल अर्थदंड।

स्पष्टीकरण (1): 'असंतोष' की अभिव्यक्ति में निष्ठाहीन और विद्वेष की सभी भावनाएं सम्मिलित हैं।

स्पष्टीकरण (2): बिना उत्तेजित किए या घृणा, अवज्ञा या असंतोष फैलाने के प्रयास के अलावा कानूनी तरीके से सरकार के किसी कार्य पर अस्वीकृति व्यक्त करने वाली टिप्पणी जिससे सरकार का ध्यान केन्द्रित किया जाए, इस धारा के तहत अपराध नहीं है।

स्पष्टीकरण (3): बिना उत्तेजित किए या घृणा, अवज्ञा और असंतोष फैलाने के प्रयास के अलावा, प्रशासन या सरकार के अन्य कार्य पर व्यक्त की जाने वाली टिप्पणी, इस धारा के तहत अपराध नहीं है।

[19] वही, पृष्ठ : 102

धारा 153-ए (भारतीय दंड सहिंता)

कोई व्यक्ति, शब्द से या बोलकर लिखकर या हस्ताक्षर कर या प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व से या किसी अन्य तरीके से सरकार से सम्बद्ध विभिन्न वर्गों के बीच घृणा या शत्रुता फैलाता है, तो कैद से दण्डित किया जाएगा, जिसकी अवधि दो साल तक हो सकती है, या केवल अर्थदंड हो सकता है या दोनों।

स्पष्टीकरण : इस धारा के अर्थों के अनुसार वह कार्य अपराध नहीं होगा, जब बिना विद्वेषपूर्ण उद्देश्य के और साथ ही ईमानदारी से विषयों के निबटाने से सरकार के विषयों के विभिन्न वर्गों में बैर या घृणा फैल रहा हो या फैलने की सम्भावना हो।

धारा 505 (भारतीय दंड सहिंता) 1898 में संशोधित

कोई भी, प्रतिवेदन, हास्य या वक्तव्य देता है, प्रकाशित करता है या वितरित करता है :

(क). सरकार के थलसेना, नौसेना के सैनिक या अधिकारी या रायल इंडियन मैरिन या इंपीरियल सर्विस के सैनिकों में विद्रोह भड़काने या असम्मान या कर्तव्य निर्वहन में असफल रहने के उद्देश्य से किया जाता है, या

(ख). जनता में भय या चेतावनी जिससे, कोई व्यक्ति सरकार या सामाजिक शांति के विरुद्ध अपराध करने के लिए प्रेरित हो, के उद्देश्य से, या

(ग). किसी वर्ग या समुदाय के व्यक्ति को अन्य वर्ग या समुदाय के विरुद्ध अपराध करने के लिए भड़काने के उद्देश्य से या जिससे उत्तेजना फैल सकती है, को कैद की सज़ा हो सकती है जिसकी अवधि दो साल की हो सकती या अर्थदंड या दोनों।

अपवाद : इस धारा के तहत वैसे कार्य अपराध नहीं होंगे, जिससे ऊपर कहे गए उद्देश्य से मेल नहीं हों । वैसे कार्य अपराध नहीं होंगे, जब व्यक्ति लिखता है, प्रकाशित करता है, वितरित करता है और प्रतिवेदन या अफवाह सच होने का आधार हो ।'[20]

1910 अधिनियम :

इसी तरह 1910 में भी एक प्रेस अधिनियम पारित किया गया जिसका उद्देश्य समाचार पत्रों पर बेहतर पकड़ बनाने के लिए था। इस कानून को ब्रिटिश बलूचिस्तान, बलूचिस्तान, संथाल परगना और स्पीति-परगना सहित पूरे ब्रिटिश भारत में लागू किया गया था।

इस कानून की परिभाषा इस प्रकार दी गई-

"इस कानून के तहत जब तक इस विषय या सन्दर्भ में कोई असंगति नहीं है तब तक।

(क). 'पुस्तक' का अर्थ किसी भाषा में छपा पर्चा, खंड भाग या खंड का हिस्सा और संगीत, मानचित्र, चार्ट का प्रत्येक पन्ना, जो छपा या लीथोग्राफी होगा।

(ख). 'दस्तावेज' का अर्थ प्रत्येक पेंटिंग, रेखाचित्र या खींचा गया चित्र या अन्य दृश्य प्रस्तुतिकरण है।

(ग). 'हाईकोर्ट' से आशय किसी स्थानीय क्षेत्र की अपील के लिए उच्च दीवानी न्यायलय है। अपवाद स्वरूप अजमेर-मारवाड़ और कुर्ग प्रान्त के लिए यह क्रमशः उत्तर-पश्चिम प्रान्तों के उच्च न्यायालय और मद्रास में है,

(घ). 'मजिस्ट्रेट' से आशय जिला दंडाधिकारी (मजिस्ट्रेट) या मुख्य प्रांतीय दंडाधिकारी है।

(च). 'समाचार' से आशय कोई आवधिक पत्र, जो सार्वजनिक समाचार या इन समाचारों पर टिप्पणी प्रकाशित करता है।

---

[20] जे. नटराजन, 'भारतीय पत्रकारिता का इतिहास', आर. चेतनक्रान्ति (अनु.), 2002 प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, पृष्ठ : 213

(छ). ‘छापाखाना’ या ‘प्रिंटिंग प्रेस’ से आशय प्रकाशन में प्रयुक्त होने वाले सभी इंजन, मशीन, टाइप, लीथोग्राफिक पत्थर, उपकरण और अन्य संयंत्र या सामग्रियों से है।”[21]

इस अधिनियम में – छापाखानों के मालिक द्वारा जमानत जमा कराना, विशेष परिस्थितियों में जमानत जब्त होने की घोषणा करने का अधिकार जमानत का फिर जमा किया जाना (अगर जमानत राशि जब्त कर ली गई हो), जमानत, छापाखाना और प्रकाशन जब्ती की घोषणा करने का अधिकार, तलाशी का आदेश जारी करना, किसी समाचार पत्र के प्रकाशक पर आदेश जारी करना, किसी समाचार पत्र के प्रकाशन द्वारा जमानत जमा किया जाना, विशेष परिस्थितियों में जमानत जब्ती की घोषणा करने का अधिकार, किसी खास प्रकाशन की जब्ती और तलाशी की घोषणा का अधिकार, ब्रिटिश इंडिया में आयात किए जाने वाले किसी विशेष प्रकाशन को रोकने का अधिकार, कुछ खास समाचार पत्रों को डाक द्वारा भेजे जाने पर प्रतिबंध, ब्रिटिश इंडिया में मुद्रित होने वाले समाचार पत्रों की प्रतियाँ सरकार को मुफ्त में देने, जैसे प्रावधान निहित थे। इसके अलावा नरेंद्र शुक्ल ने इस अधिनियम के बारे में लिखा है, “भारतीय प्रेस अधिनियम 1910 के अंतर्गत, जिस किसी आदमी के पास छापाखाना होता था, उसे प्रेस एवं पुस्तक पंजीकरण अधिनियम की धारा 4 के तहत दंडाधिकारी के समक्ष घोषणा करना था और उसी समय उसी दंडाधिकारी के समक्ष कम से कम 500 और अधिकतम 2000 रुपये की धनराशि जमानत के तौर पर जमा करना था, (अनुच्छेद 3-(1)। यदि कोई छापाखाना ‘प्रेस एवं पुस्तक पंजीकरण अधिनियम’ की धारा 4 (1) के लागू होने से पहले स्थापित होता, तब सम्बन्धित स्वामी, को उसका छापाखाना जिस दंडाधिकारी के शासन क्षेत्र के तहत स्थित है। उसके समक्ष स्थानीय सरकार के विवेकानुसार कम से कम 500 और अधिकतम 5000 रुपये या इतने मूल्य का भारत सरकार प्रपत्र जमानत राशि के तौर पर जमा करना था।”[22] यह अधिनियम एक ऐसा अधिनियम था जो स्थानीय

[21] वहीं, पृष्ठ: 345

[22] नरेंद्र शुक्ल ‘उपनिवेश, अभिव्यक्ति और प्रतिबंध, 2017, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 69

वहीं, पृष्ठ : 126

अधिकारी को यह अधिकार देता था कि, वह अपने अधिकार का प्रयोग कर लेखन और वाणी को प्रतिबंधित कर सकता है।

1918 अधिनियम :

1918 में 'रॉलेट एक्ट' पारित हुआ। जिसे न्यायाधीश एस. ए. टी. रॉलेट ने अमल में लाया। इस एक्ट को 'सीडिसीयस एक्ट' भी कहा जाता है। जिसके अंतर्गत 'राजद्रोह' जैसी धाराएं लगाई जाती थी। ये धाराएं मुख्यत: 99 ए, 124 ए और 153 ए हैं। इसके लिए 1917-18 में 'सिडिसन कमेटी' रिपोर्ट 222 पन्नों का सुपरटेंडेंट गवरंमेंट प्रिंटिंग, इंडिया कलकत्ता से प्रकाशित किया गया। इसके फाइल न. 2884, गृह विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली से 10 दिसम्बर 1917 को विज्ञप्ति जारी किया गया जिसमें लिखा गया कि, "काउंसिल में गवर्नर जनरल ने भारत के राज्य सचिव के अनुमोदन के साथ समिति के सचिव ने फैसला किया-

(1). भारत में क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़े आपराधिक षड्यंत्रों की प्रकृति और सीमा की जाँच और रिपोर्ट करना।

(2). इस तरह की साजिशों से निपटने और कानून के अनुसार सलाह देने के लिए जो कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं, उनकी जांच करना और उन पर विचार करना, यदि आवश्यक हो, तो सरकार को उनसे प्रभावी ढंग से निपटने के लिए सक्षम बनाना।"[23]

इस रिपोर्ट और अधिनियम का निहितार्थ भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों को नियंत्रित करना था, साथ ही क्रांतिकारी पुस्तकों को भी नियंत्रित करना था।

---

[23]"The Government General in council has, with the approval of the secretary of state for India decided to secretary of committee-

(1). to investing and report on the nature and extent of the criminal conspiracies connected with the revolutionary movement in India.

(2). to examine and consider the difficulties that have arisen in dealing with such conspiracies and to advise as to the legislation, if any, necessary to enable Government to deal effectively with them.

Sedition Committee 1918 Report, Superintendent Government Printing, Calcutta, India,

1930 अधिनियम :

1930 में महात्मा गाँधी के 'नमक सत्याग्रह' के घोषणा और जनता के भागीदारी को देखते हुए । अंग्रेजी हुकूमत ने अप्रैल से जुलाई 1930 के मध्य सात अध्यादेश पारित किए । जिनमें दो अध्यादेश प्रेस से सीधे जुड़े हुए थे । प्रथम 'प्रेस अध्यादेश II (27 अप्रैल 1930)' और दूसरा 'अनधिकृत समाचार पत्र एवं पत्रकों पर नियंत्रण हेतु अध्यादेश था' ।

इन सभी कानूनों अध्यादेशों और अनुच्छेदों का एक ही मकसद था कि भारतीय जनता को गुलाम बनाए रखा जाए । जिसके लिए उन्होंने मानदंड भी निर्धारित किया हुआ था । जिसके अनुसार 1857 से सम्बन्धित साहित्य, रुसी क्रांति से सम्बंधित साहित्य, अन्य देशों की स्वतन्त्रता संघर्ष से सम्बंधित साहित्य, गाँधी, भगत सिंह से सम्बन्धित साहित्य को रोका या प्रतिबंधित किया जाये । एन. जेराल्ड बैरियर ने 1908 से 1914 तक के प्रतिबंधित पुस्तकों के प्रकारों का उल्लेख किया है -" राजनीति पर सामान्य टिप्पणी, हिंसा और क्रांति के लिए आह्वान , सेना को संबोधित करना , सिखों को संबोधित करना, छात्रों से अपील, हिंदू विरोधी विषयों, मुस्लिम विरोधी विषयों, गौरक्षा, नाटकों, टिप्पणियों, राष्ट्रवाद का इतिहास (भारत, जिसमें विद्रोह भी शामिल है), भारत के बाहर क्रांति के इतिहास, आयरिश, रूसी राजनीति, बम नियमावली, भाषण, परीक्षण रिपोर्ट, जीवनी और तिलक पर काम.. । यह तालिका व्यापक के बजाय विचारोत्तेजक है क्योंकि पर्याप्त जानकारी ने कई शीर्षक को शामिल करने से रोका । विभाग की फाइलों से प्राप्त आंकड़े और सहायक डेटा फिर भी उन मानदंडों पर संक्षिप्त टिप्पणियों की अनुमति देते हैं जिन्होंने साहित्यिक कार्यों के इस वर्गीकरण पर प्रतिबंध लगा दिया था ।"[24] जिसे निरीक्षित और पकड़ने के लिए प्रत्येक प्रान्तों में सी.आई.डी. का प्रबन्ध किया गया था 1907 से 1910 तक कुछ प्रान्तों में सी . आई. डी. की संख्या निम्नलिखित थी :

---

[24]General commentary on politics, Call for violence and revolution, Addressed to army, Addressed to Sikhs, Appeals to students, Anti-Hindu Themes, Anti-Muslim themes, Cow protection, Plays, Commentaries, History of Nationalism (India, including mutiny), Histories of revolution outside India, Irish, Russian politics, Bomb manuals, Speeches, trial reports, Biographies and work on Tilak… This table is suggestive rather than comprehensive because in-sufficient information prevented inclusion of many title. The statistics and supporting data from department files nevertheless permit brief comments on criteria that led to the ban on this assortment of literary works.N. Gerald Barrier, *'Banned Controversial Literature and Political Control in British India 1907-1947', 1976, Manohar Publication, New Delhi, P. 62*

	Madras	U.P.	Bengal	C.P.	Punjab	Bombay	Total
1907	27	74	57	44	34	48	284
1908	56	88	64	47	39	57	351
1909	64	39	165	57	46	64	485
1910	63	134	165	58	54	77	525

[25]

जिसके नतीजतन भारत में हिन्दी भाषा की 1,391 पुस्तकें और सभी भारतीय भाषाओं में 3,908 पुस्तकों को जब्त कर लिया गया। इनको जब्त कर प्रांतीय अभिलेखागार, राष्ट्रीय अभिलेखागार, भारत, ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन और इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन में रखा गया।

प्रतिबंधित पुस्तकों को सरकार द्वारा अधिकृत संस्थानों में रखने की मंशा भारत का संघर्ष और ज्ञान के साधन को भी कानून के माध्यम से वंचित किया जाना महसूस होता है। इसी कानून के लिए अंतोनियो ग्राम्शी ने लिखा था कि, "कानून की ऐसी संकल्पना जो बुनियादी तौर से नवीकरण कर सके कहीं भी, अखंडित रूप से, किसी भी पूर्ववर्ती मतवाद में उपलब्ध नहीं होती (तथाकथित प्रत्यक्षवादी सम्प्रदाय के मतवाद में, मुख्यत: फेरी के सिद्धांत में भी नहीं)। यदि हर राजसत्ता एक विशिष्ट प्रकार की सभ्यता और नागरिक का (और इसलिए सामूहिक जीवन और वैयक्तिक संबंधों के विशिष्ट स्वरूप का) सृजन करना और उसे कायम रखना तथा कुछ रीति-रिवाजों और प्रवृतियों को निरस्त और दूसरे आचार-विचारों का प्रसार करना चाहती है, तो इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कानून ही (स्कूल प्रणाली तथा अन्य संस्थाओं और क्रियाओं के साथ) उसका उपकरण बन सकता है।"[26] ग्राम्शी ने आगे कानून को 'शिक्षा

[25] Ibd, P. 34

[26] अंतोनियो ग्राम्शी, 'सांस्कृतिक और राजनीतिक चिंतन के बुनियादी सरोकार', कृष्णकान्त मिश्र (अनु.), 2002, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, पृष्ठ:347

देने वाली संस्था’ के रूप में चिह्नित किया है। यह वही शिक्षा है, जिससे संघर्ष के दौरान भारतीय रूबरू हो रहे थे, और अंग्रेजी हुकूमत इसे कानूनों के माध्यम से रोक रही थी।

अध्याय:2

प्रतिबंधित हिन्दुस्तानी कविता और लोकगीत

भारतीय सन्दर्भ में प्रतिबंधित हिंदी कविता और लोकगीतों का स्वर साम्राज्यवादी ताकतों के विरोध के रूप में उभर कर आता है। तकनीक के इस विकसित दौर में जहाँ हमारे पास किसी भी तरह की ज्यादती शोषण या अन्याय के खिलाफ संचार के बहुत सारे माध्यम उपलब्ध हैं, यह देखना दिलचस्प होगा कि संचार माध्यमों की कमी के बावजूद एशिया के एक शोषित देश ने किस तरह से प्रतिरोध के स्वर को बनाए रखा और किस तरह स्वाधीनता के लक्ष्य को प्राप्त करता है।

किसी भी देश के साहित्य में प्रतिरोध का स्वर उसकी ताकत होती है। यह वही साहित्य होता है, जिससे किसी देश की सांस्कृतिक प्रगतिशीलता का बोध होता है। भक्ति आन्दोलन की हिंदी कविता तत्कालीन सामाजिक जड़ता और कुरीतियों का पुरजोर विरोध करती है, और सम्पूर्ण मनुष्य की समानता की बात करती है, किन्तु यहाँ प्रतिबंधित साहित्य बिल्कुल नहीं दिखाई देता है, क्योंकि प्रतिबंध एक आधुनिक अवधारणा है। भारतीय सन्दर्भ में इसका प्रयोग साम्राज्यवादी शासन को बनाए रखने के लिए एक योजना के तहत किया गया। ताकि साम्राज्यवाद के विरोध में आवाज़ न उठाई जा सके किन्तु साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार ने 1799 में प्रेस एक्ट लगाकर जो कोशिश की उससे साम्राज्यवादी विरोध का स्वर थमा नहीं। ऐसा उस दौर के गीत और लोकगीतों को देखकर पता चलता है। 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता आन्दोलन के बिगुल के बाद हिंदी साहित्य का स्वर बदला हुआ दिखाई देता है। 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम को जिस क्रूरता से दमन किया गया इस कारण लम्बे समय तक शिष्ट साहित्य में ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध का स्वर दबा हुआ दिखाई देता है। लोक- साहित्य में साम्राज्यवादी सत्ता के प्रति विरोध का स्वर प्रचुर ,मात्रा में दिखाई देता है। 1857 के स्वतंन्त्रता संग्राम की असफलता की एक बड़ी वजह उसके सुनियोजित रणनीति का अभाव था वहीं दूसरी ओर संचार माध्यमों की कमी भी थी। ब्रिटिश हुकूमत के पास संचार माध्यम के सहायक के रूप में रेलगाड़ी और डाक विभाग थे वहीं भारतीय

जन के पास उनकी कविता थी। इस कविता को भारतीय जन ने अस्त्र भी बनाया और संचार माध्यम भी। वे कविता के माध्यम से ही ब्रिटिश शोषण के प्रति भारतीय जन-मानस को जागरूक करने का काम करते थे और एकता स्थापित करने का भी। आज 21वीं सदी की दहलीज पर खड़े होकर साम्राज्यवादी ताकत से लड़ने वाले अहिंसा के पुजारी गाँधी और लोककंठ से उपजी प्रतिरोध की कविता की ताकत पर विश्वास करना मुश्किल जान पड़ता है। परन्तु इन दोनों ने आम जन में एकता स्थापित करने और स्वतन्त्रता आन्दोलन में बड़ी भूमिका अदा की।

लोक साहित्य मूलतः गेय रूप में दिखाई पड़ता है। अत: इसे प्रतिबंधित करना साम्राज्यवादी सत्ता के लिए असंभव था। किन्तु लोक साहित्य को देश के अन्य क्षेत्रों तक पहुँचने के लिए उसे लिखित रूप दिया गया। ब्रिटिश हुकूमत द्वारा पकड़े जाने पर किसी स्वतन्त्रता सेनानी या सुराजी की जेब से ऐसे बहुत से गीत पाए गए जिनकी भाषा लोक की भाषा है।

औपनिवेशिक काल के लोक साहित्य और जन साहित्य का गहन अध्ययन करने पर शिष्ट साहित्य पर प्रेस एक्ट के प्रभाव को देखा जा सकता है। प्रेस एक्ट के प्रभाव के कारण जहाँ शिष्ट साहित्य में कई सारी शैलियाँ और विषय-वस्तु के स्तर पर कई तरह के अंतर्विरोध दिखाई देते हैं वैसा लोक साहित्य में कम ही दिखाई देता है। हालाँकि ,आर्थिक शोषण और देशोन्नति के मुद्दे पर शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य एकमत दिखाई देता है। यहाँ आर्थिक शोषण की पहचान गहरे रूप में देखने को मिलती है। औपनिवेशिक दौर की पत्रिका 'सार सुधानिधि' के संपादक लिखते हैं - "प्रजा की दुर्व्यवस्था का कारण क्या है ? प्रजा की दुर्व्यवस्था का कारण सिवाय गवर्नमेंट संस्थापित राजस्व संग्रह प्रणाली के और कुछ हो ही नहीं सकता।[27]"

"हो गईल कंगाल हो विदेसी तोरे रजवा में।

xxxx

[27] सदानंद मिश्र, दक्षिणापथ प्रजा और गवर्नमेंट, नवजागरण कालीन पत्रिका भाग 1

भारत के लोग आजु दाना बिनु तरसे भईया,”[28]

अपने साम्राज्य को बनाये रखने के लिए साम्राज्यवाद अपने औपनिवेशिक देश की सभ्यता, संस्कृति और इतिहास को काबू में करता है, और उसे अपने ढंग से व्याख्यायित करता है। न्गुगी वा थ्योंगो की एक बात यहाँ द्रष्टव्य है। वह लिखते हैं कि “उपनिवेशवाद का वास्तविक उद्देश्य जनता की संपत्ति पर नियंत्रण रखना था। उन्हें इस पर भी नियंत्रण रखना था कि जनता किस चीज़ का उत्पादन करती है, किस तरह उत्पादन करती है और इसका वितरण किस तरह होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो वास्तविक जीवन की भाषा के समूचे साम्राज्य पर उसे नियंत्रण रखना था। उपनिवेशवाद ने भौतिक सम्पदा के सामाजिक उत्पादन पर सैनिक विजय के जरिए अपना नियंत्रण रखा और राजनीतिक अधिनायकवाद द्वारा उसे परिपुष्ट किया। लेकिन प्रभुत्व का इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र उपनिवेश की जनता का मानसिक जगत था जिस पर उस संस्कृति के जरिए नियंत्रण न तो कभी पूरा हो सकता है और न कारगर। जनता की संस्कृति पर नियंत्रण का मतलब दूसरों के सन्दर्भ में खुद को परिभाषित करने के उपकरणों पर नियंत्रण करना है।

उपनिवेशवादियों की इस प्रक्रिया में दो पहलू निहित थे : जनसंस्कृति का विध्वंस अर्थात जनता की कला, नृत्य, धर्म, इतिहास, भूगोल, शिक्षा, मौखिक साहित्य और लिखित साहित्य का विध्वंस अथवा जानबूझकर जनसंस्कृति के महत्व को कम करके आंकना। इसका दूसरा पहलू था उपनिवेशवादियों की भाषा को सचेत ढंग से काफी विकसित भाषा के रूप में प्रस्तुत करना। गुलाम देशों की जनता के मानसिक जगत पर प्रभुत्व कायम करने के लिए यह बुनियादी शर्त थी कि जनता की भाषा पर उपनिवेशवादी देशों की भाषा का प्रभुत्व हो।”[29] न्गुगी ने यह बात ‘अफ्रीकी साहित्य की

---

[28]मैनेजर पाण्डेय, लोकगीतों और गीतों में 1857, 2015, राष्ट्रिय पुस्तक न्यास, पृष्ठ 39

[29] न्गुगी वा थ्योंगो, औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली , आनन्दस्वरूप वर्मा (अनु.), 2010, : पृष्ठ 77

भाषा' नामक लेख में लिखी है जो कि भारतीय साहित्य की भाषा के सन्दर्भ में एकदम सटीक रूप से लागू होता है। कंपनी राज ने भारत में उत्पादन और उत्पादन की प्रक्रिया को समझने और मजबूती से ब्रिटिश हुकूमत को स्थापित करने का कार्य भारत में किया था । इसे भाषा, साहित्य और संस्कृति के स्तर पर फोर्ट विलियम कॉलेज के हवाले किया गया। इन्ही हालातों में हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक साहित्य का उदय हुआ। रीतिकालीन और सामंती मानसिकता को त्याग कर सीधे जनता की आवाज को साहित्य में दाखिल किया गया जिसे मोटे तौर पर आधुनिकता के नाम से अभिहित किया गया। गौरतलब है कि अंग्रेजी और देशी आधुनिकता के बीच एक मतभेद है और यह सवाल बेहद महत्वपूर्ण है कि भारत में आधुनिकता का आगमन कैसे हुआ ? इस मतभेद को भी हम ऊपर इंगित न्गुगी की बात से समझ सकते हैं कि औपनिवेशिक सांस्कृतिक बदलाव का मंतव्य क्या होता है ! मृत्युंजय ने एडवर्ड सईद और एजाज अहमद के हवाले से लिखा है कि " 'आधुनिकता' का जो रूप अंग्रेज यहाँ लेकर आये थे, वह किसी औद्योगिक बदलाव की नींव पर नहीं टिका था, न किसी ऐसे औद्योगिक बदलाव के कारण था जिसमें भारतीय सामाजिक संरचना में वर्गों के अंतर्विरोध का कारण कहा जा सके, वरन हिंदुस्तान को औपनिवेशिक शोषण के लायक बनाने की आवश्यकताओं के कारण उपजा था। यहाँ स्थापित आधुनिकता के अलग प्रकार थे। एडवर्ड सईद से बहस करते हुए मार्क्स के इस कथन को ब्रिटिश शासन भारत में 'इतिहास का अवचेतन औजार' है, उसके समूचे परिदृश्य में रखते हुए एजाज अहमद ने कहा- 'ब्रिटेन ने जो इतिहास असल में बनाया, उसके बाद कौन इस तरह के 'अवचेतन औजार की चाह करेगा?' आगे उन्होंने यह भी कहा- अब यह एकदम साफ है कि यह उपनिवेशवाद हमारे लिए कोई 'क्रांति' नहीं लेकर आया था, बल्कि यक़ीनन इसने हमारे संकटग्रस्त समाज के सामने पिछड़ी हुई संकल्पनाएँ प्रस्तुत की थी। यह संकट अठारहवीं सदी में तकनीकी और उत्पादन में गतिरोध के रूप में सामने आया।"[30] भारतीय समाज में प्रतिरोधी स्वर को ध्यान में रखें और इस बहस पर विचार करें तो एजाज अहमद से हमें सहमत होना चाहिए। मसलन भक्तिकाल में कबीर

[30] मृत्युंजय, हिंदी आलोचना में कैनन निर्माण की प्रक्रिया, 2015, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : पृष्ठ 33

दास, तुलसीदास, मीराबाई, रैदास के साथ रीतिकालीन कवि भी अंग्रेजी हुकूमत या वर्चस्ववादी ताकतों के खतरे को भांप रहे थे। पद्माकर ने लिखा की

"मीनागढ़ बम्बई सुमंद मंदराज बंग,
बंदर को बंद करी बन्दर बसावैगो।
कहै पदमाकर कसकि कास्मीर हूँ को,
पिंजर सों घेरी के कलिंजर छुड़ावैगो
बाँका नृप दौलत अलीशा महाराज कबौ,
सजि दल पकरी फिरंगन दबावैगो।
दिल्ली दहपट्टी, पटना हूँ को झपट करी,
कबहूंक लता कलकत्ता को उड़ावैगो।।"[31]

पद्माकर का समय 1753 से 1833 (संवत1810-1890)है। इस पद्य में उनकी चिंता अंग्रेजी राज की आने वाली भयावहता है। गुलामी से मुक्ति आधुनिकता की बुनियादी शर्तों में से एक है। इस तरह की मुक्ति की आवाज़ के पद्य हिंदी साहित्य में अन्यत्र कम मिल पायेंगे ।

इन्हीं सब सामाजिक और राजनैतिक उथल पुथल और अनगढ़ेपन के बीच 1857 का विद्रोह भारतीय समाज के लिए जितना हतोत्साहित करने वाला था उतना ही प्रोत्साहित करने वाला भी था। ब्रिटिश हुकूमत के दमन और उसके पराजय से भारतीय जनमानस में भयंकर पीड़ा थी। वहीं भविष्य की आशा भी दिखाई दे रही थी। 1874 में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'विसूचिका रोग' नाम से एक व्यंग्यात्मक टिप्पणी की उन्होंने लिखा कि "...जब अंग्रेज विलायत से आते हैं तो प्राय: कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिंदुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बन कर जाते हैं... इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।"[32] इस व्यंग्य में पराजय का मनोभाव ध्वनित नहीं होता है।

[31] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद: पृष्ठ 212

[32] भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रन्थावली, खंड 6, संपादक ओमप्रकाश सिंह, 2008, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली: पृष्ठ 278

भारतेंदु उन प्रारंभिक रचनाकारों में से हैं जिन्होंने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ मुखर रूप से अपनी पीड़ा जाहिर की थी । उनकी रचना ‘भारत दुर्दशा’ (1880) इसका प्रमाण है। इसमें उन्होंने अपनी पीड़ा कुछ इस प्रकार व्यक्त की है -

“रोवहु सब मिलिकै भारत भाई।
हा हा ! भारत दुर्दशा देखी न जाई।
अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेश चली जात इहै अति ख्वारी।”[33]

यही पीड़ादायक अभिव्यक्ति औपनिवेशिक कालीन हिंदी साहित्य की भी है। इसको और स्पष्ट ढंग से समझने के लिए प्रतिबंधित गीत से एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

“पंचो कान लगा कर सुन्ना घर में राज लुटेरों का।
पंचो कान लगा कर सुन्ना घर में राज लुटेरों का।
दिन घौली डाका डलवाते,
घर बार की जफ्ती करवाते,
चकमा दे स्वामी फंसवाते,
गुलछर्रे फिर आप उड़ाते”[34]

लेकिन इस पीड़ा को ब्रिटिश हुकूमत के प्रतिबंधन संबधी कानूनों ने दुगुना कर दिया जिसके मानदंड में ही उन्होंने 1857 से सम्बन्धी कोई रचना न छपने को शामिल किया था। इस विद्रोह से सम्बंधित अनेक रचनाएँ प्रतिबंधित की गई और अनेक रचनाएँ प्रतिबन्ध के डर से छपी ही नहीं। इसमें कविता, लोकगीत और नाटक जैसी साहित्यिक विधाएं शामिल हैं। भगवान दास माहौर ने लिखा है कि “अंग्रेजी राज के

[33] भारतेंदु समग्र, संपादक हेमंत शर्मा, प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना, 2002, वाराणसी: पृष्ठ 461

[34] स्वामी हरिशंकर , ‘कलम का जौहर यानि स्वराज्य देवी ’, स्वातन्त्र्य –स्वर , 1997, संस्कृति विभाग उत्तर प्रदेश : पृष्ठ 30

प्रति 'भक्ति' अब इस युग में औपचारिक रूप में भी नहीं दिखती, उसके स्थान में गहरी 'अप्रीति' ही अब दिखती है। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के अंत होने में अभी काफी देर थी और भारतीय दंड-विधान की 121 ए और 124 ए आदि धाराएँ अभी अपना दमनकारी काम कर रही थीं। ब्रिटिश सरकार साहित्य में यदि किसी बात के अंकन से सबसे ज्यादा भड़कती थी तो 1857 के स्वाधीनता संग्राम के रूप से तथा सेना और प्रकाशकों को अपने लेखन और प्रकाशन के लिए थोड़े समय के लिए जेल काट आना उतना कठिन नहीं होता था। जितना प्रेस की जब्ती और प्रकाशित कृति के जब्त किए जाने से होने वाली आर्थिक हानि का सहना। यह बात भी साहित्य में 1857 और उसकी घटना के अंकित होने में बाधक थी, और तब तक रही जब तक भारत से ब्रिटिश शासन व्यावहारिक रूप में समाप्त नहीं हो गया। इस परिस्थिति में इस युग में 1857 सम्बन्धी ऐसे नाटक प्रणीत हुए जो खेले तो गए परन्तु छप कर प्रकाशित नहीं किये गए, ऐसी कवितायें भी प्रणीत हुईं जो कवि सम्मेलनों में खुले आम पढ़ी तो गयीं परन्तु छापी नहीं गयीं। ऐसी जो रचनाएं छापी गयीं वे सरकार द्वारा तुरंत जब्त भी कर ली गईं जिससे उनके लेखकों और प्रकाशकों को महान आर्थिक हानि उठानी पड़ी।"[35] इसलिए 1857 सम्बन्धी उपलब्ध प्रतिबंधित कविताओं के साथ उर्दू और हिंदी में लोकगीत भी कम उपलब्ध हैं। प्रतिबंधित वीर छंद (आल्हा) में एक गीत इस प्रकार है –

"ऐसौ राज फिरंगी आयौ, परजा रही बहुत अकुलाय।
इसी वजह से सत्तावन में दिनों यहाँ पर गदर मचाय।।
हाल सुना दे कुछ उसका भी किस्सा साफ समझ आ जाय।
पूना के नाना साहब पेशवा उनको दिया बिठूर पठाय।।
जब्त किया सब शासन उनका लिया अपने में उसे मिलाय।

[35] डॉ. भगवान दास माहौर, '1857के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव', 2008, कॉन्फ्लुएंस इंटरनेशनल, नई दिल्ली : पृष्ठ 234

करी जब्त फिर पिंशन उनकी दीना ऐसा हुकम सुनाय।।"[36]

इस आल्हा छंद की शुरुआत जगदम्बा की स्तुति से होती है। उपर्युक्त पंक्ति में कवि कहता है कि ब्रिटिश राज का आतंक भारत में ऐसा छा गया है कि जनता परेशान है। इसी वजह से 1857 का संग्राम हुआ था। फिर ब्रिटिश दमन का उल्लेख भी मिलता है। इन गीतों और कविताओं में सबसे अधिक चिंता भारत की आर्थिक बदहाली की है। 1857 को आमतौर पर आज भी बहुत सामान्य ढंग से सिपाही विद्रोह के रूप में याद किया जाता है। प्रतिबंधित हिंदी कविताओं को केंद्र में रखकर देखने से जहाँ एक तरफ विद्रोह के निहितार्थ समझ में आते हैं, वहीं दूसरी तरफ ब्रिटिश साम्राज्य की गहरी साजिश का भी पता चलता है। प्रतिबंधित कवियों ने 1857 से संबंधित नायकों को बखूबी याद किया है -

"स्वतन्त्रता की समर-भूमि में
अधिक वीर बलिदान हुए
XXX
वीर कुंवर सिंह लड़े अंत तक
गंगा जी को पार किया।।"[37]

20वीं सदी के आरम्भ से ही भारत एक बार फिर से नई ऊर्जा के साथ अपनी गुलामी की बेड़ियों को तोड़कर फेंकने को तैयार हो रहा था। इसकी मुख्य वजह एक तरफ 20 वीं सदी के प्रथम दशक में गोपाल कृष्ण गोखले और बाल गंगाधर तिलक थे तो, दूसरी तरफ महात्मा गाँधी, भगत सिंह और डॉ. भीमराव अम्बेडकर थे। स्वतन्त्रता आन्दोलन की लड़ाई जितने जोश और खरोश से चल रही थी, उतनी तेज़ गति से दमन भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद कर रहा था। इसका प्रभाव सीधे-सीधे तत्कालिक लेखकों के ऊपर पड़ा और लेखकों ने भी इन स्वतन्त्रता सेनानियों का खूब साथ दिया। ब्रिटिश हुकूमत दो तरफा

---

[36] पी.एस. वर्मा बुलंद सहर, 'गाँधी की लड़ाई उर्फ़ सत्याग्रह का इतिहास', स्वातन्त्र्य –स्वर, 1997, संस्कृति विभाग उत्तर प्रदेश : पृष्ठ 9

[37] श्री स्वामी विचारानंद जी सरस्वती, 'विचार तरंग', स्वातन्त्र्य –स्वर, 1997, संस्कृति विभाग उत्तर प्रदेश : पृष्ठ 40

दमन कर रही थी। एक तरफ स्वतन्त्रता सेनानियों को जेल में डाला जा रहा था और फाँसी दी जा रही थी तो दूसरी तरफ लेखकों को भी कड़ी सज़ा मिल रही थी। साथ ही दमनात्मक कानूनों के और कड़े प्रावधान भी किये जा रहे थे। नरेंद्र शुक्ल ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि "किन्तु गुप्तचर व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण, राजभक्त समाचार पत्रों को सहायता जैसे प्रयोगों, और राजद्रोह के अधिक अभियोग जैसी नीतियों के बावजूद प्रशासन मुद्रित साहित्य से राजद्रोह की गतिविधियों को रोक पाने में असफल रहा था। इस सम्बन्ध में भारत में ब्रिटिश सरकार ने विधि सलाहकार बी. लिंडस से दो प्रश्नों पर विचार करने को कहा था-

1. क्या देश में प्रेस पर और अधिक कड़े नियंत्रण के लिए किसी विधायी उपाय की आवश्यकता है?
2. अगर आवश्यकता है तो उसका विधायी स्वरूप क्या हो ?

बी. लिंडस ने विधि सलाहकार के तौर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था कि, "पहले प्रश्न का तो एक ही उत्तर हो सकता है कि राजद्रोही साहित्य के प्रकाशन व प्रसार को रोकने के लिए वर्तमान कानून पूरी तरह से शक्तिहीन हैं इसलिए नए उपायों की अत्यंत आवश्यकता है।... राजद्रोह वास्तव में एक विशिष्ट रोग की तरह है और ऐसे रोग को ठीक करने के लिए विशेष और कठोर उपाय की आवश्यकता होती है... वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट 1878, जो राजद्रोह पूर्ण साहित्य को दबाने के लिए लाया गया था, उसका कभी प्रयोग न किया जाना, यह नहीं दिखाता है कि वह अनुपयोगी उपाय था... दूसरी तरफ धारा 124 ए में संशोधन असफल सिद्ध हो चुका है... अदालतों के दंड का प्रभाव, मुकदमों की देरी के कारण खत्म हो जाता है तथा मुकदमों का प्रचार परिस्थिति को और बिगाड़ देता है।... राजद्रोहपूर्ण साहित्य को दबाने सम्बन्धी कानून पर विचार करते समय मेरी राय है कि यह केवल समाचार पत्रों पर लागू न हो बल्कि यह प्रेस से निकलने वाली सभी प्रकार की वस्तु, पुस्तक, पैम्फलेट, बड़ा चिट्ठा, विज्ञप्ति, मुद्रित प्रति या जो कुछ भी हो, पर भी लागू हो जैसा कि वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट 1878 के अनुच्छेद 1 में है। ...नए कानून में दूसरी जो महत्वपूर्ण चीज़ होनी चाहिए कि प्रेस की जब्ती के लिए

अभियोग की बाध्यता न हो। तीसरा यह भी कि भारत के बाहर से आने वाले राजद्रोहपूर्ण साहित्य पर पूरी तरह प्रतिबन्ध होना चाहिए... और अंतिम बात जो कानून में होनी चाहिए, वह यह है कि जिस प्रेस से भी धारा 124 ए का उल्लंघन करने वाली सामग्री निकले, उसे भी जब्त करना चाहिए। अभी तक अगर धारा 124 ए के अंतर्गत आरोपी व्यक्ति अगर प्रेस का स्वामी नहीं है तब यह अनुच्छेद प्रेस को जब्त करने की इज़ाज़त नहीं देता है।"[38] इसी के फलस्वरूप गवर्नर जनरल ने भारतीय प्रेस अधिनियम, 1910 के रूप में नए प्रेस कानून को अमल में लाने का निर्णय लिया था। इसमें निहित किया गया कि किसी मुद्रणालय के स्वामी या समाचार-पत्र के प्रकाशन से स्थानीय सरकार पंजीकरण जमानत माँग सकती है, जो कि न्यूनतम रु. 500 तथा अधिकतम रु. 2000 होगी। इसके अलावा आपत्तिजनक सामग्री के निर्णय का अधिकार प्रांतीय सरकार को होगा न कि अदालत को। लेकिन प्रतिबन्धित लेखक, कवि और लोक साहित्यकार ब्रिटिश हुकूमत के इन काले कानूनों से डरे नहीं। उन्होंने अपने जन नायकों को जी भर याद किया और उनकी गाथाओं को भारतीय जनता तक बखूबी पहुंचाया। मसलन इन लोकगीतकारों ने लिखा –

"शहर-शहर में जलसे कीने घर-घर खबर दई पहुंचाय।
महासभायें कायम कीनी शहर-शहर में दई बनाय।।
हाल समझ गए सारे गोरा तिलक देव को पकड़ा जाय।
बाल तिलक सी. आर. दास ने लानी बागडोर सगुवाय।।
पंजाब केसरी परमानंद ने आफत दिनी एक मचाय।
इसी बीच में गाँधी जी ने दीना अपना पैर बढ़ाय।"[39]

[38] नरेंद्र शुक्ल, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और प्रतिबंधित साहित्य सयुक्त प्रान्त के विशेष सन्दर्भ में (1907-1935), 2014 नेहरु स्मारक संग्रहालयएवं पुस्तकालय, नई दिल्ली, पृष्ठ: 9

[39] पी.एस. वर्मा, बुलंद सहर, 'गाँधी की लड़ाई उर्फ़ सत्याग्रह का इतिहास', स्वातन्त्र्य –स्वर , 1997, संस्कृति विभाग उत्तर प्रदेश, पृष्ठ: 13

इसी तरह के गीत और कवितायें भगत सिंह, बिस्मिल इत्यादि जननायकों पर भी अन्यत्र मिलती हैं। इन कवियों को पूर्ण विश्वास था कि एक दिन निश्चित रूप से भारत को आज़ादी मिलेगी और उसके बाद कोई खाली पेट नहीं रहेगा, सबके तन पर वस्त्र होगा। इसीलिए वे लिखते हैं –

"दुनिया से गुलामी का मैं नाम मिटा दूंगा,
एक बार जमाने को आजाद बना दूंगा।
बेचारे गरीबों से नफरत हैं जिन्हें, एक दिन,
मैं उनकी अमीरी को मिट्टी में मिला दूंगा।"[40]

दुनिया में साम्राज्यवादी झूठ के खात्मे हेतु प्रतिबंधित रचनाकार संकल्पबद्ध दिखते हैं। इसीलिए किसान, मजदूर, नारी अर्थात समाज में हाशिये पर अवस्थित चरित्रों को अपनी रचनाओं में प्रश्रय देते हैं और उनकी पीड़ा को अभिव्यक्त करते हैं। इनकी मुक्ति के लिए नौजवानों से आह्वान करते हैं कि -

"बरतानियों को खून के आँसू रुलाएगा ,
गिन-गिन के अब हर एक का बदला चुकाएगा।
पाबंद हिन्द दम व दिलासा नहीं रहा,
कालों से छेड़ करना अमाषा नहीं रहा।
हां ऐ जवाने-मुल्क, ज़रा मैं भी देख लूं,
लाता है रंग कैसा, भगतसिंह का ये खूं।
सुखदेव, राजगुरु से तुम्हे कितना प्यार है,
यह शोर इक़बाल को ढाता है क्या जुनू।
देखूँगा मैं इसे भी कि बदला है क्या लिया,
उस रोज़ गैर पढ़ते हैं किस-किस का मर्सिया। "[41]

---

[40] सरयू, 'गुलामी मिटा दो 'संपादक रामजन्म शर्मा 'जब्तशुदा गीत' 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली : पृष्ठ 42

[41] अज्ञात , 'नौजवानों' संपादक रामजन्म शर्मा 'जब्तशुदा गीत' 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली : पृष्ठ 34

इसीलिए प्रतिबंधित कविताओं और लोक कविताओं में 1857 के साथ जलियांवाला बाग नरसंहार, काकोरी कांड और चौरा-चौरी को बार बार याद करते हैं। इसके लिए प्रतिबंधित साहित्यकार हिन्दू मुस्लिमों में एकता के लिए भी पुकार लगाते हैं। उनकी होली भी देश की स्वाधीनता को समर्पित है-

"मतवालापन वही फिर दिखलाई देगा,
'रसिक'सुनेंगे वही ध्वनि करताल की।
झोली खुल जाएगी अबीर और कुमकुम की,
धूम मच जाएगी कबीर के जमाल की।।
पाप, दुराचार, अत्याचार भस्मीभूत होंगे,
उपमा मिलेगी न विशाल इक़बाल की।
होली स्वच्छंद की होगी पार साल तब,
गाल पर शोभा देगी लालिमा गुलाल की।।"[42]

प्रतिबंधित कवियों ने अपने लेखन के लिए जनता को चुना और उसकी मुक्ति के लिए अपनी रचना और खुद को दमन की आग में झोंक दिया। एदुआर्दो गालेआनो के शब्दों में अगर कहें तो "दरअसल, लिखना कुछ-कुछ मौत से लड़ने जैसा है। यह लड़ाई है हमारे अन्दर और बाहर फैली मुर्दा उदासी और बेरुखी के खिलाफ है। लेकिन यह आनेवाली पीढ़ियों के काम तभी आ सकती है जब यह अपनी पहचान के लिए संघर्षरत समुदाय की जरूरतों से खुद को जोड़ लेती है।" वे ऐसे कवि थे जो तात्कालिक दमन से लड़कर भविष्य से दमन का नाम मिटाने का हौसला रखते दिखाई पड़ते हैं। इसको अभिव्यक्त करने के लिए किसी बाहरी साहित्यिक रूप को नहीं स्वीकार करते हैं , बल्कि परम्परागत रूप से मौजूद लोक परम्परा की शैलियों का उपयोग करते हैं। विदेश में धन जाने की पीड़ा से वे इतने विचलित थे कि विदेश के साहित्यिक रूप से भी दूरी बनाकर चलते थे।

[42] बलभद्र गुप्त विशारद 'रसिक', खून के छींटे, संकलन संपादन रुस्तम राय, प्रतिबंधित हिंदी साहित्य , खंड 2, 1999, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली: पृष्ठ 22

ज़ब्तशुदा गीत : आज़ादी और एकता के तराने

'ज़ब्तशुदा गीत' रामजन्म शर्मा द्वारा सम्पादित स्वदेशी एकता और देशप्रेम से सम्बंधित गीतों का संग्रह है। इन गीतों का प्रकाशन 1922 ई. से 1932 ई. के बीच हुआ है। इन गीतों से सम्बंधित एक महत्वपूर्ण बात यह है कि 'अन्य भाषाओं के गीत भी देवनागरी लिपि में लिखे गए थे। पंजाबी, बांग्ला के अधिकांश गीत देवनागरी लिपि में लिखे गए थे।'[43] हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में पहली चीज़ तो यह ध्यान में रखनी चाहिए कि साहित्य के इतिहास में गीतों के ऐतिहासिक महत्व पर कोई संतोषप्रद बात नहीं होती है। दूसरी बात यह है कि अन्य भारतीय भाषाओं को हिन्दी साहित्य से दूर ही रखा गया है। मसलन हिन्दी को बांग्ला से प्रभावित तो माना जाता है लेकिन पंजाबी और अन्य भाषाओं से हिंदी के सम्बन्ध पर विचार नहीं किया जाता है। प्रतिबंधित गीतों को पढ़ते हुए आश्चर्यजनक रूप से हिन्दी के अन्य भाषाओं से सांस्कृतिक संबंधों का पता मिलता है। प्रतिबंधित गीतों में देश की चिंता इतनी व्यापक है कि भाषाओं की दीवारें टूट कर बिखरती हुई नज़र आती हैं। इक़बाल का एक गीत है -

"चिश्ती ने जिस ज़मीं पे पैग़ामे हक़ सुनाया,
नानक ने जिस चमन में बदहत का गीत गाया,
तातारियों ने जिसको अपना वतन बनाया,
जिसने हेजाजियों से दश्ते अरब छुड़ाया,
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है !"[44]

इस गीत पर अंग्रेजी हुकूमत ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। यह गीत भारत की भाषायी एकता और सांस्कृतिक इतिहास के सौन्दर्य का जीवंत साक्ष्य है। प्रतिबंधित गीतों के रचयिता अपने संग्रहों की भूमिका में आह्वान करते थे कि "अब वह समय आ गया है, जब प्रत्येक कवि देश की दुर्दशा का चित्र खींचकर सामने रख दे, ऐसे चतुर चित्तेरों की ही आवश्यकता है। स्वागत वे आए ! ऐसा वर्णन जिसे

[43] भूमिका से ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली.

[44] इकबाल 'मेरा वतन', ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा, 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ 11

सुनकर पाषाण पिघल उठे-नव अचल चलायमान हो उठे सब-जग जाएं-जीवन-ज्योति देश के कोने-कोने में...!"[45]

इन गीतों का प्रकाशन समय ऊपर दिया गया है। इस समय के वैश्विक परिदृश्य को देखे तो यह सारे गीत प्रथम विश्व युद्ध के बाद के हैं। जिस दौर में भारतीय जनता सबसे अधिक ठगी हुई महसूस कर रही थी। एक तरफ युद्ध की विभीषिका थी तो, दूसरी तरफ भारतीय जनता की हताशा थी। तूफ़ान नामक एक गीतकार ने इसको ध्यान में रखते हुए एक गीत लिखा जिसका शीर्षक 'विद्रोही सैनिक' है। उन्होंने लिखा-

"बूढ़ी माँ की सर्द साँस से,
फूट पड़ा चिर सुख का झरना।
वृद्ध पिता का पिंजर बोला,
'जीने से बेहतर है मरना।'"[46]

इस पूरे गीत में विद्रोही सैनिक की सारी पीढ़ी हताश दिखाई पड़ती है। गीत के माध्यम से गीतकार ने ऐसे सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है जहाँ बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को मृत्यु के अलावा और कोई विकल्प नहीं दिखाई देता है-

"छीन सकती है नहीं सरकार वन्दे मातरम,
हम गरीबों के गले का हार वन्दे मातरम।
सरचढ़ों के सर में चक्कर उस समय आता जरूर,
कान में पहुंची जहां झंकार वन्दे मातरम।"[47]

[45] भूमिका से ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली.

[46] तूफ़ान, 'विद्रोही सैनिक',ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ 1

[47] अज्ञात, 'वंदे मातरम्',ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा (2012), प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ:4

लेकिन यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि 'वन्दे मातरम' या माता की वन्दना मजहब के बन्धनों से मुक्त है। गीतकार ने वन्दे मातरम् को एक राष्ट्रीय मन्त्र के रूप में प्रस्तावित करते हुए लिखा है-

"बोलियो सब मिल महाशय मंत्र वन्दे मातरम
तीनों भुवन में गूंज जाए शब्द वन्दे मातरम।
बन जाए सुखदाई हमारा मंत्र वन्दे मातरम्
हो हमारी पाठ-पूजा मंत्र वंदे मातरम्
मंदिर व मस्जिद और गुरुद्वारा व गिरजा हो यही,
मजहब बने हम सभी का एक वन्दे मातरम्।"[48]

अन्य गीतों में वन्दे मातरम् को गरीबी और जुल्म को खत्म करने वाला मंत्र के रूप में भी दिखलाने की कोशिश की गई है।

जिस तरह से वन्दे मातरम् स्वतन्त्रता सेनानियों और देशभक्त कवियों, गीतकारों को आकर्षित किया। उसी तरह से झंडा गीत भी को भी इन रचनाकारों ने खूब गाया। तिरंगा झंडा को आजादी की लड़ाई का प्रमुख हथियार के रूप में देखा जाता था। देश के स्वतन्त्रता सेनानी हाथ में तिरंगा झंडा लेकर लड़ाई के मैदान में जाते थे। इस झंडे को हिन्दू-मुस्लिम एकता के रूप में भी दिखलाने की कोशिश किया गया है। इसी झंडे के नीचे खड़े होकर युवा प्रतिज्ञा करते थे की देश की आजादी सर्वोपरी है। श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' का एक झंडा गीत इस प्रकार है।

"विजयी विश्व तिरंगा प्यारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

[48]पं. कन्हैयालाल दीक्षित 'इंद्र', 'वंदे मातरम्', ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा, 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ:5

सदा शक्ति बरसाने वाला,

प्रेम सुधा सरसाने वाला,

xx xx xx

स्वतन्त्रता के भीषण रण में

लखकर बढ़े जोश क्षण-क्षण में,"[49]

यह तिरंगा झंडा भारतीय साहित्य, संस्कृति और समाज की एकता को बनाये रखने का जिम्मेदार था। जिसकी वजह से अंग्रेजी हुकूमत डर खाती थी। साहित्य और सांस्कृतिक एकता के बारे में आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि "किसी देश के साहित्य का सम्बन्ध उस देश की संस्कृति परम्परा से होता है। अंत: साहित्य की भाषा उस संस्कृति का त्याग करके नहीं चल सकती। भाषा में जो रोचकता या शब्दों में जो सौन्दर्य का भाव रहता है वह देश की प्रकृति के अनुसार होता है। इस प्रवृति के निर्माण में जिस प्रकार देश के प्राकृतिक रूप, रंग, आचार व्यवहार आदि का योग रहता है उसी प्रकार परम्परा से चले आते हुए साहित्य का भी।"[50] इस पूरे सांस्कृतिक बोध को प्रतिबंधित रचनाकारों ने आत्मसात किया। जिस तरह से मज़हब के नाम पर देश में फूट पड़ रही थी। उसको एकताबद्ध करने के लिए हिन्दू - मुस्लिम रचनाकार जिम्मेदारी के साथ लिख रहे थे। उर्दू के मशहूर रचनाकार इकबाल के गीत इस प्रकार है –

"मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना,

हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्ता हमारा

यूनानो-मिस्रो-रोमा, सब मिट गये जहाँ से,

अब तक मगर है बाक़ी नामो-निशां हमारा।

[49]श्यामलाल गुप्त, 'पार्षद', 'झंडा गीत', ज़ब्तशुदा गीतः आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ 2

[50] आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 302

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे ज़मां हमारा।"[51]

इस तरह के कई गीतों को प्रतिबंधित किया गया है। जैसे 1930 में 'हिंदोस्ता हमारा' नाम से दो गीत एक इकबाल और दूसरा शातिर द्वारा लिखित गीत। जिसमें भारतीय संस्कृति की झलक तो मिलती ही है। साथ-ही-साथ इनमें भारत की प्रशस्ति भी है। इसी भारत की प्रशस्ति के माध्यम से देश की जनता में देशभक्ति की लहर पैदा की जा रही थी। लोगों के ऊपर इसकी अटूट छाप दृष्टिगत होती थी। बच्चे बूढ़े जवान सभी आज़ादी के दीवाने होकर झूम उठते थे। और कहते थे-

"कफ़स में करके मुझे यों न धमकियां दे तू
याद कर ले मेरे नालों में असर आने की।

सितम की तेगे जफ़ा सुर्ख फ़ाम है अरमां,
हवस है दिल की शहादत पे खून बहाने की।"[52]

सभी भारतवासी एकजुट थे। हिन्दू-मुस्लिम सभी एक थे। तब कोई भेदभाव नहीं रह गया था। सभी के हृदय में राष्ट्र-प्रेम की धारा बह रही थी। नौजवान फाँसी के फंदों को मानों कंधे पर रखकर घूम रहे थे। उनके मुँह से अनायास ही निकल पड़ता था।

"अस्ताचल के श्याम शिखर पर,
छवि विहीन बेहाल।

---

[51] इकबाल, 'हिन्दोस्तां हमारा', ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ 10

[52]असग़र, 'सैयाद की करामत', ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा, 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ :15

दिन-मणि देख रहा है मुझको,

अब दो फंदा डाल।

जिस पथ पर आरूढ़ हुआ मैं,

यद्यपि वह विकराल।

किन्तु इसी पथ पर चलने में

मिलती विजय विशाल।"[53]

स्वराज्य प्राप्त करने के लिए देशवासियों ने जितने आन्दोलन चलाए, उन सभी के द्वारा अंग्रेजी हुकूमत को चेतवानी दी गई थी कि, हमें जल्दी आज़ादी दो। जिसके लिए उन्होंने अहिंसा और हिंसा दोनों का मार्ग चुना था।

जो करते हो मुझ पर सितम, देख लेना,

अलम का नतीजा अलम, देख लेना।

लगें वां मुकाबिल, अगर गन मशीनें

अड़ा देंगे छाती को हम, देख लेना।[54]

देश की आज़ादी के लिए सैकड़ों लोग शहीद हुए थे। सभी माएं अपने बेटों को देश के लिए शहीद बनने के लिए पैगाम भेजती थीं। एक माँ का संदेश इस प्रकार है

"मेरे पुत्रों को यह पैगाम दे देना जरा बेटा,

मर मिटो देश की खातिर, मेरे लख्ते-जिगर बेटा।

---

[53] प्रणयेश शर्मा, 'फांसी', ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा (2012), प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ 17

[54] मारकंडेय शायर, 'चेतावनी', ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ 28

जना करती हैं जिस दिन के लिए औलाद माताएं,
मेरे शेरों से कह देना कि वह दिन आ गया बेटा।

जहां में बुज़दिलों की भांति रोने-गिड़गिड़ाने से,
किसी को हक़ मिला भी है, बताओ तो भला बेटा।

सुना है सिंहनी एक शेर जनकर सुख से सोती है,
करोड़ों शेरों के होते हुए, दुःख पा रही बेटा।

तुम्हारी शक्ल देखूंगी न हरगिज दूध बख्शूंगी,
निकालोगे न तुम जब तक विदेशी वस्तु को बेटा।

'रामसिंह' जिस्म खाकी खाक में मिलता है, मिलने दो,
करो मात मौत का खटका, अमर है आत्मा बेटा।"[55]

यहाँ एक बात सोचने की जरूरत है कि पूरे प्रतिबंधित साहित्य में नौजवानों को एक उम्मीद के साथ देखा गया है। जो आगे चलकर रामप्रसाद बिस्मिल, असफाकउल्ला खां और भगत सिंह के रूप में हमारे सामने होते हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में भारत के क्रांतिवीरों के प्रति उदासीनता दिखाई गयी है। लेकिन प्रतिबंधित रचनाकारों ने इसके प्रति बहुत ही आदर्शवादी रुख अपनाया है। पद्य से लेकर गद्य तक में स्वतन्त्रता से सम्बंधित नायको को याद किया गया है। यहाँ तक की नायकों पर एक कविता ही नहीं लिखी गई बल्कि पूरे-के-पूरे विचार को भी साहित्य में उतार दिया गया है। मसलन

[55] रामसिंह, 'पैग़ाम', ज़ब्तशुदा गीतः आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा, 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ 30

महात्मा गाँधी का स्वदेशी आन्दोलन से सम्बंधित आग्रहों को इस प्रकार जनता के बीच ले जाया गया।

"बहुत हो चुका, अब सहें हम कहां तक,
ये बेईमानी सारी हटानी पड़ेगी।

विदेशी वसन और नशे की जिनिस पर,
हमें अब पिकेटिंग करनी पड़ेगी।

नमक को बनाकर और कद बंद करके,
आज़ादी की झंडी उड़ानी पड़ेगी।"[56]

इसी तरह स्वतंत्रता से सम्बन्धित नायकों को याद भी किया गया है और उनके विचारों जनता के बीच गीत-संगीत, कविता कहानी आदि के माध्यम से ले जाया भी गया है।

1930 तक के हिन्दी साहित्य में स्त्री की उपस्थिति को लेकर केवल दो ही महिला रचनाकारों के नाम लिए जाते हैं। एक महादेवी वर्मा और दूसरा सुभद्रा कुमारी चौहान। यह समय छायावाद का था। जब यह माना जाने लगा था कि हिंदी कविता सुगठित हो गई थी। लेकिन अन्यत्र देश में बिखरे स्त्रियों के लेखन को टटोला नहीं गया था, और यह मान लिया गया था कि हिंदी में कविता लिखने वाली मात्र दो स्त्री कवयित्री हैं। यहाँ सुमन राजे का एक वक्तव्य द्रष्टव्य है "सन 1915 से 1947 तक का समय एक राजनैतिक समय तो हो सकता है, पर जरुरी नहीं कि वह साहित्यिक समय भी हो। जिन कवियत्रियों का जन्मकाल 1915 के आस-पास है उनका रचनाकाल 1930 से पहले नहीं हो सकता और वह 1947 के बाद भी चलता रह सकता है। महादेवी वर्मा का रचना परिदृश्य इस कथन का जीवंत उदाहरण है। फिर

[56] त्रिभुवन नाथ आज़ाद 'सैनिक', ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा, 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ 47

भी कुछ प्रमुख नामों के सहारे अपनी बात कही जा सकती है। हिंदी कविता के सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि एक सांस्कृतिक नवजागरण के चिन्ह इसमें क्रमश: गहराते और अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ते दिखते हैं।"[57] आगे उन्होंने राजघरानों के यहाँ की स्त्री कविताओं का जिक्र किया है। उन्होंने स्तरीयता की भी बात कही है। लेकिन यहाँ सवाल उठता है कि जब देश गुलाम था और जनता पर अत्याचार हो रहा था तो, उस अत्याचार को मिटाने हेतु क्या स्तरीय साहित्य के माध्यम से बात की जा सकती है ? लेकिन प्रतिबंधित गीतों की महिला गीतकारों ने अपने देश की महिलाओं के सम्बन्ध में अंग्रेजो की भूल को खूब याद कराया। एक अज्ञात महिला गीतकार ने 'वीर बालिकाएं' नाम से एक गीत लिखा। जो इस प्रकार है-

"बेड़ियां गुलामी की काटें, आज़ाद करेंगी भारत को,
उजड़े उपवन में भारत के, अब प्रेम-प्रसून खिला देंगी।

कंपित होगी धरती ही क्यों, ये आसमान हिल जायेगा,
कविरत्न वज्र की भांति तड़प, रिपुदल का दिल दहला देंगी।"[58]

एक तरफ लक्ष्मीबाई और सरोजनी नायडू जैसी महिला देश की स्वतन्त्रता के लिए प्रतिबद्ध थीं। वहीं दूसरी तरफ इन महिला गीतकारों ने अपनी लेखनी से अंग्रेजी हुकूमत और पितृसत्ता दोनों पर एक साथ धावा बोल रही थी। 1930 में ही एक और गीत को प्रतिबंधित किया गया। जो इस प्रकार है

"हम बलवानों की जननी हैं, तुमको बलवान बना देंगी,
हम अबला हैं या सबला हैं, तुमको यह ध्यान दिला देंगी।

हम देश-भक्ति पर मरती हैं, न्यौछावर तन- मन करती हैं,

[57]सुमन राजे, इतिहास में स्त्री, 2015, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 23

[58] अज्ञात, 'वीर बालिकाएं', ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा, 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ 62

हम भारत के दुःख हरती हैं, होकर कुर्बान दिखा देंगी,"[59]

प्रतिबंधित गीतों के माध्यम से गीतकारों ने भारतीय समाज के संघर्ष और उस पर हुए अत्याचारों को गाया है। इन गीतों ने भाषा के बंधन को पीछे छोड़ अपने संगीत के लिए पूरे देश की जनता की कराह को सुना और लिपिबद्ध किया।

[59] कविवर डॉ. सुवर्णसिंह वर्मा 'आनंद' 'बलवानों की जननी', ज़ब्तशुदा गीतः आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा, 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली. पृष्ठ 63

आज़ादी के तराने

आज़ादी के तराने ब्रिटिश हुकूमत द्वारा उर्दू ज़बान में प्रतिबंधित कविताओं, गजलों का संग्रह है । इ सका हिंदी रूपांतरण राष्ट्रीय अभिलेखागार से 1986 में प्रकाशित हुआ था । इस संग्रह में 1929 से 1940 तक की प्रतिबंधित कविताओं, गज़लों को संग्रहित किया गया है। लेकिन इस संग्रह में किसी भी कविता ग़ज़ल का प्रकाशन समय नहीं दिया गया है । इसकी जगह अभिलेखागार में प्रतिबंधित होकर पहुँचने का समय दिया गया है। बहरहाल एक उल्लेखनीय बात यह है कि इसका विमोचन माननीय राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह जी द्वारा 13 अगस्त, 1986 को राष्ट्रपति भवन में सम्पन्न हुआ। इस पुस्तक के विमोचन के अवसर पर माननीय राष्ट्रपति जी ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि इस उर्दू पुस्तक का हिंदी रूपांतर भी प्रकाशित होना चाहिए जिससे हिंदी पाठक देश भक्ति से पूर्ण इस साहित्य से लाभान्वित हो सकें।"[60] यह बात सुनने और पढ़ने में आज सुनने में आम लगती होगी और उस समय में भी आम लगती होगी। लेकिन यह बात प्रतिबंधित साहित्य के अध्येताओं के लिए आम नहीं होगी, क्योंकि इसको कई स्तरों पर परखा जा सकता है। प्रथम तो हिंदी अध्येताओं की जो उर्दू के प्रति मानसिकता है। उस मानसिकता पर यह संकलन सवाल करती है। दूसरा 1986 तक भारत अपने विभाजन की त्रासदी से उबरा नहीं था। इस संग्रह के माध्यम से कुछ सकारात्मक प्रभाव की उम्मीद की जा सकती थी।

जैसा की ऊपर कहा गया है कि यह संग्रह उर्दू से हिंदी में रूपांतरित है। उर्दू को इस देश से जुदा ज़बान के रूप में स्वीकृति है। जिसके बारे में आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि "देश के भिन्न-भिन्न भागों में मुसलमानों के फ़ैलने तथा दिल्ली की दरबारी शिष्टता के प्रचार के साथ ही दिल्ली की खड़ी बोली शिष्ट समुदाय के परस्पर व्यवहार की भाषा हो चली थी। खुसरो ने विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में ही ब्रजभाषा के साथ-साथ खालिस खड़ी बोली में कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाई थीं। औरंगजेब के समय

[60] प्राक्कथन से, आज़ादी के तराने, राजेश कुमार परती (सं.), 1986, राष्ट्रिय अभिलेखागार, जनपथ, नई दिल्ली

से फारसी मिश्रित खड़ी बोली या रेख्ता में शायरी भी शुरू हो गई और उसका प्रचार फारसी पढ़े लिखे लोगों में बराबर बढ़ता गया। इस प्रकार खड़ी बोली को लेकर उर्दू साहित्य खड़ा हुआ, जिसमें आगे चलकर विदेशी भाषा के शब्दों का मेल भी बराबर बढ़ता गया और जिसका आदर्श भी विदेशी होता गया।"[61] यह बात आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल के शुरुआत में कही है। लेकिन जब हम प्रतिबंधित साहित्य का अध्ययन करते हैं तो यह दिखाई पड़ता है कि उर्दू ज़बान और अदब दोनों कितना देशी थी। इसीलिए राष्ट्रीय अभिलेखागार के निर्देशक (1986) राजेश कुमार परती ने लिखा है कि "साहित्य समाज की विचारधारा का प्रतीक होता है, विशेषकर वह साहित्य जो लोक गीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाये। जब यह साहित्य लोक साहित्य बन जाता है तो भाषा अपनी विशेष सांस्कृतिक एवं भाषायिक प्रवृति, धर्म एवं विश्वास तथा रीति-रिवाज के सभी बंधनों को तोड़ देती है। ऐसे साहित्य पर जन भावनाओं और समय की आवश्यकताओं के तत्व आच्छादित हो जाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि ऐसा साहित्य महाकाव्य बन जाये। सम्भवतः, इसमें महान साहित्य की विशेषताएं बहुत कम हो, किन्तु इसकी पृष्ठभूमि में जन भावनाओं की अभिव्यक्ति है उसके तत्व इतने प्रभावशाली और सुदृढ़ होते हैं कि वे ऐसे साहित्य के औचित्य बन जाते हैं।"[62] यही अभिव्यक्ति उर्दू की इन प्रतिबंधित कविताओं और ग़ज़लों में है। जो इन्हें लोक कविता के स्तर पर ले जाती है। सन 1857 ई. मिर्जा असद उल्लाह खां 'ग़ालिब' की यह पंक्तिया उदाहरण के लिए

"बस के फआल मा युरीद है आज।
हर सलहशर इंगलिस्तां का।।
घर से बाज़ार में निकलते हुए।
जोहर होता है आब इंसां का।।
चौक जिस कहें वि मकतल है।
घर बना है नमून: जिन्दा का।।

[61]आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ : 281
[62] प्रस्तावना से, आज़ादी के तराने, डॉ. राजेश कुमार परती (सं),1986, राष्ट्रिय अभिलेखागार नई दिल्ली

शहर देहली का जर्र: जर्र: ख़ाक।

तिशन:-ए-खू है हर मुसलमां का।।"[63]

यह ग़जल ग़ालिब ने 1857 में हुए दमन के बाद लिखा था। परन्तु यह ग़जल 1940 में 'आज़ादी की नज्मे' में संग्रहित हुई। अंग्रेजी हुकूमत ने इस पर पाबन्दी लगा दी। इस समय ग़ालिब की लिखी हर पंक्ति के लिए पाठक आस लगाये बैठे रहते थे। इसीलिए फ़िराक गोरखपुरी ने लिखा है कि "मिर्जा 'ग़ालिब' ने उर्दू कविता की संकुचित भूमि को इतना विस्तृत कर दिया है उसमें असीमित गुन्जायशें पैदा हो गयी है।"[64] इसी वजह से ग़ालिब की पंक्तियाँ लोगों के होठों पर रहती थी। लेकिन यहाँ ध्यान देने वाली बात है कि इस विद्रोह में मुसलमानों के साथ अंग्रेजी हुकूमत ने दिल्ली में जो सलूक किया था ग़ालिब उसी को 'तिशन:-ए-खू' या खून का प्यासा कहा है।[65]

---

[63] मिर्जा असद उल्लाह खां, 'सन 1857 ई', आज़ादी के तराने, राजेश कुमार परती(सं), 1986, राष्ट्रिय अभिलेखागार नई दिल्ली पृष्ठ 1

[64] फ़िराक गोरखपुरी, उर्दू भाषा और साहित्य, उत्तर प्रदेश संस्थान, लखनऊ, पृष्ठ 100

[65] फिराक गोरखपुरी इसके सन्दर्भ में लिखतें हैं कि "1857 का विद्रोह- इस विद्रोह की घटनायें सर्वविदित हैं। दो शहजादों –मिर्जा मुग़ल और मिर्जा खिज़र सुलतान ने विद्रोहियों का साथ दिया। विद्रोहियों ने अंग्रेजी रेजिडेंट मि. फ्रेज़र तथा अन्य अधिकारीयों को किले के बाहर मार डाला। बहादुर शाह के नाम वे फ़रमान और हुक्म जारी होने लगे किन्तु यह समझना भूल है कि बहादुर शाह ने अपनी इच्छा से विद्रोहियों का नेतृत्व किया। वास्तव में वे विद्रोहियों के वश में भी इसी प्रकार हो गये थे जैसे कि पहले अंग्रेजों के वश में थे। अंत में अंग्रेजों की जीत हुई। मिर्जा मुग़ल और मिर्जा खिज़र सुलतान को दिल्ली दरवाजे के पास गोली मार दी गयी और उनके सिर काट कर बादशाह के पास भेज दिए गए। खुद बादशाह को भी मकबरा हुमायू से, जहाँ वे अपनी परिवार के साथ छुपे थे, गिरफ्तार कर लिया। अंत में उन पर मुकदमा चला और उन्हें निर्वासन का दंड दिया गया। बेगम जीनत महल, शहजादा जवांबख्त और अन्य 14 शहजादों और बेगमों के साथ बादशाह को रंगून भेजकर नज़रबंद कर दिया गया।" *फ़िराक गोरखपुरी, उर्दू भाषा और साहित्य, 2008, उत्तर प्रदेश संस्थान, लखनऊ, पृष्ठ 136*

1857 का दमन बहुत हताश करने वाला था। जिसका तीव्र स्वर लोकसाहित्य और इतिहास की पुस्तकों में मिलता है। परिनिष्ठित साहित्य में उतनी दमन की तीव्रता नहीं मिलती है। जितनी प्रतिबन्धित साहित्य में मिलती है। इसी स्वर को उर्दू के रचनाकारों ने भी पकड़ा और लिखा

"हुब्बे वतन की जिन्स का है कहत साल क्यों।
हैरां हूँ आज कल है पड़ा इसका काल क्यों।।

कुछ हो गया जमाने का उलटा चलन यहां।
हुब्बुल वतन के बदले है बुगजुल वतन यहां।।

बिन इवज चिरगों के सीनों में दाग है।
जलते इवज चिरागों के सीनों में दाग हैं।"[66]

इस ग़ज़ल में लेखक भारत की शांति और सौन्दर्य को सामने रखते हुए यह कहता है कि हमारी यह शानो-शौकत नहीं है कि अब हम डर से बैठ जाये। 1857 के दाग अब भी हमारे सीनों में दफन है। जब तक आज़ादी नहीं मिलेगी, तब तक हम जलसे करेंगे, विद्रोह करेंगे आप आईये हमारे साथ। इस पराधीनता को हम स्वीकार नहीं करेंगे।

1947 के पहले कुछ ऐसे लेखक जरूर थे। जो तमाम साम्प्रदायिक तनावों के बावजूद पराधीनता की बेड़ियों को स्वीकार नहीं करना चाहते थे। ख्वाज़ा अल्ताफ हुसैन 'हाली' ने लिखा

"कहते हैं आज़ाद हो जाता है जब लेता है सांस।
यां ग़ुलाम आकर-करामत है यह इंगलिस्तान की।।

[66] मौलवी मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद', 'हुब्बे वतन' आज़ादी के तराने, राजेश कुमार परती (सं), 1986 राष्ट्रिय अभिलेखागार नई दिल्ली पृष्ठ 2

इस की सरहद में ग़ुलामों ने जो रख्खा कदम।
और कट कर पाँव से एक इक के बेड़ी गिर पड़ी।।

कल्बे माहियत में इंगलिस्तान है गर कीमिया।
कम नहीं कुछ कल्बे माहियत में हिंदुस्तान भी।।

आन कर आज़ाद यां आज़ाद रह सकता नहीं।
वो रहे होकर ग़ुलाम उसकी हवा जिन को लगी।।"[67]

हाली के बारे में आज जब भी बात होती है तब उसके केंद्र में उनके द्वारा लिखित 'मुसद्दस' ही होती है। जिसके बारे में नामवर सिंह ने लिखा है कि "सबसे बड़ी बात तो यह है कि हाली का 'हम' अपने-आपको न तो पूरा हिंदुस्तान समझता है न समूचे हिंदुस्तान का दावेदार ही। वैसे, ग़दर के बाद मुसलमानों को ऐसा सोचना अस्वभाविक न होता। ऐसे प्रलोभन से 'मुसद्दस' को साफ बचाकर हाली ने असाधारण साहस का काम किया।"[68] और ऐसा ही मजमून हाली ने इन पंक्तियों में पेश किया है। यहाँ वह आज़ाद ख्याल लोगों को सम्बोधित करते दिख रहे हैं।

उर्दू अदबकार देश की आज़ादी के लिए केवल जन-नायकों से उम्मीद नहीं करते। वह अपने साथ मजदूर, किसान, हिन्दू, मुस्लिम और दमित तबके को साथ लेकर संघर्ष करना चाहते हैं।

"जिंद: हैं अगर जिंद: दुनिया को हिला देंगे।
मशरिक का सिरा लेकर मग्रिब से मिला देंगे।।
हम सीन:-ए-हस्ती में अंगार: हैं अंगार :
शोले भड़क उठेंगे, झोंको जो हवा देंगे।।

[67] ख्वाजा अल्ताफ हुसैन 'हाली', 'इंगलिस्तान की आज़ादी और हिन्दुस्तान की गुलामी', आज़ादी के तराने, राजेश कुमार परती (सं), 1986, राष्ट्रिय अभिलेखागार नई दिल्ली पृष्ठ: 4

[68] नामवर सिंह, आलोचना और संवाद, आशीष त्रिपाठी(सं), 2018, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ :86

मजदूर हों देहाकां हों हिन्दू हों मुसलमां हों।

सब एक तो हो जाओ फिर उनको दिखा देंगे।।"[69]

1930 तक भगत सिंह इत्यादि का प्रभाव राजनीति और सामाजिक स्तर पर बहुत गहरा हो चुका था। देश के नौजवान से लेकर बच्चों के मानस-पटल पर इनलोगों का इतना प्रभाव था कि बच्चे खेल-खेलने के दौरान इनकी नक़ल किया करते थे। प्रतिबंधित हिंदी रचनाकारों की नौजवानों से विशेष अपील थी कि-

"हुक्म हाकिम का है फर्याद जुबानी रुक जाए।

दिल की बहती गंगा की रवानी रुक जाए।

कौम कहती है हवा बंद हो, पानी रुक जाए।

पर यह मुमकिन नहीं अब जोशे जवानी रुक जाए।

हों खबर दार जिन्होंने यह अज़ीयत दी है।

कुछ तमाशा यह नहीं कौम ने कर्वट ली है।।[70]

जैसा कि उपर्युक्त पंक्ति में कौम और जवानी दोनों एक साथ आया है। अकसर हमें मुसलमानों को लेकर एक गलतफहमी रहती है। जिसके बारे में प्रेमचंद अपने 1931 में लिखित निबंध में लिखते हैं कि "हम गलत इतिहास पढ़-पढ़कर एक-दूसरे के प्रति तरह-तरह की गलतफहमियाँ दिल में भरे हुए हैं, और उन्हें किसी तरह दिल से नहीं निकालना चाहते, मानो उन्हीं पर जीवन का आधार हो। मुसलमानों को अगर यह शिकायत है कि हिन्दू हमसे परहेज़ करते हैं, हमें अछूत समझते हैं, हमारे हाथ का पानी तक नहीं पीना चाहते, तो हिन्दुओं को यह शिकायत है कि मुसलमानों ने हमारे मंदिर तोड़े, हमारे तीर्थ-स्थानों को

---

[69] 'सफ़ी' लखनवी, 'उतना हो वह उभरेंगे', आज़ादी के तराने, राजेश कुमार परती (सं), 1986, राष्ट्रिय अभिलेखागार नई दिल्ली पृष्ठ 8

[70] पंडित ब्रज नरायण 'चकबस्त', 'जोशे जवानी', आज़ादी के तराने, राजेश कुमार परती (सं), 1986, राष्ट्रिय अभिलेखागार नई दिल्ली पृष्ठ 9

लूटा, हमारे राजाओं की लड़कियाँ अपने महल में डालीं, और जाने क्या-क्या उपद्रव किए।... विजय जाति पराजितों पर सबसे कठोर आघात करती है, वह है, इतिहास को विषैला बना देना। प्राचीन, हमारे भविष्य का पथ-प्रदर्शक हुआ करता है। प्राचीन को दूषित करके, उसमें द्वेष और भेद और कीना भरकर, भविष्य को भुलाया जा सकता है। वही भारत में हो रहा है। यह बात हमारे अन्दर ठूँस दी गई है, कि हिन्दू और मुसलमान हमेशा से दो विरोधी दलों में विभाजित रहे हैं, हालाँकि ऐसा कहना सत्य का गला घोंटना है। यह बिलकुल गलत है कि इस्लाम तलवार के बल से फैला। तलवार के बल से कोई धर्म नहीं फैलता, और कुछ दिनों के लिए फैल भी जाए, तो चिरंजीवी नहीं हो सकता। भारत में इस्लाम के फैलने का कारण, ऊँची जातिवाले, हिन्दुओं का नीची जातियों पर अत्याचार था।"[71] यह बात अच्छी तरह से प्रतिबंधित रचनाकार जानते थे। इसलिए लगातार हिन्दू-मुसलिम एकता पर जोर देते थे। हिन्दू रचनाकार अपनी कौम से अपील करते थे और मुस्लिम रचनाकार अपनी कौम से। उर्दू रचनाकारों ने तो अपने इश्क को हिंदुस्तान से जाहिर किया। मौलाना 'जफ़र' अली खां ने लिखा कि

"नाकूस से गरज है, न मतलब अजां से है।
मुझको अगर है इश्क़ तो हिन्दोस्तां से है।।

तहजीबे हिन्द का नहीं चश्म अगर अज़ल।
यह मौजे रंग रंग फिर आई कहां से है।।

जर्रे में गर तड़प है तो इस खाके पाक से।
सूरज में रौशनी है तो इस आसमां से है।।

है उसके दम से गर्मिए हंगाम:-ए-जहां।

[71] प्रेमचंद रचना-संचयन, निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका (सं), 2012, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृष्ठ 749

मगरिब की सारी रौनक इसी इक दुकां से है।।"[72]

वे जानते थे अंग्रेजी हुकूमत की हकीकत। जो लूट पर टिकी हुई थी, इसीलिए बार-बार अपनी रचानाओं में उनकी लूटों को याद करते थे। इस लूट और भयावह नरसंहारों पर लिख करके ब्रिटिश हुकूमत को उसकी हिटलरशाही को भी बतलाते थे। उर्दू रचनाकरों ने जर्मनी के शासक हिटलर को उसके अमानवीय अत्याचारों के लिए भी याद किया है। उन्होंने अंग्रेजों को हिटलर की औलाद तक कह डाला। इन रचनाकरों के पास भारत के इतिहास संस्कृति में मौजूद इंसानियत के लिए मीर जाफर से लेकर अवध की बेगम, झाँसी की रानी और बहादुर शाह ज़फ़र की इंसानियत और जन प्रेम को बतलाने के साथ अंग्रेजों द्वारा उन पर किये गए अत्याचारों का भी विवरण दिया है। ये रचनाकार अत्याचारों को बतलाने के लिए केवल यहीं तक नहीं रुकते बल्कि काकोरी, भगत सिंह और जलियाँवाला बाग़ को जी भर के याद करते हैं।

"जेहन में होगा यह ताज: हिंदियों का दाग भी?
याद तो होगा तुम्हें जलियान वाला बाग़ भी?
पूछ लो उस से तुम्हारा नाम क्यों ताबिंदा है।
"डायरे" गुर्गे दहन आलूद अब भी जिन्द:है।।
वो "भगत सिंह" अब भी जिसके गम में दिल नाशाद है।
उसकी गर्दन में जो डाला था वो फंदा याद है ?
अह ले आज़ादी रहा करते थे किस हंजार से।
पूछ लो ये कैद खानों के दरोदीवार से।।
अब भी है महफूज जिन में तनतन सरकार का।
आज भी गूंजी हुई है जिस कोड़ों की साद।।"[73]

[72] मौलाना 'जफ़र' अली खां, 'हिंदुस्तान', आज़ादी के तराने, राजेश कुमार परती (सं), 1986, राष्ट्रिय अभिलेखागार नई दिल्ली पृष्ठ 13

[73] शब्बीर हसन खां, 'जोश', 'ईस्ट इंडिया कंपनी के फराजंदों से' आज़ादी के तराने, राजेश कुमार परती (सं), 1986, राष्ट्रिय अभिलेखागार नई दिल्ली पृष्ठ 21

अंग्रेजी हुकूमत द्वारा किए जा रहे अत्याचारों को लगभग सभी रचनाकार खुद याद के साथ-साथ जनता को भी याद दिलाने की कोशिश किया करते थे। इन रचनाकारों की पक्षधरता केवल आज़ादी थी। इसके लिए भारत की संस्कृति और सौन्दर्य का हवाल भी देते हैं।

ये रचनाकार जितना भारतीय जनता और समाज पर हो रहे अत्याचार से चिंतित थे। उतना ही उनके लिखे और बोले को प्रतिबंधित किये जाने से चिंतित थे। उर्दू प्रतिबंधित कविताओं, ग़जलों में सागर 'निज़ामी' और फैज़ अहमद फैज़ ने इसको मुखर रूप से उभरा और अंकित किया। फैज़ ने लिखा

"चंद रोज़ और मेरी जान फ़कत चंद ही रोज !
ज़ुल्म की छांव में दम लेने पे मजबूर हैं हम।
और कुछ देर सितम सह लें, तड़प लें, रोलें।

अपने अजदाद की मीरास से माजूर हैं हम।
जिस्म पर कैद हैं, जज़बात पे जंजीरे हैं।

फ़िक महबूस है, गुफ़तार पे ताज़ीरें हैं।
अपनी हिम्मत है के हम फिर भी जिए जाते हैं।"[74]

ये रचनाकार आज़ादी के लिए कई स्तरों पर काम करते थे। इसलिए इनको पूरा भरोसा था कि देश आज़ाद होगा। इसके लिए बार-बार लिखते थे कि कुछ भी हो जाये तोप गोली से अब नहीं डरने वाले हैं। इसके लिए वह बच्चों तक को तैयार कर रहे थे, और, लोरी के रूप में देश की स्थिति से वाकिफ कराते थे। जिनसे इन्हें उम्मीदें थी कि बड़ा होकर बहादुर बनेगा और हथियार उठाएगा। हिन्दू

[74] फैज़ अहमद फैज़, 'तसल्ली', डॉ. राजेश कुमार परती (सम्पा.), 'आज़ादी के तराने', 1986, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृष्ठ:34

और मुस्लिम रचनाकारों में एक समानता यह थी कि, हिन्दू रचनाकार माता की वन्दना करते थे, तो मुस्लिम रचनाकार माँ की दुआ[75] करते थे।

[75] अलताफ़ मशहदी द्वारा लिखित मां की दुआ कविता
"तेरे दम से फिर वतन वालों में पैदा हो हयात।
पंज:-ए-अगयार से हो हिन्द को हासिल निजात ॥

काम आजाये वतन की राह में तेरा शबाब।
गैरते जिन्दानियों की फिर उलट डालें नक़ाब ॥

तू बदल डाले निज़ामें हिन्द के लैलो नहार।
यह गुलाम आबाद हो आज़ाद मुल्को में शुमार।। 'अल्ताफ' मशहदी, 'माँ की दुआ' आज़ादी के तराने, राजेश कुमार परती (सं), 1986, राष्ट्रिय अभिलेखागार नई दिल्ली पृष्ठ 36

खून के छींटे, मुक्त संगीत, विद्रोहिणी और तूफ़ान कविता संग्रह

हिंदी कविता के इतिहास में छायावाद एक महत्वपूर्ण और शुरुआती पड़ाव है। 1918 से पहले हिंदी कविता की भाषा ब्रज भाषा थी। छायावाद के दौर में हिंदी कविता की भाषा खड़ी बोली को पूर्णत: स्थापित मान लिया गया। जिसके बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "यह स्वच्छंद नूतन पद्धति अपना रास्ता निकाल ही रही थी कि श्री रविन्द्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई और कई कवि एक साथ रहस्यवाद और 'प्रतीकवाद' या चित्रभाषा को ही एकांत ध्येय बनाकर चल पड़े। 'चित्रभाषा' या अभिव्यंजना पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया। इस बंधे हुए क्षेत्र के भीतर चलने वाला काव्य ने छायावाद का नाम ग्रहण किया।"[76] छायावादी कविता जैसे ही अस्तित्व में आई। हिंदी कविता आलोचना में एक वाद-विवाद और संवाद की परम्परा उसको लेकर चल पड़ी। इस कविता के सिद्धहस्त कवियों में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा थीं। यह दौर देश और विदेश दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। एक तरफ जहाँ 1917 में रुसी क्रांति ने दुनिया का ध्यान अपने तरफ खींचा, तो वहीं दूसरे तरफ विश्वयुद्ध ने दुनिया में मानवतावादी सोच को सदमें में डाल दिया। भारतीय सन्दर्भ में, 1915 में महात्मा गाँधी का भारत आगमन और भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में योग देना। इसके बाद 1919 का जालियांवाला बाग़ हत्याकांड और 1922 का चौरी चौरा कांड भी इस दौर के कविता आन्दोलन पर अपनी छाप छोड़ा। छायावादी कविता ने एक तरह से देशी विषय-वस्तु के साथ विदेशी रूप ग्रहण कर हिंदी कविता आन्दोलन में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई। जैसा की माना जाता है कि 1918 से 1936 तक हिंदी साहित्य और कविता के इतिहास में छायावादी कालखंड था। जिसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को रेखांकित करते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "रविन्द्रनाथ को किसी ज़माने में बँगला का शेली कहा जाता था और निराला जी को हिंदी

[76] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ : 438

का रविन्द्रनाथ तो नहीं परन्तु यथेष्ट आदर के साथ उनका अनुवर्ती अवश्य कहा जाता था। शेली, ठाकुर और निराला के युगों की परिस्थिति में एक बात समान रूप से विद्यमान है, और वह है पूंजीवाद का प्रारम्भिक विकास तीनों युगों में ही यांत्रिक पूँजीवाद से उत्पन्न होने वाली विषम परिस्थितियों के प्रति घोर असंतोष है, इसके साथ ही पूँजीवाद ने पुराने वर्ग श्रृंखलाओं को झकझोर कर आत्मविश्वासी पथिकों के लिए नए संगठन और नयी प्रगति का मार्ग निश्चित किया, उसकी चेतना भी इन कवियों में विद्यमान है। सामाजिक पृष्ठभूमि में समानता है, तो समाज को प्रतिबिम्बित करने वाले साहित्य में भी समानता होना अनिवार्य है।[77]" रामविलास शर्मा एक तरफ भारत में मौजूद मध्यकालीन वर्ण की संकीर्णताओं के खिलाफ संघर्ष को भी छायावाद की पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार करते हैं। लेकिन यहाँ गौर करने वाली बात है कि उन्होंने उपनिवेशवादी ताकतों द्वारा थोपा हुआ पूंजीवाद को छायावाद के सन्दर्भ में इस्तेमाल नहीं किया। जबकि छायावादी कवि भारतीय सामन्ती प्रथा और उपनिवेशवादी शासन व्यवस्था दोनों ही वर्गों के साथ अपनी रचनाओं के माध्यम से संघर्ष कर रहे थे। जयशंकर प्रसाद ने 1918 में प्रकाशित अपने संग्रह 'झरना' में लिखा है कि –

"किरण! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण सरजित किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग।"[78]

प्रसाद उसी नए पूंजीवाद से उत्पन्न हो रहे मानवीय संकट को रेखांकित करते हैं। जिसके बारे में क्रिस हरमन लिखते हैं कि,

---

[77] डॉ. रामविलास शर्मा, 'छायवाद की ऐतिहासिक' निबन्धों की दुनिया, डॉ. रामविलास शर्मा, निर्मला जैन प्र. सम्पा., रामेश्वर राय सम्पा., 2009, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ : 50

[78] जयशंकर प्रसाद, 'किरण', Access date – 03.08.2020, http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%95%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A4%A3_/_%E0%A4%9C%E0%A4%AF%E0%A4%B6%E0%A4%82%E0%A4%95%E0%A4%B0_%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%A6

“बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक संसार में हर कहीं पूँजी की मोहर लग चुकी थी। दुनिया में अंटार्कटिका के बर्फीले रेगिस्तानों, अमेजन घाटी के सुदूर जंगलों और न्यू गिनी के कुछ क्षेत्रों को छोड़ शायद ही कोई कोना बचा हो जहाँ पूंजीवाद के दूत सस्ता सामान, बाइबिल, विषाणु और बिना कमाए धन की आशा लिए न पहुँच गए हों।

बहरहाल पूँजी का प्रभाव हर जगह एक जैसा नहीं था। बहुत-सी जगहों पर अभी भी उसका मतलब था पसीना बहाना, स्थानीय उपभोग के लिए नहीं, दूर बैठे पूंजीपति के लिए। पर पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका में उद्योग, परिवहन और कृषि में यंत्रीकरण बढ़ता ही जा रहा था।”[79] हरमन पूंजी के प्रभाव को एक समान रूप से नहीं देखते हुए। उसे श्रम से जोड़ते हैं, तो वहां ‘श्रम’ एशिया और भारत के तरफ इशारा करता है। जहाँ पर सस्ते श्रमिक और उत्पादन दोनों सुलभ थे। दूसरे विज्ञान के उपयोग की सुलभता भी इस मानवीय संकट को बढ़ाने में मददगार हुआ।

छायावाद की इन्हीं सामाजिक और राजनैतिक पृष्ठभूमि के बीच हिंदी में उस दौर में कुछ ऐसी रचनाएँ भी मौजूद थीं। जिन्हें उपनिवेशी ताकतों द्वारा प्रतिबंधित किया गया। इन्हीं कविताओं के संग्रहों को रुस्तम राय 1999 में संग्रहित, सम्पादित और प्रकाशित किया। उन्होंने अपने सम्पादित पुस्तक - ‘खून के छींटे’ बलभद्र प्रसाद गुप्त द्वारा लिखित कविताओं का संग्रह है। जिन्हें 1930 में प्रकाशित किया गया था। ‘मुक्त संगीत’ अभिराम शर्मा एवं प्रणयेश शर्मा की कविता संग्रह का प्रकाशन 1932 में हुआ था। ‘विद्रोहणी’ और ‘तूफान’ कविता संग्रह प्रह्लाद पाण्डेय ‘शशि’ का है। जिन्हें 1942 और 1943 में प्रकाशित किया गया था। इन कविता संग्रहों के बारे में रुस्तम राय ने लिखा है कि “कहने की आवश्यकता नहीं कि आज़ादी की लड़ाई की रफ्तार के साथ अंग्रेजी शासन के दमन की रफ्तार तेज हुई। 1857 तक भारतवर्ष पूरी तरह ब्रिटिश साम्राज्य की गिरफ्त में आ चुका था। व्यापारी अब स्वामी बन गए थे। 1857 की विफलता ने भारतीयों का मनोबल क्षय तो किया; किन्तु उन्हें एकता का पाठ भी

[79] क्रिस हरमन, ‘विश्व का जन इतिहास’, लाल बहादुर वर्मा अनु., 2009, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ, 331

पढ़ा दिया। भारतेंदु और उनके युग के लेखकों ने अंग्रेजों के शोषण और उनकी दमनमूलक नीति का विरोध करते हुए देश की तत्कालीन दुर्दशा और हीनावस्था के प्रति क्षोभ व्यक्त किया। परन्तु महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युग के लेखकों का विरोध क्रमशः कमजोर पड़ता गया।"[80] हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु युग वह प्रथम चरण है, जब ब्रितानी ताकतों का प्रतिरोध साहित्य के माध्यम से किया। रुस्तम राय ने ऊपर लिखित क्रिस हरमन और रामविलास शर्मा की बातों को ही प्रतिबंधित हिंदी कविताओं के सम्दर्भ में लिखा है। अब तक हिंदी साहित्य और खासकर हिंदी कविता आलोचना के लिए विविध पद्धतियों का सहारा लेकर आलोचना हो चुकी है, और आलोचना विधा इन विषयों से काफी दूर और आगे बढ़ चुकी है लेकिन –

"आह! अमित घायल है फिर भी खुले हैं सीने।
चमका दे बली-वेदी को भी क्यों न अमूल्य नगीने?
परधीन होकर भी हैं यदि कर सकते न गुजारा।
तो फिर इस जीवन से जीवन-दान क्यों न हो प्यारा?"[81]

इन पंक्तियों को आलोचना और इतिहास दोनों के विषय-वस्तु से बाहर रखा गया। जबकि मैनेजर पाण्डेय ने 'आलोचना की राजनीतिक' लेख में लिखा है कि "आधुनिक काल में साहित्य पहले से अधिक राजनीतिक हुआ है। टॉमस मान ने कहा था कि आधुनिक समय में मनुष्य की नियति राजनीति से निर्धारित हो रही है। साहित्य अपने समय और समाज के मनुष्य की स्थिति तथा नियति की चिंता करता है, इसलिए उसमें मनुष्य की नियति को निर्धारित करने वाली राजनीति की चिंता भी मौजूद होती है। ऐसे साहित्य की व्याख्या की कोशिश करने वाली आलोचना राजनीति की उपेक्षा कैसे कर सकती है। साहित्यकार समाज से रचना की प्रेरणा ही प्राप्त नहीं करता वरन वह जिन वास्तविकताओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करता है, वे भी सामाजिक सन्दर्भ से जुड़ी होती हैं, और वह सामाजिक

[80] भूमिका से, रुस्तम राय, 'प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य' भाग- दो, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
[81] समर्पण खून के छीटे से, बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद 'रसिक', 'खून के छीटे' रुस्तम राय (सम्पा.), राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली

सन्दर्भ प्रक्रिया से बनता है। सामाजिक संरचना में वर्ग और विचारधाराएँ होती हैं और उनके बीच टकराहटें भी। जिन रचनाओं में ऐसी टकराहटों की चेतना मौजूद नहीं होती वे अपने समय में और बाद में भी प्रासंगिक नहीं होतीं। ऐसी रचनाओं की आलोचना में उन टकराहटों की पहचान और व्याख्या आवश्यक होती है जिससे रचना की राजनीति चेतना समाने आए। इस प्रक्रिया में आलोचना राजनीतिक बनती है।"[82] मैनेजर पाण्डेय की यह बात रचना और रचना की प्रासंगिकता के साथ, उसके सामाजिक सन्दर्भों की तरफ इशारा करती है। प्रतिबन्धित हिंदी कविताओं की तत्कालीन प्रासंगिकता और उसका सामाजिक सन्दर्भ उसके प्रतिबंधित होने से ही जाहिर हो जाता है। लेकिन बीसवीं सदी के मध्य की रचनाओं की जब भी बात आती है, तो हिंदी कविता आलोचना को प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी के बरक्स दिनकर , बच्चन आदि के सामाजिक सन्दर्भों और कुछ सतही बहसों तक ही सीमित कर दिया गया है। इसलिए बलभद्र प्रसाद गुप्त विशारद 'रसिक' ने अपना परिचय देते हुए लिखा-

"श्रीकर हो दीनता का दर्प करता हूँ सदा,
तीक्ष्ण तम-तोम हरने के लिए रवि हूँ।
एकमात्र भारत का पावन पुजारी हूँ मैं,
अग्नि की प्रचंड प्रतिभा का दिव्य छवि हूँ।।
शशि-ज्योत्स्ना-सी मेरी कांति-कौमुदी है मंजु,
राजनीति, छत्र-दंड का प्रकांड पवि हूँ।
किसने न विश्व में है मान लिया लोहा मेरा,
शांत क्रन्तिकारी हूँ मैं 'रसिक' सुकवि हूँ।।"[83]

---

[82] मैनेजर पाण्डेय, 'आलोचना की समाजिकता', 2012, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ: 22
[83] बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद 'रसिक', 'खून के छीटे' रुस्तम राय (सम्पा.), 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ : 13

इन कवियों की कोई साहित्यिक महत्वकांक्षा नहीं थी। इन्होने अंग्रेजी हुकूमत के दौर में भारतीय स्थिति को बयान करने, और उस उत्पीड़न को इतिहास में दर्ज कराने के लिए कलम उठाई। 'कवि-प्रतिभा' नामक एक कविता में लिखते हैं-

"उज्ज्वल धवल धूमकेतु नभ-मंडल से,
टूट टूट कर भूमि पर गिर जाएँगे।
झंडा के झकोरों से न दिन का चलेगा पता,
सघन गगन-मध्य घन घहराएँगे।
वीर-रस-पूर्ण, महाकाव्य लिखने को जब,
सुकवि 'रसिक' निज लेखनी उठाएँगे।।"[84]

इन पंक्तियों और पूरी कविता को पढ़ने के बाद 1935 में लिखित और 'अनामिका' में संग्रहित कविता 'सरोज स्मृति' की सहज ही याद आएगी। जब निराला लिखते हैं –

"अशब्द अधरों का सुना, भाष,
मैं कवि हूँ, पाया है प्रकाश
मैंने कुछ अहरह रह निर्भर
ज्योतिस्तरणा के चरणों पर।
जीवित-कविते, शत-शत जर्जर
छोड़ कर पिता को पृथ्वी पर
तू गई स्वर्ग, क्या यह विचार –"[85]

एक तरफ बलभद्र अंग्रेजी उत्पीड़न को मिटाने के लिए काव्य-रचना का आरम्भ किया तो वहीं, निराला उसी उत्पीड़न और देशी रूढ़िवादिता को नरक के समान बतलाते हैं। निराला की इस कविता पर जब

---

[84] वहीं, पृष्ठ:14

[85] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'सरोज-स्मृति', रागविराग, रामविलास शर्मा (सम्पा.), 2008, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ : 80

भी बात होती है तो 'सम्पादकगण' और 'शोकगीत' के रूप में ही चिह्नित किया जाता है। लेकिन निराला और बलभद्र दोनों ही कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से आलोचना की राजनीति और सम्पादन की राजनीति को तिरछी निगाह से देखने के साथ उनके निगाह में अंग्रेजी उत्पीड़न भी है। 'सरोज स्मृति' के बारे में नामवर सिंह लिखते हैं कि "निराला ने अपनी पुत्री 'सरोज की स्मृति में शोकगीत लिखा और उसमें अपने नीजी जीवन की अनेक बातें साफ-साफ कह डालीं। सम्पादकों द्वारा मुक्त छंद की रचनाओं का लौटाया जाना विरोधियों के शाब्दिक प्रहार, मातृहीन लड़की को ननिहाल में पालन-पोषण, दूसरे विवाह के लिए निरंतर आते हुए प्रस्ताव और उन्हें ठुकराना, सामाजिक रुढियों को तोड़ते हुए एकदम नए ढंग से कन्या का विवाह करना, उचित दवा-दारू के अभाव में सरोज का देहावसान और उस पर कवि का शोकोदगार।"[86] निराला का यह गीत केवल एक सरोज के लिए ही नहीं है, बल्कि देश की पराधीनता की वजह से उत्पन्न संकट से भारतमाता के सुपुत्रियों के लिए भी है। जिनके माता को गुलामी की जंजीरों ने जकड़ रखा था।

स्वाधीनता आन्दोलन के दौर में लिखी कविताओं में व्यक्तिगत पीड़ा के माध्यम से सामाजिक पीड़ा को अभिव्यक्त करने का कार्य, उस दौर के कवियों ने किया है। इसीलिए जन-जन को जागृत करते हुए। निराला ने लिखा कि –

"जागो फिर एक बार!
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण-पंख तरुण-किरण
खड़ी खोलती है द्वार-
जागो फिर एक बार !"[87]

वहीं बलभद्र प्रसाद लिखते हैं-

---

[86] नामवर सिंह, 'छायावाद', 2011, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 20

[87] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'जागो फिर एक बार : 1', 'रागविराग','रामविलास शर्मा (सम्पा.), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ :50

"जागृति की ज्योति-चंद ज्योत्स्ना जगा दे तू।।
चढ़ा दें 'रसिक' प्राण-सुमन समोद हम;-
बलि-वेदी पर, ऐसी लगन लगा दे तू।
भैरवी भयंकरी कराल कलिका सी फिर,
लेखनी! सदा के लिए भीरुता भगा दे तू।।"[88]

यहाँ 'जाग्रति' या 'जागो' दोनों ही भारतीयों को पराधीनता और अत्याचारों से मुक्ति की उत्कंठा है। जिस कार्य में स्वतन्त्रता सेनानी लगे हुए थे। इसके लिए नामवर सिंह ने लिखा है कि "...बुद्धिजीवी मध्य-वर्ग के नेतृत्व में भारतीय जनता ने अपना राजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता के लिए जो संघर्ष किया, उसके कई पहलुओं को छायावाद ने सच्चाई के साथ प्रतिबिम्बित किया और यथाशक्ति उसे आगे बढ़ाने में योग भी दिया।"[89] नामवर सिंह ने आगे लिखा 'स्वाधीनता की भावना का उदय पुनरुत्थान-भावना से होती है' कहा लेकिन पुनरुत्थान की भावना को अभिव्यक्त करने के लिए केवल व्यंजना ही उपयोगी है, जहाँ अत्याचार और पीड़ा को महसूस करने मात्र से ही ह्रदय कांप उठता हो ? अपने 'खून के छीटे' कविता संग्रह में बलभद्र प्रसाद ने लिखा है कि

"रक्त-धार से सिंच रहे हैं स्वतन्त्रता की क्यारी।
आज पूर्णत: धधक रही है विप्लव की चिनगारी।।
नमक बनाकर जग को दिखलाते निज नमकहलाली।
नवजीवन के लिए पिए लेते हैं विष की प्याली।।"[90]

इस कविता में नमक सत्याग्रह या दांडी मार्च को सन्दर्भ बनाया गया। लेकिन 'नमक' के हवाले से ही देश की निर्धन जनता के हाल को बयाँ किया गया। जिसके लिए लिखा गया कि 'देश को

---

[88] बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद 'रसिक', 'खून के छीटे' रुस्तम राय (सम्पा.), 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ : 11

[89] नामवर सिंह, छायावाद, 2011, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 72

[90] बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद 'रसिक', 'खून के छीटे', रुस्तम राय (सम्पा.), 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ : 15

आज़ाद कराने वाले दीवाने तुम्हारे इस निर्धनता की नमक अदा कर रहे हैं। जिनके सीनों पर गोलियां चलाई जा रही है।' उपर्युक्त कविता का शीर्षक 'मतवाला भिक्षुक' है। जिसका प्रकाशन वर्ष 1930 है। प्रथमत: यह कविता महात्मा गाँधी के दांडी मार्च से प्रभावित है। लेकिन 1930 में ही निराला का कविता संग्रह 'परिमल' प्रकाशित हुआ। जिसमें 'भिक्षुक' कविता संकलित है। निराला ने लिखा –

"पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लुकटिया टेक,
मुट्ठी फटी पुरानी झोली का फैलता-
दो टूक कलेजे के करता पछताता।
पथ पर आता।"[91]

निराला के यहाँ पेट और पीठ दोनों मिलकर एक इसलिए हो गया कि देश में कोई ऐसी वस्तु नहीं रही, जिस पर अंग्रेजों ने कर न लगा रखा हो। बलभद्र प्रसाद फिर लिखते हैं –

"ऐसी हो गई है हाय! हालत हमारी हीन,
जुल्म हुआ आज राष्ट्रीय गान गाना भी।
हो गई पतन की परम पराकाष्ठा है,
जुल्म हुआ आज निज वेदना सुनाना भी।
'रसिक' समस्त विश्व को थे जो खिलाते रहे,
जुल्म हुआ आज उन्हें रुखा सूखा खाना भी।।
किया था विकाश जिन लोगों ने ही सभ्यता का,
जुल्म हुआ उन्हें आज नमक बनाना भी।।"[92]

---

[91] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'भिक्षुक', Access date – 03.08.2020, http://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%AD%E0%A4%BF%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%B7%E0%A5%81%E0%A4%95_/_%E0%A4%B8%E0%A5%82%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%82%E0%A4%A4_%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%AA%E0%A4%BE%E0%A4%A0%E0%A5%80_%22%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%B2%E0%A4%BE%22

[92] बलभद्र प्रसाद गुप्त विशारद 'रसिक', 'खून के छीटे' रुस्तम राय (सम्पा.), 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ :22

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि महात्मा गाँधी का 1915 में भारत आगमन हुआ था। उसके बाद 1917 में उन्होंने 'चंपारण सत्याग्रह' से स्वाधीनता आन्दोलन में 'अहिंसात्मक' आन्दोलन की नींव रखी। जिसे किसान आन्दोलन के नाम से भी जाना जाता है। महात्मा गाँधी ने अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में लिखा है कि "चम्पारण जनक राजा की भूमि है। जिस तरह चम्पारण में आम के वन है, उसी तरह सन 1917 में वहां नील के खेत थे। चम्पारण के किसान अपनी ही जमीन के 3/20 भाग में नील की खेती उसके मालिकों के लिए करने को कानून से बंधे हुए थे। इसे वहां 'तीन कठिया' कहा जाता था। बीस कट्ठे का वहां एक एकड़ था और उसमें से तीन कट्ठे जमीन में नील बोने की प्रथा को कठिया कहते थे।"[93] हमें यहाँ 'नील दर्पण'(नाटक- 1860) को याद करना चाहिए। यह नाटक बंगाल में नील की खेती करने वाले किसानों पर अंग्रेजी अत्याचार का उदहारण है। लेकिन इसी नाटक से एक महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक तथ्य जुड़ा हुआ है कि, 1872 में जब यह नाटक खेला गया तो दर्शकों की भीड़ देख, अंग्रेजी हुकूमत ने 1876 में ड्रैमेटिक परफोर्मेंस कंट्रोल एक्ट को चलन में लाया। जिससे पुस्तकों और रचनाओं को प्रतिबन्धित किया जाने लगा, तो एक तरह से भारत में प्रतिबंधन की शुरुआत भी 'नील' या 'किसानों' की आवाज दबाने के लिए हुई। वहीं गाँधी ने इसी आवाज को लेकर अपने अहिंसात्मक सत्याग्रह की शुरुआत की। जिसके बारे में प्रतिबंधित कवियों ने लिखा –

"इस ओर कृषकों की टूटी फूटी झोपड़ी है,
पूंजीपतियों की उस ओर है अटालिका।
उस ओर बेबी, बाबा फिरते समोद देखो,
इस ओर रोती क्षुब्ध-गुस्सा दीना बालिका।।
देवियों कसाले सहती हैं इस ओर हाय!
मौज मारती हैं उस ओर नग्ना कालिका।
'रसिक' बताओ कैसे स्वागत तुम्हारा करें,

[93] मोहनदास करमचंद गाँधी, सत्य के प्रयोग, पृष्ठ 440 Pdf, mkgandhi.org/ebks/hindi/gandhi-autobiography-hindi.pdf

देख लो करुणा-दृश्य तुम भी दीपमालिका।।"[94]

देश में तत्कालीन शासन की वजह से असमानता बढ़ती जा रही थी। जिसको लेकर स्वतन्त्रता सेनानी और प्रतिबन्धित रचनाकार अपनी आवाज बुलंद कर रहे थे। स्वयं गाँधी ने लिखा "मैं हिटलर की शक्ति का नहीं, एक स्वतंत्र कृषक की शक्ति का अभिलाषी हूँ। मैं इतने वर्षों से कृषक के साथ तादतम्य स्थापित करने का प्रयास करता आ रहा हूँ, पर अभी तक इसमें सफल नहीं हो सका हूँ। आज मेरे और किसान के बीच में फर्क यह है कि वह स्वेच्छा से नहीं बल्कि हालातों की मजबूरी की वजह से किसान और मजदूर बना हुआ है, जबकि मैं स्वेच्छा से किसान और मजदूर बनना चाहता हूँ। जब मैं उसे भी स्वेच्छा से किसान और मजदूर बना सकूंगा तो उसे उन जंजीरों को भी तोड़ फेकने में सहायता दे पाऊंगा जिनमें आज वह बंधा है और जिनके कारण वह अपने मालिक का हुक्म बजा लाने के लिए मजबूर है।"[95] गाँधी किसानों और जमींदारों के असमानता को पहचानते थे। इसीलिए जमींदारों और किसानों की एकता की बात भी करते थे। अगर भारतीय जमींदारों और किसानों के बीच असमानता और खाई पैदा नहीं हुई होती तो देश के हालात कुछ और होते। जिससे स्वधीनता आन्दोलन के प्रारूप में भी फर्क पड़ता। 'लाचारी' नाम के एक प्रतिबन्धित लोकगीत में पं. राजकुमार उपाध्याय लिखते हैं

"कहवाँ चौहान कहवाँ राणाप्रताप गइलै।
धनिया के रोटी जिनके जीवन आधार हो।
पहरूवै बिना लूट गइलिन।।
भारत कै देवी झाँसी रनिया कहाँ गइलिन।
पिठिया पर बांधे आपन राजकुमार हो।

---

[94] बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद 'रसिक', 'खून के छीटे' रुस्तम राय (सम्पा.), 1990, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ :30

[95] मोहनदास करमचंद गाँधी, महात्मा के विचार, खेतिहर किसान, श्रम, भाग 8 Pdf, https://www.mkgandhi.org/ebks/hindi/Mahatma-Gandhi-ke-Vichaar.pdf

पहरूवै बिना लूट गइलिन ।।

देसवा के कारण केतने गइले काले पानी भइया ।

फंसिया पर झूले भगत सरदार हो ।

पहरूवै बिना लूट गइलिन ।"[96]

प्रतिबंधित हिंदी कविताओं में स्वतन्त्रता युगीन फांसी, कैदी और भगत सिंह, गाँधी और अन्य स्वतन्त्रता सेनानियों को रचना का आधार बनाया गया है । इसी प्रकार एक 'कैदी' शीर्षक नाम से कविता है । जिसमें कैदी कहता है –

"विद्रोहात्मक गया विचार मेरा भाषण हलका ।

निरपराध की मांगा जाता मुझसे आज मुचलका ।।

दिया गया हाँ ! ठूंस जेल में जैसे चोर उचक्का ।

यह व्यवहार देखकर उनका मैं ही हूँ भौचक्का ।।"[97]

इस पूरी कविता में कैदी देश में फैले न्याय व्यवस्था के हाथों हो रहे अन्याय को बयाँ कर रहा है । उसका जुर्म सिर्फ यही है कि वह सत्याग्रही सिपाही है ।

प्रतिबंधित हिंदी कविताओं में देश की आर्थिक बदहाली को सजगता और आक्रामकता से उकेरा गया है । जैसा की हम जानते हैं कि हिन्दी कविता भारतेंदु युग से प्रगतिवाद तक में देश की आर्थिक बदहाली को, चाहे गरीबी के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया हो, या चाहे उत्पीड़न के माध्यम से व्यक्त किया गया हो । लेकिन 1947 तक की कविताओं में आर्थिक मुद्दे प्रमुखता से रहे हैं । प्रतिबंधित कविताओं में यह मुद्दा तीव्रता और आक्रमकता से अभिव्यक्त किया गया है । 'खद्दर' कविता में अभिव्यक्ति इस प्रकार है –

[96] पं. राजकुमार उपाध्याय वैद्य, 'लाचारी', रुस्तम राय सम्पा, प्रतिबंधित हिंदी साहित्य, 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 263

[97] बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद 'रसिक', 'खून के छीटे' रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, भाग 2, 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ :32

"लन्दन, लिवरपूल लाखों लंकाशायर औ,

मान मैनचेष्टरका धूल में मिलावेगा।

फिर से स्वदेशी व्यवसाय का प्रचार कर,

राष्ट्र की दरिद्रता को खद्दर मिटावेगा।।"[98]

इन लेखकों को कोई बाहरी विचार या सिद्धांत से मुक्ति की उम्मीद नहीं है। वह भारत के संकट को स्वदेशी तौर-तरीके और विचार या सिद्धांत से हल करने का उम्मीद रखते हैं –

"मैं प्रबल सत्याग्रही हूँ,

मृत्यु-पति भी चिर निरंतर

चूमता मेरे चरण द्वय।

है भरा विष-प्यालियों में,

अमरता का कोष अक्षय।।"[99]

इसीलिए गाँधी के प्रति प्रतिबंधित हिंदी कविताओं में आशा भरी नजरों से देखा गया है। ये कवि जहाँ भी अपनी निगाह ले जाते है, वहां उन्हें खून से लथपथ लाल राहे ही दिखती हैं। जो अंग्रेजी हुकूमत की उत्पीड़न की निशानी है। ये किसी पशु-बल या अन्याय के प्यासे नहीं हैं। बल्कि इन्हें न्याय और सत्य ही प्यारा है।

हिंदी साहित्य और कविता के इतिहास में शास्त्रीय रागों की उपेक्षा दिखती है। लेकिन प्रतिबंधित हिंदी कविताओं के कवियों ने अपनी रचनाओं में मुक्ति के गीत को शास्त्रीय रागों में भी गया है। हिंदी की स्वाधीनता आन्दोलन से पहले की कविताओं में निराला ने शास्त्रीय रागों को अपनी कविताओं में सचेत रूप से इस्तेमाल किया है। रामचन्द्र शुक्ल ने 'कविता क्या है' निबन्ध में रागों को भावों से जोड़ते हुए लिखा है कि "कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के

[98] वहीं, पृष्ठ : 33

[99] प्रह्लाद पाण्डेय 'शशि', विद्रोहिणी, रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, भाग 2, 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ :158

रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है। राग से यहाँ अभिप्राय प्रवृति और निवृति के मूल में रहनेवाली अंत: करणवृति से है। जिस प्रकार निश्चय के लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है उसी प्रकार प्रवृति या निवृति के लिए भी कुछ विषयों का बाह्य या मानस प्रत्यक्ष अपेक्षित होता है। यही हमारे रागों या मनोवेगों के जिन्हें साहित्य में भाव कहते हैं- विषय है।"[100] जब रामचंद्र शुक्ल ने कविता को 'सृष्टि के साथ मनुष्य का रागात्मक सम्बन्ध' बताते हैं, तो अभिराम शर्मा, और प्रणयेश शर्मा ने 'राग केदार ध्रुवपद' में भारतीय इतिहास के अतीत का सहारा लेते हुआ गाया कि –

"भारत के बच्चे-बच्चे में, भर दे भाव महान।...
प्राची-दिशी की हिलोर
पश्चिम का गहे छोर,
अन्य उभय दिशी को डोर-
खींचे ध्रुव तान-तान।
गूँज उठें मेरे गान।"[101]

पूरब की ओर अब स्वाधीनता की लहर थोड़ी ही दूर है। जब सबकी गति समान होगी कोई उच्च-नीच या भेद-भाव का भय नहीं रहेगा तो –

"मन में है रट देश नाम की।
नाच रही नयनों में निशि दिन,
नवल घटा नयनाभिराम की। मन में ..."[102]

---

[100] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रन्थावली भाग 3, ओमप्रकाश सिंह (सम्पा.), 2007, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, पृष्ठ:54

[101] अभिराम शर्मा, प्रणयेश शर्मा, मुक्ति संगीत, रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, भाग 2, 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ :85

[102] वहीं, पृष्ठ : 86

नई सृष्टि के लिए भारत के जन-जन में लहर फ़ैल रही है। देश में फैले अत्याचारों से देश की मिट्टी काली हो चुकी है। जहाँ श्रम और प्रकृति मिल कर देश को अब निर्मल बनायेंगे-

"बाहु बल धारे- देश हमारे।

गंगा-यमुना-जल-

अविरल निर्मल,"[103]

अब क्रांति इन्हीं नदियों के आसपास है। जो प्रलय के लिए आतुर है। कवि उम्मीद से कहता है –

"उठ रही कैसी प्रबल हिलोर!

अरे अरे वह देखो! देखो!! विकट क्रांति का छोर !"[104]

और हुकूमत को सावधान करता है कि विप्लववादियों से मत उलझो। यह आग है, तुम्हें झुलसा देंगे। जिन्हें रण में विश्वास है-

"आमंत्रण आया वीरों! साजों रण के साज।

सुना दिया है सेनापति ने-

रुचिकर सिंह निनाद।

चलो-चलो अब मर मिटने का,

ले संजीवन स्वाद।।"[105]

इन कवियों के हृदय में पराधीनता के वजह से हलचल पैदा हो रही है। इसी पराधीनता के फलस्वरूप देश में अत्याचार फैला हुआ है।

---

[103] वहीं, पृष्ठ : 87

[104] वहीं, पृष्ठ :88

[105] वहीं, पृष्ठ: 94

इन कवियों को मजदूर-किसान की व्यथाओं को अपनी रचनाओं में चित्रित करने के लिए भी प्रतिबंधित किया गया। लेकिन इन कवियों ने मजदूरों और किसानों की व्यथाओं को, अपनी रचनाओं में भरपूर जगह देने से परहेज नहीं किया है। लिखा की-

"जर्जर मेरे टूटे फूटे
छप्पर में चूता है पानी।
किसी एक कोने में सिमटी,
खड़ी भीगती मेरी रानी।।"[106]

इस कविता का शीर्षक 'विद्रोही किसान' है। जिसकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति को कवि ने अपने कविता का कथ्य बनाया है। जहाँ एक तरफ बारिश से बच्चा जड़ा के मारे कांप रहा है, वहीं दूसरी तरफ उसके खेत और किसान है। इस कविता में तीनों ही ऋतुओं में किसान की स्थिति के बरक्स राजमहलों के निवासियों को भी दिखाया गया है –

"मैंने देखा राजमहल भी,
थाने और कचहरी देखें।
इधर उधर बंदूक लिए कुछ,
आते-जाते प्रहरी देखे।।"[107]

इस कविता के अध्ययन के बाद निराला की कविता 'वह तोड़ती पत्थर' की याद आना सहज है। लेकिन इस कविता का कथ्य 'वह तोड़ती पत्थर' से आगे जाता महसूस होता है। जिसमें थाने, कचहरी और मंदिर-मस्जिद भी है-

"मंदिर देखे मस्जिद देखीं,

---

[106] प्रहलाद पाण्डेय 'शशि', तूफ़ान, रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, भाग 2, 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ :215

[107] वहीं, पृष्ठ: 216

पंडित और मौलवी देखे।

शांत और गम्भीर किन्तु कुछ,

आकुल बड़े जोतिषी देखे।"

इन सभी जगहों पर किसान को बेदर्दी और अपमान ही मिला। किसानों ने जहाँ तक देखा, वहाँ तक केवल पैसे की पूजा होते देखा था। इससे क्षुब्ध होकर किसान ने तथाकथित सभ्य-संस्कृतियों पर सवाल खड़े किया। अंत में विद्रोही तेवर में कहता है कि, 'यह गीत जाकर महलों में सुना दो।' इसी तरह से प्रहलाद पाण्डेय 'शशि' ने मजदूरों की स्थिति का चित्र उकेरा है –

"मेरे बच्चे-मेरे राजा,

पानी पी सो रहा रात भर।

सचमुच भोर जरुर तुम्हें हम,

देंगे बेटा रोटी लाकर।"[108]

किसान की तरह मजदूर का परिवार भी दाने-दाने के लिए तरस रहा है, और एक तरफ विभव है तो दूसरी तरफ गरीबी। किसानों की गरीबी के आलम को दिखलाने के लिए देवनारायण द्विवेदी ने अपनी प्रतिबन्धित पुस्तक 'देश की बात' में कानपुर और पटना के कलक्टरों के हवाले से लिखा है की "कानपुर के सहकारी कलेक्टर मि. बार्ड ने कहा था –

I have calculated the cost of food of male at £ 1.12 s. per annum, of a female £ 1.7 s. 4 d. and minor 18 s. 8d.

मेरे हिसाब से एक पुरुष का वार्षिक खाने-पीने का खर्च 16 रु., स्त्री का 13 रु. 10 आना तीन पैसे और बालक का 9 रु. 5 आना 2 पैसे होता है।

[108] वहीं, पृष्ठ : 221

जहाँ के पूर्ण-व्यस्क आदमियों को दो वक्त खाने के लिए केवल तीन पैसे रोज मिलते हैं, वहां के लोगों के सुख-दुःख का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। जरा बिहार के किसानों का हाल सुनिये। पटना के कलेक्टर ने कहा था कि, - जो किसान सात बीघा जमीन जोतता है, वह-

Can take one full meal insead of two

केवल एक वक्त पेटभर खा सकते हैं।

गया के कमिश्नर ने कहा था कि-

Forty percent of the population are insufficiently fed. चालीस सैकड़ा आदमी भरपेट नहीं खाते। किन्तु ये कथन आज से बहुत पहले के हैं। तब से अबकी दशा और भी अधिक बुरी है।"[109] ध्यान रहे यहाँ देवनारायण द्विवेदी 1870 से 1890 की बात कर रहे हैं। लेकिन जब अबकी स्थिति के तरफ इशारा करते है तो, उनका इशारा 1928-29 ई. की स्थिति की तरफ होता है। लेकिन प्रतिबंधित हिंदी कवियों ने इन जुल्मों को अपना बनाया और लिखा –

"इसे भूलना मत ओ जालिम !
जुल्मी बार-बार हैं मरते।
एक बार-बस एक बार ही
वीर मौत से खेला करते।।"[110]

इसके बाद ये कवि अपने वीरों लाला लाजपत राय, सुखदेव, राजगुरु और भगत सिंह को याद करते हुए। वे जालियांवाला बाग़ जैसी नृशंस हत्याओं को भी नहीं भूलते।

प्रतिबंधित हिंदी कविताओं का कथ्य जुल्मों के दौर में साहस और उम्मीदों के आधार पर बुनी गई है। जब देश में स्त्री-पुरुष, बच्चे-जवान और बूढ़े सब पीड़ित हैं। इनके लिए तीनों ही ऋतुएं

[109] देवनारायण द्विवेदी, देश की बात, मैनेजर पाण्डेय(सम्पा), 2012, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 85
[110] प्रहलाद पाण्डेय 'शशि', तूफ़ान, रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, भाग 2, 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ :209

उत्पीड़न की ऋतुएं हैं। जिस बसंत में 'होली' जैसा त्यौहार, जो हंसी-खुशी और मिलन का त्यौहार है। उसी होली को प्रतिबंधित कवि प्रश्नांकित करते हैं, और पूछते हैं कैसे आज मनाऊं होली ? जब –

"हम भूखे कंकाल, हमारी,
    हड्डी पर सत्ता का नर्तन।
        हाहाकारों की लपटों में,
            होता भस्म हमारा जीवन।।"[111]

गरीबी और भूखमरी से जनता एक तरफ अंग्रेजी हुकूमत से उत्पीड़ित है। वहीं दूसरी तरफ साम्प्रदायिक ताकतों ने भी अपना पैर फैला दिया। जिससे उन्हें अनेक स्तरों पर संघर्ष करना पड़ रहा है। जर्मन कवि बर्तोल ब्रेख्त ने 1936 के आसपास एक कविता 'अगली पीढ़ी के लिए' लिखी। जिसमें उन्होंने लिखा कि 'सचमुच मैं अँधेरे युग में रहा हूँ।' इस पंक्ति को सामने रख जब हम प्रतिबंधित कविताओं का अध्ययन करेंगे तो यही पाएंगे की 1947 के पहले का भारतीय समाज और रचनाशीलता सचमुच अँधेरे से उजाले के लिए संघर्ष कर रही थी।

[111] वहीं, पृष्ठ : 237

राष्ट्रीय आल्हा, अंग्रेजों की इस तौर से, करो बोलती को बंद, अंग्रेजों की अकड़ फूँ निकल गई, अहिंसा का समशीर, राष्ट्रीय आल्हा यानी भगत सिंह की लड़ाई, आग का गोला, आज़ादी का बिगुल कविता संग्रह

अगर हम हिंदी की प्रतिबंधित कविताओं के स्वरूप पर चर्चा करें तो । इनमें विविध प्रकार के स्वर मिलते हैं जो मूलतः तो देश प्रेम की भावना से जुड़े हुए हैं। लेकिन उनके बाहरी स्वरूप में विविधता प्राप्त होती है। कुछ कविताएं राजनैतिक घटनाक्रमों को लेकर लिखी गई हैं तथा कुछ में उठ रहे तमाम सामाजिक आन्दोलनों को अभिव्यक्त किया गया है। विचारधारा के स्तर पर भी इनमें कई रूप प्राप्त होते हैं। किसी में रामराज्य का समर्थन है तो किसी में साम्यवादी समाज के निर्माण पर जोर। इन कविताओं में गीत, लोक गीत भी प्राप्त होते हैं। इसके बारें में मधुलिका बेन पटेल ने लिखा है "प्रतिबंधित कविताएँ साम्राज्यवादी शिकंजे में कसे भारत में घट रही घटनाओं का काव्य रूप हैं ...। ब्रिटिश सरकार अपने अत्याचारों का इतिहास मिटा देना चाहती थी। वह नहीं चाहती थी कि उसके कुकृत्यों का इतिहास जनता की स्मृति पटल पर रहे इसलिए उसने ऐसे अनेक अधिनियम पास किए जिनके तहत रचनाओं पर प्रतिबन्ध लगाया जा सके। ऐसी सारी रचनाएँ प्रतिबंधित की गई जिनमें अंग्रेजों के खिलाफ जनता को भड़काया गया, अंग्रेजों के अत्याचारों का वर्णन किया गया, आज़ाद भारत की परिकल्पना की गई। विभिन्न देशों में हो रही क्रांतियों का वर्णन किया गया, बलिदानी वीरों की गाथाएं लिखी गई अथवा सोवियत या साम्यवादी विचारधारा का समर्थन किया गया।"[112]

[112] मधुलिका बेन पटेल, प्रतिबंधित हिंदी कविताएं : सात क्रांतिकारी ज़ब्तशुदा काव्य-संग्रह, 2016 स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली: पृष्ठ 45,

प्रतिबंधित कविताओं में राष्ट्र मुक्ति की चेतना के स्वर की बात किया जाये तो ऐसी बहुत सी कविताएं लिखी गई जिनमे राष्ट्र को साम्राज्यवादी शक्तियों से मुक्ति दिलाने की जबर्दस्त आकांक्षा दिखाई देती है । देशवासियों को अपनी जान की परवाह न करने के लिए ललकारा गया । व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर एकजुट होने का सन्देश भी दिया गया है । देश के लिए बलिदान होने वाले, फांसी के फन्दों पर झूल जाने वाले नौजवान की गाथाएं गायी गई । भगत सिंह, आज़ाद, रामप्रसाद 'बिस्मिल' आदि की कुर्बानियों का बदला लेने के लिए नौजवानों को ललकारा गया । पुस्तक में उद्धृत एक कविता 'स्वराज लेंगे' है –

"कहते हैं ताल देकर लेंगे स्वराज लेंगे ।
बैठ न चुप रहेंगे लेंगे स्वराज लेंगे ।
अब यह गुलामीयत की जंजीर तोड़ करके ।
स्वच्छंद हो रहेंगे लेंगे स्वराज लेंगे ।
मुद्दत के बाद गफलत से जग हम गएं हैं ।
सबसे यही कहेंगे लेंगे स्वराज लेंगे ।।
भारत हुआ है गारत उसका सुधर करके ।
माता का दुःख हरेंगे लेंगे स्वराज लेंगे ।।
यह देश है हमारा ऊँचा इसे उठाकर
स्वतन्त्रता लहेंगे लेंगे स्वराज लेंगे ।।
यह आत्मा अमर है मरे न मर सकेंगे ।
क्या मौत से डरेंगे लेंगे स्वराज लेंगे ।।
स्वर्गीय देशभक्तों फिर नन्दन विपिन बनाकर ।
तब मौत बन गहेंगे लेंगे स्वराज लेंगे ।"[113]

---

[113] उद्धृत, वहीं, पृष्ठ: 65

इस कविता में सीधे स्वर में स्वराज का समर्थन किया जा रहा है। मौत का भय छोड़कर आज़ादी पाने की कामना की गई। गुलामी की जंजीरें असहनीय हो गई थी इसे तोड़ने की आवश्यकता महसूस की गई है।

प्रतिबंधित कविताओं में सामाजिक मुक्ति की चेतना के अंतर्गत किसानों, मजदूरों, दलितों के आन्दोलन तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने वाली स्त्रियों को लेकर विचार किया गया है। साम्राज्यवादी शोषण से देश की हलात अत्यंत दयनीय हो गई थी। किसानों-मजदूरों का भयंकर शोषण किया जा रहा था। इनके श्रम का लाभ उठाकर पूंजीपति अपना कोष भर रहे थे। दूसरी ओर इनकी स्थिति बद-से-बदतर होती जा रही थी। इन्हें इनके श्रम का मूल्य भी प्राप्त नहीं होता था। लगान न दे पाने के कारण इन्हें भयंकर जुल्मों का सामना करना पड़ता था। मजदूरों से इतना अधिक काम लिया जाता कि उनकी मृत्यु तक हो जाती। देश के बुर्जुआ नेताओं ने इनकी समस्याओं पर कोई ध्यान न दिया, लिहाजा किसानों-मजदूरों ने स्वयं इस शोषण के खिलाफ लड़ाई छेड़ दी। सदियों से भारत में चली आ रही ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ दलितों का आन्दोलन भी उठ खड़ा हुआ। ये किसान मजदूर, दलित दोहरी लड़ाई लड़ रहे थे, एक ओर अंग्रेजों के खिलाफ तो दूसरी ओर अपने ही देश के शोषणकारी तत्वों से। आज़ादी की लड़ाई में महिलाओं ने भी बहुत योगदान दिया। इसके लिए उनको जेल की यातनाएं तक सहनी पड़ी। बलिदान करना पड़ा फिर भी उनका उत्साह कम न हुआ। पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर वे लड़ाई में कूद पड़ीं।

“झोपड़ियों में नवदान से,
की जाती है जिनकी समता।
रोगी बच्चे के सिरहाने,
जाग रही है माँ की ममता।।
कहीं जगती भूखे व्याकुल

कितने ही प्राणों की पीड़ा
कहीं जागती श्रमिक वर्ग के
असफल अरमानों की क्रीड़ा ।।"[114]

भारतीय मजदूर अभावों की प्रकाष्ठा में जी रहे थे ।अभावग्रस्त, जीवन ऊपर से कठोर अत्याचार, जिंदगी नर्क थी। भूखे- प्यासे नादान बच्चों को देखकर माँ की आँखों में आँसूओं का सागर उमड़ आता था। जिसके पास खाने तक को कुछ नहीं है, वे रोगी बच्चे को दवा कहाँ से ला सकते हैं। उपरोक्त पंक्ति में इसी पीड़ा को व्यक्त किया गया है।

उपलब्ध सात क्रान्तिकारी जब्तशुदा काव्य-संग्रह स्वतन्त्रता आन्दोलन सम्बन्धी इतिहास को रूचिकर ढंग से प्रस्तुत करता है। इसका अनुमान संपादिका मधुलिका बेन पटेल द्वारा भूमिका में लिखित इस बात से लगाया जा सकता है। पटेल ने लिखा "भारतीय इतिहास के अंग्रेजी राज और उसमें मुक्ति के लिए किए गए संघर्ष में साहित्य की एक क्रांतिकारी भूमिका है, खासकर कविताओं की। देश को ब्रिटिश शासन की गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए एक ओर जहाँ आन्दोलनकारी, क्रांतिकारी तथा जन समुदाय सक्रिय था वहीं दूसरी ओर इस दौर में लिखी गई तमाम कविताएँ आज़ादी की भावना को प्रेरित करने, साम्राज्यवादी शक्तियों को उखाड़ फेकने के लिए जनता को उत्साहित करने में अहम भूमिका निभा रही थी।"[6] इस बात से सहमत होने में हमें देर नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इसकी पुष्टि एक आँकड़े से हो जाती है एन. जेराल्ड बैरियर ने 1391 हिंदी भाषा में प्रतिबंधित पुस्तकों की सूची प्रस्तुत की है। जिनको प्रतिबंधित कर विभिन्न स्थानों पर रखा गया। भारत में सर्वाधिक पुस्तकें राष्ट्रीय अभिलेखागार में प्रतिबंधित कर रखी गई। जिसमें लगभग 300 कविता संग्रह है। लेकिन यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए की यह संख्या केवल राष्ट्रीय अभिलेखागार में मौजूद कविता संग्रहों की है।

---

[114] उद्धृत, वहीं, पृष्ठ: 101

इन कविता संग्रहों से सम्बंधित दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस पुस्तक की भूमिका में केवल दो ही संग्रह का समय दिया हुआ है। बाकी संग्रहों का समय उपलब्ध नहीं हो पाया है। जिन संग्रहों का समय दिया गया उसके नाम है – 'राष्ट्रीय आल्हा – 1930' और 'अहिंसा की समशीर – 1930'। इस समय को ध्यान में रखकर अगर हम हिंदी साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो यह छायावाद का कालखंड मालूम पड़ता है। इसीलिए साहित्य के इतिहास में उल्लिखित युग मसलन, भारतेंदु, द्विवेदी , छायावाद इत्यादि से बाहर रखी रचनाओं में साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ इतने कड़े तेवर थे कि ब्रिटिश सरकार ने उनपर प्रतिबन्ध लगा दिया। भारतेंदु युग में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध आने वाले असंतोष के स्वर द्विवेदी और छायावाद युग में और भी शिथिल पड़ गए। जिस समय जनता के सामने संघर्ष के सिवा दूसरा कोई रास्ता न था। उस समय इस युग की रचनाओं में उनके स्वर न पाकर निराशा होती है। इस कमी को प्रतिबंधित कविताओं ने पूरा किया।

सात संग्रहों में प्रथम कविता संग्रह 'भारत की राष्ट्रीय आल्हा' है, इसके लेखक बाबूराम पेंगोरिया है। यह 1930 में जैन प्रेस, आगरा से प्रकाशित हुई थी। पुस्तक के अंतिम हिस्से 'प्रार्थना' में बाबूराम पेंगोरिया ने कहा है कि इस पुस्तक के माध्यम से पाठकों को ये बात ज्ञात होगा कि ब्रिटिश सरकार ने हिंदुस्तान की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिदृश्य को बेवाक तरीके से सामने रखा गया है। वास्तव में पूरी पुस्तक जलती हुई आग है। एक कविता द्रष्टव्य है –

''भूतपूर्व गवर्नर जनरल सर जान सर भी रहे बताय।
नहीं उपकार हुआ भारत का पर आपका हुआ है जाय॥
यह भी उनने साफ कह दिया है सिद्धांत अकट लोउ मान।
राजशक्ति यदि होय विदेशी अनिवार्य उससे होई हानि॥
यह तो बात कही उन्होंने यूरूप के प्राय:सभी विद्वान।
स्वीकार कर के कहते हैं सर्वनाश का यही प्रमाण॥

अंगरेजी शासन से है गयो सर्वनाश भारत जा जाय।"[115]

अंग्रेजों के भयंकर अत्याचार सहती जनता को जगाने की बड़ी कोशिश इन पुस्तकों के माध्यम से की गई।

दूसरी पुस्तक 'अंग्रेजों की बोलती करो बंद' है। इसके प्रकाशक पंडित बाबूराम दौनेरिया हैं। यह पुस्तक भारत बुक एजेंसी, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई थी। इस संग्रह की ओज भरी वाणी में भी देशवासियों को जगाने की बेचैनी भरी पड़ी है। हिंदुस्तान में अंग्रेजों की बढती बाढ़ और उनकी नीतियों के फलस्वरूप निरंतर शोषित जन समूह से अत्याचारी सत्ता को उखाड़ फेंकने की अपील की गई है। जैसे –

"आता तो कई करोड़ का विलायत से माल हैं।
हमारे ही सर पर विलायत निहाल हैं।
घर में हमारे अब आटा न दाल है
फिर भी न समझते हम कैसा कमाल है।
भारत में आये प्रिंस यह भी मिसाल है
कि सारे हिंदुस्तान में एकदम हड़ताल है
न पूछा उन्होंने भी क्यों का वार बंद
योरूप की फिर तो यों बोलती हो बंद॥"[116]

तीसरी पुस्तक 'अंग्रेजों की अकड़ फूँ निक़ल गई' है। इसके प्रकाशक भी बाबूराम दौनेरिया हैं। इसमें भी जनता को विदेशी सरकार के खिलाफ मुक्ति संग्राम छेड़ने के लिए ललकारा गया है। इसमें एक ग़ज़ल है। इस ग़ज़ल में स्वतन्त्रता की भावना देखने लायक है-

115 बाबूराम, पेंगोरिया, 'राष्ट्रीय आल्हा', (जैन प्रेस आगरा 1930,), वहीं, पृष्ट:126

116 अंग्रेजों की इस तौर से करो बोलती को बंद, पंडित बाबू राम दौनेरिया, वहीं, पृष्ठ: 146

"मिटा देंगे हुकूमत को हम ऐसा करके छोड़ेंगे
तू ए बादे सबा जाकर यह पंजम जार्ज से कह दे
कि हम इंग्लैण्ड वालों को लिफाफा करके छोड़ेंगे
गजब की बेडियां डाली हैं जो जालिम ने पैरों में
इसी झंकार से हम हशर बरपा करके छोड़ेंगे
न छोड़े जीते जी दिशमान का पीछा हम वह काले हैं
अगर छोड़ेंगे तो दुश्मन को मुर्दा करके छोड़ेंगे
अजीजों अब मुरब्विज होने दो गाँधी के चर्खे को
इसी चर्खे से हम दुशमन को चार्खी करके छोड़ेंगे"[117]

चौथी पुस्तक 'अहिंसा की समशीर' है। यह पुस्तक 1930 में प्रकाशित हुई थी। इसका प्रकाशन 'खिचरी समाचार प्रेस, मिरजापुर' से हुआ था। यह विद्रोही कविताओं, गीतों व गजलों का संकलन है।

पाचवीं पुस्तक 'राष्ट्रीय आल्हा यानी भगत सिंह की लड़ाई' है। इसके लेखक कॉमरेड सूर्यप्रसाद मिश्र हैं। मूल पुस्तक में इसका प्रकाशन वर्ष नहीं दिया गया है। इसका प्रकाशन खालागांव, देशपुर, कानपुर से हुआ था। इसमें भगत सिंह की विचारधारा से लेकर उनके साथियों का वर्णन है।

छठी पुस्तक 'आग का गोला' मुख्य रूप से किसानों पर केन्द्रित है। भारत में अंग्रेजों का प्रमुख उद्देश्य धन की लूट करना था। कहने की आवश्यकता नहीं की, अकाल के बावजूद अंग्रेजों की आय में निरंतर वृद्धि होती गई। इसके प्रमुख कारण भारतीय जनता पर उनके बढ़ते अत्याचार थे। गरीब किसान दिन-ब-दिन और भी अधिक गरीब होते चले जा रहे थे। धीरे-धीरे जमीन छीन जाने के बाद वे भूमिहीन मजदूर में तब्दील हो रहे थे। हिंदुस्तान की इन खौफनाक स्थितियों से रूबरू कराने वाली

[117] वहीं, पृष्ठ:160

रचनाएँ तुरंत जब्त कर ली जाती थी। 'आग का गोला' संग्रह भी देश की दुर्दशा को बेनकाब कर रहा था। ब्रिटिश सरकार किसी कीमत पर इसे बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। 'किसान की अर्जी' कविता द्रष्टव्य है –

"जब जेठ महीना आवा। सविता आगिनी बरसावें।
चीरौ न गुरुगुच छोडै। सब मनई घर माँ सोवे।
हम पेट में पट्टी कर-कर। दिन रत कुदार चलाईन॥
फिर पुछुये के घूरे पर। दस बीघा खेत बनाईन॥
दोनों पड़वा मचियाइन।"[118]

सातवीं पुस्तक 'आज़ादी का बिगुल' है। इसके संग्रहकर्त्ता व प्रकाशक क्षमाचंद्र रस्तोगी हैं। इसमें 16 ग़ज़ल एवं कुछ कविताएं हैं। इसके प्रकशन वर्ष का उल्लेख नहीं है बहरहाल पूरी पुस्तक आज़ादी की भावना से प्रेरित होकर लिखी गई है।

इन पुस्तकों को पढ़ते और विचारते हुए आज़ादी की चेतना के विभिन्न स्वरों की प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त होती है। इस समय के रचनाकारों की रचनाओं को पढ़ते हुए ये लगातार महसूस होता रहा कि कोई भी रचनाकार पेशेवर रचनाकार नहीं था। बल्कि ये रचनाकार आज़ादी की चाह रखने वाले और स्वतन्त्रता सेनानी मालूम पड़ते हैं। इन रचनाकारों ने जनता को अंग्रेजी शासन के खिलाफ जागरूक करने के लिए हरसंभव कोशिश की। इन सातों संग्रहों को पढ़ते हुए मुक्तिबोध की एक बात अक्सर ध्यान आती रही जो उन्होंने अपने लेख 'मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का एक पहलू' में लिखा है। उन्होंने लिखा "किसी भी साहित्य को हमें तीन दृष्टियों से देखना चाहिए। एक तो यह कि वह किन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक शक्तियों से उत्पन्न है, अर्थात वह किन शक्तियों के कार्यों का परिणाम है, किन सामाजिक- सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का अंग है ? दूसरे यह कि उसका अंतः स्वरूप क्या है, किन

[118] आग का गोला, द्वितीय भाग, सेवक कुंदनलाल, वहीं, पृष्ठ:197

प्रेरणाओं और भावनाओं ने उसके आंतरिक तत्व को रूपायित किए हैं ? तीसरे उसके प्रभाव क्या है, किन सामाजिक शक्तियों ने उसका उपयोग या दुरूपयोग किया है और क्यों ? साधारण के किन मानसिक तत्वों को उसने विकसित या नष्ट किया है।"[119] मुक्तिबोध की इन तीनों बातों को सामने रखकर। जब हम सातों प्रतिबंधित संग्रहों पर विचार करेंगे तो उसका निष्कर्ष संभवतः इस तरह होगा। प्रथम औपनिवेशिक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक जनता के शक्तियों से उत्पन्न है। दूसरा औपनिवेशिक मुक्ति की चेतना उसका अंतःस्वरूप है और तीसरा औपनिवेशिक जनता पर उसका प्रभाव है।

[119] मुक्तिबोध रचनावली खं.-5, नेमिचंद्र जैन(सम्पा.), 1986, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ: 293

अध्याय:3

प्रतिबंधित हिन्दुस्तानी कथा साहित्य

1932 तक हिंदी कहानी 'प्रथम कहानी विवाद' को त्यागकर अपने यौवनास्था में पहुँच चुकी थी और हिंदी कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद अपने रचना कर्म के लगभग अंतिम पड़ाव पर थे। इन्हीं साहित्यिक घटनाओं के बरक्स दुनिया की चर्चित आज़ादी की लड़ाईयों में शामिल भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई ने भी जोर पकड़ लिया था। अब भारतीय जनमानस 1857 के दमन को भूलकर नए जोश-खरोश से परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए पूरी तरह से तैयार था। इसके साथ भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के सेनानियों का साथ उस समय के लेखक, साहित्यकार और बुद्धिजीवी भी बखूबी दे रहे थे। जो भारतीय जनता को अंग्रेजी परतन्त्रता या आज़ादी का मतलब समझा रहे थे। परतंत्रता के खिलाफ़ लड़ाई और लेखन के सन्दर्भ में लातिन अमरीकी लेखक एदुआर्दो गालेआनो ने लिखा है कि "जब कोई लिखता है तो वह औरों के साथ कुछ बाँटने की जरूरत ही पूरी कर रहा होता है। यह लिखना अत्याचार के खिलाफ़ और अन्याय पर जीत के सुखद अहसास को साझा करने के लिए ही होता है। यह अपने और दूसरों के अकेले पड़ जाने के अहसास को खत्म करने के लिए होता है। यह माना जाता है कि साहित्य ज्ञान और समझ को फ़ैलाने का जरिया है और यह पढ़ने वालों की भाषा और आचरण पर असर डालता है। ... दरअसल लिखा उन्हीं के लिए जाता है जिनके नसीब या बदनसीबी के साथ जुड़ाव महसूस किया जाता है। ये वे लोग हैं जो न ढंग का खा सकते हैं न सो सकते हैं, वे इस दुनिया के सबसे दबे-कुचले अपमानित और इसलिए सबसे भयंकर विद्रोही लोग हैं।"[120] यहाँ 20वीं सदी से पहले की गुलामी या आज 21वीं सदी की गुलामी के सारे तत्त्व विद्यमान है। 20वीं सदी

[120]. एदुआर्दो गालेआनो, आग की यादें, अंग्रेजी से अनुवाद और संपादन : रेयाजुल हक़, 2016, गार्गी प्रकाशन, दिल्ली : 15.

का आधा से अधिक दशक बीतने के साथ ही पूरी दुनिया को गुलामी से मुक्त घोषित कर दिया गया। लेकिन बड़े मुल्कों ने अपनी कुछ एजेंसियों और कुछ परियोजनाओं के माध्यम से पूरी दुनिया के मुल्क के आवाम पर गुलामी के पुराने तौर-तरीकों में कुछ हेर-फेर करके अपने जकड़ में लाने की कोशिश की है।

हिंदी कहानी की जब भी बात शुरू होती है तो अकसर नई कहानी आन्दोलन से पहले की कहानियों को पृष्ठभूमि के बतौर ही ग्रहण किया जाता रहा है। हिंदी कहानी के उद्भव को देखते हुए यह सही भी है। हिंदी कहानी हिंदी साहित्य के अन्य विधाओं के बनिस्बत आधुनिक विधा (मसलन – कविता और नाटक) है। इसे एक साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित होने के लिए मशक्कत करनी पड़ी। रूप और संरचना के कारण इसे 'मनोरंजन'[121] की तरह लोगों ने अपनाया। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि हिंदी कहानी विधा की शुरुआत औपनिवेशिकता की चरम- अवस्था के दौर में हुई थी।

अब तक ज्ञात जानकारी के अनुसार '54 कहानियां'[122] को अंग्रेजी दमन झेलना पड़ा और उन्हें प्रतिबंधित किया गया। लेकिन हिंदी साहित्य के इस दमन को और भी मजबूत आधार उस समय प्रदान किया गया जब अपने साहित्यिक प्रतिमानीकरण से बाहर कर इतिहास लिखना आरम्भ किया गया। आधुनिक हिंदी साहित्य खासकर 1947 तक का भारतीय भाषाओं के साहित्य को अधिकतर उपनिवेशवाद के खिलाफ लिखा हुआ साहित्य माना जाता है। लेकिन औपनिवेशिक मन का सबसे

---

121. सुरेन्द्र चौधरी लिखते हैं –"सामान्यत: पाठक और आलोचक के एक समुदाय के बीच इस बात को लेकर सहमती है कि कथा हमारा मनोरंजन करती। इस मनोरंजन को लेकर अभिजात रुचि बराबर कथा-कहानियों को हेय दृष्टि से देखते आयी है।" सुरेन्द्र चौधरी, हिंदीकहानी प्रक्रिया और पाठ, 2010, राधाकृष्ण नई दिल्ली: 11.

122. रुस्तम राय लिखते हैं – "समस्त भारतीय भाषाओं में अनेक उपन्यास और कहानी संकलन स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान प्रतिबंधित हुए हैं। अब तक प्राप्त जानकारी के अनुसार हिंदी कथा-साहित्य सेसम्बंधित 54 कहानियाँ मिली हैं।"रुस्तम राय, 'स्वाधीनताआन्दोलन और प्रतिबंधित हिंदी कथा-साहित्य', विभूति नारायण राय (सम्पा.) कथा-साहित्य के सौ बरस, 2015, शिल्पायन, दिल्ली: 24

अधिक प्रकोप झेलने वाला साहित्य, साहित्यिक और ऐतिहासिक प्रतिमानीकरण से बाहर है। भारतीय साहित्य और इतिहास भारतीय समाज के विकास प्रकिया को संघर्ष के नज़रिए से देखता है। इसी भारतीय समाज ने सामन्तवाद को ठुकराया उपनिवेशवाद को ठुकराया और अब पूंजीवाद से संघर्ष कर रहा है। इस समाज ने आधुनिकता, नवजागरण, राष्ट्रवाद, जाति मुक्ति और लैंगिकमुक्ति सम्बन्धी संघर्षो और आन्दोलनों से पूरी दुनिया के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने की कोशिश की है। इतिहास लेखन के बदलते दृष्टिकोण और सवालों को उठाने के लिए अलग-अलग दृष्टियों से इतिहास लिखने की कोशिश हुई। इतिहास को और ज्यादा प्रासंगिक बनाने के लिए भारतीय इतिहासकारों को यहाँ तक लिखना पड़ा कि "निम्नवर्गीय प्रसंग को प्रासंगिक बनाने के लिए केवल एक ही प्रकार के लेखन से काम नहीं चलेगा। हमें आवश्यकता है नई वैचारिकता, नई शब्दावली, नई भाषा (अपने विस्तृत मायने में), नवीन कथा शैली, मुख्तलिफ किस्म की दास्तानगोई की, जो बौद्धिक तो हो मगर कुंठित न हो, प्रयोगात्मक तो हो, मगर आडम्बरी न हो, व्यापक तो हो, मगर बेमानी न हो, देशज तो हो मगर राजकीय न हो और हिंदी तो हो मगर 'शास्त्रीय' न हो। हिंदी या हिन्दुस्तानी में इतिहास-लेखन की जुबान क्या हो इस सवाल का जवाब भी हमें ढूँढना होगा।"[123] अगर हम कुछ देर के लिए इस उद्धरण पर विचारते हैं तो इस उद्धरण में नया इतिहास लेखन के दृष्टिकोण सम्बन्धी तत्त्वों को रेखांकित करने की कोशिश की गई है। जो प्रतिबंधित साहित्य और प्रतिबंधित कहानियाँ पूरी करती हैं।

प्रतिबंधित हिंदी कहानियाँ भारतीय समाज के दर्द और इतिहास के दर्द को अपने अंदर समेटे हुई हैं। 19 वीं सदी के मध्य के बाद भारत में मुक्ति के स्वर सबसे ज्यादा प्रखर रूप में गूंजा और 1857 इसके विद्रोह के रूप में सामने आया। कुछ उपलब्ध प्रतिबंधित कहानियों का संकलन रुस्तम राय ने किया है। इसमें पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की पहली कहानी'उसकी माँ' शामिल है। इस कहानी में एक

[123].शाहिद अमीन और ज्ञानेंद्रपाण्डेय, 'पक्की से हट कर', शाहिद अमीन व ज्ञानेंद्रपाण्डेय (सम्पा), निम्नवर्गीय प्रसंग, 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 20.

संवाद इस प्रकार है "हाँ मेरे विचार स्वतंत्र अवश्य हैं, मैं जरूरत-बेजरूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ। देश की दुरावस्था पर उबल उठता हूँ , इस पशु- हृदय परतन्त्रता पर ।...

... तुम्हारी इस बक-बक से न तो देश की दुर्दशा दूर होगी और न उसकी पराधीनता। तुम्हारा काम पढ़ना है, पढ़ो इसके बाद कर्म करना होगा, परिवार और देश की मर्यादा बचानी होगी । तुम पहले अपने घर का उद्धार तो कर लो, तब सरकार के सुधार का विचार करना । ...इस पराधीनता के विवाद में चाचाजी, मैं और आप दो भिन्न सिरों पर हैं । आप कट्टर राजभक्त, मैं कट्टर राज-विद्रोही । आप पहली बात को उचित समझते हैं –कुछ कारणों से, मैं दूसरी को दूसरे कारणों से -आप अपना पथ छोड़ नहीं सकते – अपनी प्यारी कल्पनाओं के लिए – मैं अपना भी नहीं छोड़ सकता । ...

... मेरी कल्पना यह है कि जो व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो, उसका सर्वनाश हो जाये!"[124] अब हम यहाँ आधुनिकता और भारतीय नवजागरण को लें और इस उद्धरण के साथ पूरी कहानी को व्याख्यायित करें । सबसे पहले इस कहानी में उस समय के महान चिन्तक और शोषितों की आवाज़ के साथ उपनिवेश विरोधी दुनिया के बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों को पढ़ने को लेकर द्वंद से कहानी शुरू होती है और कहानी आगे एक लड़के (मुख्य पात्र- लाल) की घटनाओं, उसकी संगत और उसके स्वतन्त्रता को लेकर विचार के माध्यम से बढ़ती रहती है। लेकिन इस संवाद में स्वतन्त्रता सम्बन्धी उसके विचार भारतीय आधुनिकता और भारतीय नवजागरण दोनों को साधे हुए है । 'आप पहली बात को उचित समझते हैं – कुछ कारणों से ... ।'आगे फिर कहता है कि 'जो व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो, उसका सर्वनाश हो जाए !'

हेबरमास के बारे में लिखते हुए विजय कुमार लिखते हैं कि "हेबरमास कहते हैं कि सार्वजनिक जीवन के दायरे ने 18वीं सदी के शुरुआती वर्षों में आकार लेना आरम्भ किया था । इसका उद्देश्य था कि यह व्यक्ति के पारिवारिक और सार्वजनिक जीवन के सरोकार के बीच एक पटरी बिठाये । इसका

---

124. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', 'उसकी माँ'. रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, 1999, राधाकृष्ण, नई दिल्ली : 15.

काम मनुष्य के निजी हितों तथा व्यापक समाज के हितों के बीच एक संवाद बनाते हुए किसी आम सहमति तक पहुंचना था। बुर्जुआ सामाजिक दायरे के कारण ही यह संभव हुआ कि एक तरफ तो राज्य सत्ता का विरोध करने वाली सार्वजनिक धारणाएं आकार ले सकीं और दूसरी ओर वे ताकतें भी उभरीं जो बुर्जुआ समाज को अपने हिसाब से गढ़ना और चलाना चाहती थीं। इस सार्वजनिक दायरे की वजह से ही जनता के सामान्य हितों के तमाम मुद्दों पर बहसें संभव हो सकी थीं, और मनुष्य के कुछ बुनियादी सरोकारों की शिनाख्त की जा सकी थी। इसी सार्वजनिक दायरे ने वाणी की स्वतन्त्रता, सार्वजनिक सभाओं के आयोजन। प्रेस की आज़ादी, राजनीतिक प्रक्रियाओं और बहसों में खुली हिस्सेदारी को संभव बनाया था।"[125] यह लेख हेबरमास के आधुनिकता सम्बन्धी चिंतन के ऊपर लिखा गया है। लेकिन इस बात को ध्यान में रखते हुए 'उसकी माँ' कहानी के संवाद में जाना पड़ेगा। इस कहानी में एक तरफ एक नौजवान छात्र देश को गुलामी से मुक्त कराने के लिए हर संभव उतारू है। दूसरे तरफ रूसो और कई दुनिया के स्वतन्त्रता के पक्षधर चिंतकों को पढ़ने के द्वंद में उसके चाचा हैं ! जो केवल उस नौजवान को यही समझाता रहता है कि पहले अपने घर और परिवार का उद्धार करो ! और दूसरी तरफ उसकी माँ है। जो कभी इस बुर्जुआ सोच की तरफ आकर्षित होती है, कभी अपने नौजवान लाल (बेटे) के प्रति। कहानी के अंत में नौजवान छात्र को गुलामी से मुक्ति हेतु षडयंत्र के लिए फाँसी की सज़ा होती है। लेकिन कहानी की शुरुआत से लेकर अंत तक उस नौजवान छात्र के चाचा का जो द्वंद है। वह एक बुर्जुआ द्वंद है। जो आधुनिक तो है लेकिन अपनी सहूलियत की शर्त पर।

1920 आते-आते नवजागरण और मुक्ति की चाह चरम पर थी। शम्भुनाथ ने लिखा है कि "आधुनिकीकरण की तरह परम्परा को लेकर नवजागरण के हर दौर की समझ को विकासशील अवस्था में ही मानना चाहिए। फिर भी सैकड़ों साल की सामाजिक कु-प्रथाओं के टूटने का पक्का वक्त मानो आ गया था। यह बुद्धिमत्ता के, विवेक के धमाके का युग था। भूलना नहीं चाहिए कि निरंकुश राजाओं

[125]. विजय कुमार , अंधेरे समय में विचार, 2010, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ: 65.

बादशाहों के लम्बे दमन मूलक शासन से गुजरने के बाद औपनिवेशिक छाया में, बिना किसी व्यापक औद्योगीकरण के भी कला, साहित्य- संस्कृति शिक्षा, देशभक्ति, राष्ट्रीयता और सामाजिक चेतना में जितनी गतिशीलता आई, वह भारत जैसे विशाल देश में पर्याप्त न होते हुए भी अर्थवान थी। एक तरह से पूरे देश की सोच, उसकी अंतरात्मा एक नई करवट ले रही थी।"[126] प्रतिबंधित कहानियों को इसी नई करवट लेने और उसको अधिक तीव्र बनाने के कारण प्रतिबन्ध का सामना करना पड़ा। सामन्तवादी युग में स्त्री और जाति उत्पीड़न अपने चरम पर था। सती प्रथा और पर्दा प्रथा नवजागरण के स्त्री सम्बन्धी प्रमुख मुद्दे थे। जितना सती प्रथा स्त्री समाज के लिए घातक थी। उतना ही पर्दा प्रथा भी घातक थी। पर्दा- प्रथा स्त्री समाज की गुलामी का द्योतक है। जो इंसानी जगत में स्त्री और पुरुष गैरबराबरी का प्रथम प्रतीक है। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में 1947 तक महिला साहित्यकारों में मीराबाई, महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान का ही नाम आता है। प्रेमचंद हिंदी के प्रथम कथाकारों में शामिल हैं। जिन्होंने अपनी रचनाओं में महिला पात्रों को सशक्त भूमिका में सामने रखा। इस दृष्टि से अगर हम देखें तो प्रतिबंधित कहानियों में स्त्रियां परदे से निकलकर देश की आज़ादी के लिए हर स्तर पर लड़ती दिखाई देती हैं। इस दृष्टि से 'ऐसी होली खेलो, लाल! (पाण्डेयबेचन शर्मा 'उग्र'), बागी की बेटी (मुनीश्वरदत्त अवस्थी), हड़ताल, (ऋषभचरण जैन) और दोस्त (यशपाल)' इत्यादि की कहानियां देखी जा सकती हैं। प्रेमचंद ही अपनी एक कहानी में दिखाते हैं कि "मिसेज सक्सेना ने प्रधान से पूछा – शराब की दुकानों पर औरतें धरना दे सकती हैं ?...

प्रधान ने सर झुका कर कहा- मैं आपके साहस और उत्सर्ग की प्रशंसा करता हूँ, लेकिन मेरे विचार में अभी इस शहर की दशा ऐसी नहीं है कि देवियाँ पिकेटिंग कर सकें। आपको खबर नहीं, नशेबाज़ कितने मुंहफट होते हैं। विनय तो वह जानते ही नहीं।

---

126. शम्भुनाथ, भूमिका से, शम्भुनाथ (सम्पा.), 'सामाजिक क्रांति के दस्तावेज़', 2006, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली: 17.

मिसेज सक्सेना ने व्यंग्य-भाव से कहा –तो क्या आपका विचार है कि कोई ऐसा ज़माना भी आएगा, जब शराबी लोग विनय और शील के पुतले बन जायेंगे ? यह दशा तो हमेशा ही रहेगी । आखिर महात्माजी ने कुछ समझ कर ही तो औरतों को यह काम सौंपा है । मैं नहीं कह सकती कि मुझे कहाँ तक सफलता होगी; पर इस कर्तव्य को टालने से काम न चलेगा ।...

मिसेज सक्सेना ने जैसे विनय का आलिंगन करते हुए कहा – मैं आपके पास फरियाद लेकर न आऊँगी कि मुझे फलां आदमी ने मारा या गाली दी । इतना जानती हूँ कि अगर मैं सफल हो गयी, तो ऐसी स्त्रियों की कमी न रहेगी जो इस काम को सोलह आने अपने हाथ में न ले लें ।"[127] इस संवाद में कुछ प्रश्न छिपे हैं, जो आज के भी प्रश्न हैं । नए इतिहास लेखन में वर्ग का प्रश्न महत्वपूर्ण है । लेकिन 1930 के भारतीय स्त्री समाज की स्थिति और वर्ग का प्रश्न को अगर हम आमने-सामने रख कर देखें तो एक बात कहनी पड़ेगी की लैंगिक आधार पर किसी एक लिंग के हाथों और पैरों को बांधकर वर्ग की तलाशी नाइंसाफी मालूम पड़ती है । परन्तु प्रतिबंधित कहानियों में रूस को जारशाही से मुक्त कराने भी पुरुषों के साथ स्त्रियाँ जाती हैं, और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर संघर्ष करते दिखाया जाता है ।

जातिगत श्रेणी बद्धता अब तक के भारतीय समाज का सार्वभौमिक प्रश्न है । भारतीय समाज सदियों से जाति विभाजित समाज रहा है । 1936 में अम्बेडकर का 'जाति-उन्मूलन' (Anhilation of Cast) इस समस्या का ऐतिहासिक दस्तावेज़ है । हालाँकि अम्बेडकर से पूर्व महत्मा बुद्ध और ज्योतिबा फुले सामाजिक क्षेत्र में इस समस्या की शिनाख्त और खतरे की तरफ बहुत मजबूती से इशारा कर रहे थे । साहित्य में सिद्ध-नाथों, कबीरदास, रैदास और आधुनिक काल में स्वामी अछूतानन्द हरिहर और हीरा डोम जैसे जाति विरोधी रचनाकार तो हुए लेकिन 19 वीं सदी के अंत में आधुनिकता का जो

[127]. प्रेमचंद, 'शराबी की दुकान', बलराम अग्रवाल(सम्पा.) सोज़े वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियाँ, 2015, साक्षी प्रकाशन, दिल्ली: 104

प्रोजेक्ट शुरू हुआ तो जाति की समस्या को उजागर करने वालों में स्वामी अछूतानन्द और हीरा डोम ने ही हिंदी क्षेत्र में जाति विरोधी अभियान को जारी रखा। लेकिन यहाँ एक ध्यान देने लायक बात यह है कि आधुनिकता का प्रोजेक्ट का मूल निहितार्थ रूढ़िवादिता और जड़ता से मुक्ति था। यह मुक्ति आधुनिकता के मूल निहितार्थ के हिसाब से हिंदी क्षेत्र में कुंद सा महसूस होता है। क्योंकि आदिकाल से भक्तिकाल- जो घोर सामन्ती काल के रूप में जाना जाता है। जाति से मुक्ति की छटपटाहट आधुनिक काल के बनिस्बत अधिक प्रखर मालूम पड़ता है। मसलन सिद्ध-नाथ हों या कबीर या रैदास। हालाँकि स्वामी अछूतानन्द और हीरा डोम के साथ और इनके बाद भी प्रेमचंद ने इस समस्या को बेहद संजीदा से उठाया। महात्मा बुद्ध ने धर्म को जाति समस्या का प्रमुख उपकरण है का संकेत बहुत पहले ही कर दिया था। फिर बाद में अम्बेडकर ने भी धर्म को जाति समस्या का प्रमुख अधार माना। 1936 में उन्होंने 'जाति उन्मूलन' लिखकर इसका तर्क प्रस्तुत किया। ठीक उसी दौर में थोड़ा पहले 1923 और 1931 में 'अछूत समस्या'(1923) और 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' (1931) भगत सिंह ने दो लेख लिखकर इस अमानवीय समस्याओं की तरफ इशारा कर दिया था। भगत सिंह ने अपने लेख 'अछूत समस्या' में लिखा है कि "इसलिए हम मानते हैं कि उनके अपने जन-प्रतिनिधि हों। वे अपने लिए अधिक अधिकार माँगे। हम तो साफ कहते हैं कि उठो, अछूत कहलाने वाले असली जनसेवकों तथा भाइयों ! उठो ! अपना इतिहास देखो। गुरुगोविन्द सिंह की फौज की असली शक्ति तुम्हीं थे ! शिवाजी तुम्हारे भरोसे पर ही सब कुछ कर सके, जिस कारण उनका नाम आज भी जिन्दा है। तुम्हारी कुर्बानियां स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई है। तुम जो नित्यप्रति सेवा करके जनता के सुखों में बढोत्तरी करके और जिंदगी संभव बना कर यह बड़ा भारी अहसान कर रहे हो, उसे हम लोग नहीं समझते। लैण्ड-एलिएनेशन एक्ट के अनुसार तुम धन एकत्र कर भी जमीन नहीं खरीद सकते। तुम पर इतना जुल्म हो रहा है कि मिस मेयो मनुष्यों से भी कहती है – उठो, अपनी-अपनी शक्ति पहचानों। संगठनबद्ध हो जाओ। असल में स्वयं कोशिश किए बिना कुछ भी न मिल सकेगा। (Those who would be free must themselves strike the blow) स्वतंत्रता के लिए स्वाधीनता चाहने वालों को यत्न करना चाहिए। इन्सान की धीरे-धीरे

कुछ ऐसी आदतें हो गई हैं कि वह अपने लिए तो अधिक अधिकार चाहता है, लेकिन जो मातहत है उन्हें वह अपनी जूती के नीचे ही दबाए रखना चाहता है। कहावत है- 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते' अर्थात संगठनबद्ध हो अपने पैरों पर खड़े होकर पूरे समाज को चुनौती दे दो। तब देखना, कोई भी तुम्हें तुम्हारे अधिकार देने से इंकार करने की जुर्रत न कर सकेगा। तुम दूसरों की खुराक मत बनो। दूसरों के मुँह की ओर न ताको। लेकिन ध्यान रहे, नौकरशाही के झांसे में मत फँसना। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं करना चाहती बल्कि तुम्हें अपना मोहरा बनाना चाहती है। यही पूंजीवादी नौकरशाही तुम्हारी गुलामी और गरीबी का असली कारण है। इसलिए तुम उसके साथ कभी न मिलना। उसकी चालों से बचना। तब सब कुछ ठीक हो जायेगा। तुम असली सर्वहारा हो... संगठनबद्ध हो जाओ। तुम्हारी कुछ भी हानि न होगी। बस गुलामी की जंजीरें कट जाएंगी। उठो, और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बगावत खड़ी कर दो। धीरे- धीरे होने वाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा। सामाजिक आन्दोलन से क्रांति पैदा कर दो तथा राजनीतिक और आर्थिक क्रांति के लिए कमर कास लो। तुम ही तो देश का मुख्य आधार हो, वास्तविक शक्ति हो। सोये हुए शेरों ! उठो और बगावत खड़ी कर दो।"[128] वहीं दूसरे तरफ अम्बेडकर लिखते हैं कि "भारत में जाति भेद मूलतः हिन्दुओं के भीतर से निकली हुई वह गन्दगी है जिसने सारे देश के वायुमंडल को विषाक्त बना दिया है। और यह विष सिख, मुसलमान, इसाई आदि अहिंदू लोगों में भी फैला पाया जाता है। अतएव, लाहौर के जात-पाँत तोड़क मंडल को केवल हिन्दुओं का ही नहीं, सिख, मुसलमान, इसाई आदि सभी का समर्थन मिलना चाहिये मंडल का काम राष्ट्र की एक महान सेवा है और मंडल का यह प्रयत्न स्वराज संग्राम जब आप लड़ते हैं तो सारा राष्ट्र आपके साथ होता है, किन्तु इस जाति भेद विनाशक संग्राम में स्वयं मंडल को सारे राष्ट्र से संघर्ष करना होगा और वह राष्ट्र भी कोई दूसरा नहीं स्वयं अपना ही। मेरे विचार में तो मंडल का यह काम स्वराज से अधिक महत्वपूर्ण है। उस स्वराज से क्या लाभ, यदि हम उसकी रक्षा नहीं कर सकते। मेरी सम्मति में हिन्दू समाज से

[128]. भगत सिंह का लेख 'अछूत समस्या', access date:- 23. 11.2020

https://www.marxists.org/hindi/bhagat-singh/1923/achoot-samasya.htm

जाति भेद के महारोग के विनाश से ही उसमें अपनी आज़ादी की रक्षा करने की शक्ति उत्पन्न होने की आशा की जा सकती है। ।"[129] इन दोनों उद्धरणों से एक चीज़ तो साफ़ हो गई कि भारत में जाति मुक्ति के बगैर कोई भी स्वराज अधूरा है। अम्बेडकर जहाँ जाति आधारित समाज को नकारते हैं। वहीं भगत सिंह जाति के समस्या को महत्वपूर्ण मानते हुए वर्ग आधरित समाज को भी नकारते हैं। इन दोनों समाज के उन्नायकों को प्रतिबंधित हिंदी कहानीकार साथ लेकर चलते हैं। प्रेमचंद ने 'ठाकुर का कुआँ' तथा कुछ और कहानियां इसी दर्द को बयां करने के लिए लिखी थी। 'ठाकुर का कुआँ' कहानी में अम्बेडकर द्वारा जाति की समस्याओं के शिनाख्त को बखूबी पहचाना गया है। इस कहानी में दमित या पिछड़े हुए तबके को पानी पीने के लिए उच्च तबके के कुआँ से पानी लेने की मनाही थी। इसे पानी की समस्या का रूपक बनाकर भारतीय समाज के वीभत्स रूप को प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य में सामने रख दिया था। प्रेमचंद इस कहानी में लिखते हैं "ठाकुर के कुएँ पर कौन चढ़ने देगा ? दूरसे लोग डांट बताएँगे। साहू का कुआँ गाँव के उस सिरे पर है, परन्तु वहाँ भी कौन पानी भरने देगा। चौथा कुआं गाँव में है नहीं। जोखू कई दिन से बीमार है। कुछ देर तक तो प्यास रोके चुप पड़ा रहा, फिर बोला – अब तो मारे प्यास के रहा नहीं जाता। ला, थोड़ा नाक बंद करके पी लूं।"[130] इस कहानी का रचना समय1932 है। इस कहानी को ध्यान में रखते हुए हमें अम्बेडकर द्वारा 1927 में किये गये पानी के लिए महाड़ आन्दोलन को देखना पड़ेगा। जिस तरह से सार्वजनिक कुओं और तालाबों से अछूत कही जाने वाली जातियों को

---

[129]अम्बेडकर का लेख 'जाति उन्मूलन', access date:- 23.11.2020

http://gadyakosh.org/gk/%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF_%E0%A4%95%E0%A4%BE_%E0%A4%89%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A5%82%E0%A4%B2%E0%A4%A8_/_%E0%A4%AD%E0%A5%80%E0%A4%AE%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%B5_%E0%A4%86%E0%A4%AE%E0%A5%8D%E0%A4%AC%E0%A5%87%E0%A4%A1%E0%A4%95%E0%A4%B0

[130]. प्रेमचंद, 'ठाकुर का कुआँ', बलराम अग्रवाल (सम्पा.) सोज़े वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियाँ, 2015, साक्षी प्रकाशन, दिल्ली: 167

पानी लेने का अधिकार नहीं था। इस परम्परा को नष्ट कर सबको पानी लेने के अधिकार के लिए अम्बेडकर ने सत्याग्रह किया। उसी तरह से प्रेमचंद नें हिंदी साहित्य में अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से इस समस्या को हिंदी के अभिजात्य वर्गीय पाठकों के तरफ ध्यान दिलाने का सत्याग्रह किया। अम्बेडकर के महाड़ आन्दोलन और प्रेमचंद की इस कहानी में एक समनाता यह भी है कि, अम्बेडकर के इस आन्दोलन में स्त्री-पुरुष दोनों साथ में भाग लेते हैं। प्रेमचंद की कहानी में निर्भीक हो कर गंगी ही रात में ठाकुर के कुएं से पानी लेने जाती है। इसी समस्या से सम्बंधित एक और कहानी देखी जा सकती है। 'मजदूरिन' कहानी लीलावती बी.ए. की कहानी है। इस कहानी की शुरुआत मुलिया (मुख्य पात्र) से होती है। कहानीकार शुरू में अभिजात्य स्त्रियों और दमित स्त्री के बीच के फर्क को दिखाता है। मुलिया के माध्यम से ही कहानी आगे बढ़ती रहती है। इस कहानी में मुलिया मूलतः एक नौकर है और अपनी मालकिन की स्थिति को देख हमेशा द्वंद में रहती है। कहानीकार मुलिया के बारे में लिखता है कि "उसके विषय में तो ऐसा प्रतीत होता था कि समय आगे – आगे भागता था और वह उसे 'थोड़ा ठहर, थोड़ा ठहर' कहकर रोकने की व्यर्थ चेष्टा किया करती थी। सारा दिन खाली बैठने या इधर-उधर की गप-शप में ही व्यतीत कर देने का वह स्वप्न में भी ख्याल नहीं कर सकती थी। मजदूरिन है। उसका काम सुबह से शाम तक कोल्हू के बैल की तरह जुटे रहना है। सारा दिन पसीना बहाकर ही उसे पेट भरने को अन्न नसीब होता है। आप काम करती है, पति काम करता है, बच्चे भी कुछ- न- कुछ साथ देते ही हैं।"[131] ऊपर भगत सिंह ने जिस तरफ इशारा किया है। उसके साथ यह बात यहाँ साफ हो जाती है।

भारतीय सभ्यता मूलतः किसानी आधारित सभ्यता रही है। प्रतिबन्धित कहानियां इस किसानी सभ्यता के दमन से आहत हैं। इस सभ्यता को बचाने के लिए प्रतिबंधित कहानियां रूस के साम्यवादी व्यवस्था से प्रेरणा लेने की वकालत करती हैं। अंग्रेजी सरकार के साथ देशी सामंत मिलकर किसानों

[131]. लीलावतीबी.ए., 'मज़दूरिन'. रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, 1999 राधाकृष्ण, नई दिल्ली : 245.

की स्थिति पहले से भी बदतर बना रहे थे। प्रेमचंद ने 1932 में लिखित अपने लेख में लिखा है कि "भारत के अस्सी फीसदी आदमी खेती करते हैं। कई फीसदी वह हैं, जो अपनी जीविका के लिए किसानों के मुहताज हैं, जैसे गाँव के बढ़ई, लुहार आदि। राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभूति है, वह इन्हीं किसानों और मजदूरों की मेहनत का सदका है। हमारे स्कूल और विद्यालय, हमारी पुलिस और फौज़, हमारी अदालतें और कचहरियाँ, सब उन्हीं की कमाई के बल पर चलती हैं, लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्न और वस्त्रदाता हैं, भर पेट अन्न को तरसते हैं, जाड़े-पाले में ठिठुरते हैं और मक्खियों की तरह मरते हैं।... लार्ड कर्जन ने 1901 में यहाँ की व्यक्तिगत आय का अनुमान तीस रु. तक पहुँचाया और 1915 में वह समय था, जब योरोपीय महाभारत ने चीजों का मूल्य बहुत बढ़ा दिया था। 1930 में वही हालत फिर हो गई जो 1901 में थी और हिसाब लगाया जाये तो आज हमारी व्यक्तिगत आय शायद पच्चीस रु. से अधिक न हो, पर आज तक किसी ने किसानों की दशा की ओर ध्यान नहीं दिया और उनकी दशा आज भी वैसी है जो पहले थी। उनके खेती के औजार, साधन, कृषि-विधि, कर्ज, दरिद्रता सब कुछ पूर्ववत् है।... सरकार ने समय-समय पर उनकी रक्षा करने के लिए कानून बनाए हैं, और शायद इस तरह के कानून अब तक और ज्यादा बन गए होते, यदि जमींदारों की ओर से उनका विरोध न हुआ होता। अबकी बार ही छूट के विषय में जमींदारों ने कम रूकावटे नहीं डालीं, लेकिन अनुभव से मालूम हो रहा है कि इस नीति से किसानों का विशेष उपकार नहीं हुआ।"[132] इसी मुद्दे को लेकर गाँधी ने चम्पारण सत्याग्रह और हिंदी क्षेत्र में स्वामी सहजानन्द सरस्वती का आन्दोलन प्रमुख था। इस मुद्दे पर बात करने से पहले हमें अपने हिंदी साहित्य का इतिहास के साथ गद्य साहित्य का इतिहास पर नजर दौड़ा लेनी चाहिए । विधाओं का इतिहास लिखने का प्रयास ऐसे तो हिंदी के कुछ इतिहासकारों ने किया है। परन्तु वह इतिहास केवल सूचनापरक ही दिखता है। मसलन रामचंद्र तिवारी (हिंदी का गद्य साहित्य), गोपाल राय (1.हिंदी कहानी का इतिहास 2. हिंदी उपन्यास का इतिहास), मधुरेश (हिंदी कहानी का विकास)।

132. प्रेमचंद, 'हतभागे किसान', निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका(सम्पा.), प्रेमचंदरचना-संचयन, 2012, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली :775

ये सभी विधा आधारित इतिहास लेखकों ने प्रवृति के मसले पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा निर्धारित साहित्यिक प्रवृति को मुख्य आधार बनाया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने साहित्य इतिहास के उपन्यास-कहानी उपशीर्षक के अंतर्गत लिखा है की "सामजिक उपन्यासों में देश में चलने वाले राष्ट्रीय तथा आर्थिक आन्दोलन का भी आभास बहुत कुछ रहता है। तअल्लुकदारों के अत्याचार, भूखे किसानों की दारुण दशा के बड़े चटकीले चित्र उनमें प्राय: पाए जाते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा केवल यही कहना है कि हमारे निपुण उपन्यासकारों को केवल राजनीतिक दलों द्वारा प्रचारित बातें लेकर ही न चलना चाहिए, वस्तुस्थिति पर अपनी व्यापक दृष्टि भी डालनी चाहिए। उन्हें यह भी देखना चाहिए की अंगरेजी राज्य पर भूमि की उपज या आमदनी पर जीवन निर्वाह करने वाले (किसानों और जमींदारों दोनों) की और नगर के रोजगारियों या महाजनों की परस्पर क्या स्थिति हुई ? उन्हें यह भी देखना चाहिए कि राज कर्मचारियों का इतना बड़ा चक्र ग्रामवासियों के सिर पर ही चला करता है, व्यापारियों का वर्ग उससे प्राय: बचा रहता है। भूमि ही यहाँ सरकारी आय का प्रधान उद्गम बना दी गई है। व्यापार श्रेणियों को यह सुभीता विदेशी व्यापर को फलता फूलता रखने के लिए दिया गया था, जिससे उनकी दशा उन्नत होती आई और भूमि से सम्बन्ध रखने वाले सब वर्गों की – क्या जमींदार, क्या किसान, क्या मजदूर – गिरती गई।"[133] शुक्ल जब यह बात कर रहे हैं तो उनके ज़ेहन में प्रेमचंद युग है। इसके पहले उन्होंने किसानों की स्थिति पर नज़र नहीं दौड़ाई है। जबकि भारतीय सामाजिक इतिहास के साथ हिंदी लोक साहित्य पर अगर हम गौर करें तो ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्थापना के बाद से इस मुल्क के किसानों की स्थिति दयनीय होती गई। सुभाष चन्द्र कुशवाहा ने लिखा है कि "हमारे सामने किसान आन्दोलन के सम्बन्ध में जो जानकारी उपलब्ध है उसके अनुसार ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के बाद अंग्रेजी शासन द्वारा भू-राजस्व की मात्रा अत्यधिक बढ़ा देने से इसकी शुरुआत होती है। 1767 में पूर्वी सिंहभूमि के ढालभूम क्षेत्र में ढाल राजाओं ने फार्ग्यूसन के विरुद्ध युद्ध किया जिसमें बड़ी संख्या में आदिवासी किसानों ने भाग लिया। यह लड़ाई 1777 तक चली। लगान न देने के कारण राज्य को अंग्रेजों ने

[133]आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, हिंदी साहित्य का इतिहास, 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद : 337

नीलाम कर दिया, जिसके कारण 1769 से 1805 तक चुआड़ विद्रोह हुआ। बँगला शब्दकोश में चुआड़ का अर्थ नीच जाति उल्लिखित है जिसे गाली स्वरूप, आदिवासियों के लिए प्रयुक्त किया गया। कैप्टन कैमेक के विरुद्ध 1770-71 में चेरो विद्रोह हुआ, जो पुन: 1810 में भी देखने को मिला। इसी वर्ष भोगता विद्रोह प्रकाश में आया। 1772 -73 में घटवाल और फदिया विद्रोह सुनाई दिया। 1782-1807 तक तमाड़ विद्रोह और 1793 से 1832 तक मुंडा विद्रोह देखने को मिला। पुन: 1819-20 में रुदुकोंता के नेतृत्व में मुंडाओं ने विद्रोह किया। 1793 में तिलक माँझी की अगुवाई में संथालों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया। आदिवासियों की सबसे बड़ी समस्या जमीन और लगान की थी। उनका मानना था कि जंगल को साफ कर उन्होंने जमीन तैयार की है इसलिए जमीन पर उनका हक़ है। इसमें अंग्रेजों को दखल देने का अधिकार नहीं है। इन्ही सब मुद्दों पर मानभूमि के भूमिजों ने 1798 में विद्रोह किया। 1820-21 में सिंहभूमि विद्रोह एक बार फिर प्रकाश में आया।"[134] आचार्य रामचंद्र शुक्ल और सुभाष चन्द्र कुशवाहा के इन उद्धरणों में कालगत अंतर महसूस किया जा सकता है। अब बात उठती है कि समाज और साहित्य में इस तरह के अंतर को कैसे समझा जाये। जबकि साहित्य का विकास सामाजिक विकास के साथ होता है। अगर केवल इसी मुद्दे की करें तो लोक साहित्य में किसानों की दुर्दशा की बात साहित्य से पहले मिलने लगती है। प्रतिबन्धित हिंदी कविताओं में भी 1857 के सन्दर्भ में किसानों की दुर्दशा का उल्लेख मिलता है। प्रतिबन्धित हिंदी कहानियों में रूस की जारशाही के दौर से साम्यवादी दौर में पहुँचने तक की किसानों के दमन की ऐतिहासिक स्थिति को दिखाते हैं। इन कहानियों में शोषक और शोषित को आमने-सामने रखा गया है। उग्र की कहानी 'निहिलिस्ट' में इसे देखा जा सकता है -

"हमारे प्यारे बन्धु किसान,
मरते हाय ! अ-नय के कर से पाते दुःख महान।

[134]उद्धृत द्वारा सुभाष चन्द्र कुशवाहा, - सुभाष चन्द्र कुशवाहा, अवध का किसान विद्रोह: 1920से 1922ई., 2018, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 23

अनियंत्रित शासन है, कारण इसका एक प्रधान।

जब तक यह न मिटेगा तब तक कहीं नहीं कल्याण।

मास्को के हेड पुलिस स्टेशन (कोतवाली) पर बैठे हुए पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने सुना और देखा – कोई युवक उक्त गान को गाता हुआ चला जा रहा है। फ़ौरन चार पुलिस कांस्टेबल दौड़ाए गए। युवक पुलिस सुपरिटेंडेंट के सामने लाया गया।"[135] इसके बाद आगे पुलिस अधिकारी और युवक के बीच गान गाने को लेकर बहस हैं। अंत में पुलिस उसको कैद कर लेती है। इस तरह की अनेक प्रतिबंधित कहनियाँ हैं। इसका मूलकारण उस समय के देशी-विदेशी साहित्यकारों का साहित्य और समाज के प्रति उनका नजरिया है। अगर हम केवल भारत के पड़ोसी देशों की बात करें तो रूस में गोर्की चीन में लूशुन और भारत में प्रेमचंद ऐसे कथाकार थे जो सामाजिक दमन और सामाजिक विकास प्रक्रिया को जनता की स्थितियों से समझते थे। इन तीनों के बारे में राणा प्रताप लिखते हैं कि "गोर्की, प्रेमचंद और लूशुन- तीन महान कलाकार, तीन साहित्यिक विभूतियाँ और युग-प्रतिभाएँ ! तीनों के बचपन थोड़ी-बहुत भिन्नता के साथ यकसाँ। अध्ययन, मनन और चिंतन की सीढ़ियों को चढना और साहित्य के लेखन में प्रवृत होना, लगभग यकसाँ। देखने में भी थोड़ी-बहुत भिन्नता के साथ यकसाँ। हालाँकि गोर्की उम्र में भी, कद में भी प्रेमचंद और लूशुन से 12-13 साल बड़े थे।

देश-प्रेम, आज़ादी और क्रांति की सेवा का ध्येय तीनों का एक था। तीनों लेखकों ने अपने-अपने देश की जनता को बेइंतहा प्यार किया। बदले में तीनों लेखकों को भी जनता का बहुत प्यार और सम्मान मिला।"[136] यही जनता का प्यार और स्नेह शासक के लिए खतरनाक था।

हिंदी साहित्य में तीव्र या मद्धिम अंग्रेजी दमन का जिक्र तो मिलता है। परन्तु दमनात्मक काले कानूनों का कोई विरोध नहीं मिलता है। लेकिन प्रतिबन्धित हिंदी कहानीकारों ने इसको बखूबी उठाया है।

---

[135]. पाण्डेयबेचन शर्मा 'उग्र', 'निहिलिस्ट'. रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, 1999, राधाकृष्ण, नई दिल्ली : 70.

[136]राणा प्रताप,'नयी पीढ़ी के लिए गोर्की प्रेमचंद लू शुन', 2018, गार्गी प्रकाशन, दिल्ली: 149

जिसके कारण इन्हें प्रतिबन्ध का भी सामना करना पड़ा। इसीलिए ग्राहम शॉ और मैरी लॉयड की किताब की भूमिका लिखते हुए बी.सी.ब्लूमफील्ड ने लिखा है कि "संपादक बताते हैं कि अंग्रेजों ने आम तौर पर दो मुख्य कारणों से प्रकाशन पर प्रतिबंध लगाया : पहले ब्रिटिश प्रशासन की आलोचना को बढ़ावा देना और दूसरा धार्मिक और / या नस्लीय संघर्ष को बढ़ावा देना। नैतिक या यौन कारणों से प्रकाशन पर अभियोग लगभग कभी नहीं लगाया गया। इस तथ्य के बावजूद कि इस तरह के कई प्रकाशन भारत में उत्पन्न हुए थे।"[137] जिस तरह से साम्प्रदायिकता और लैंगिकता अप्रतिबंधित साहित्य के विषय-वस्तु में आज़ादी के बाद जुड़ती है। उसी तरह से मुखर रूप से शासक की आलोचना भी कम ही देखने को मिलती है। प्रतिबंधित हिंदी कहानियों के लेखकों ने अपनी कहानियों में इसको प्रमुखता दी है। "मास्टर साहब धीर-गंभीर गति से आगे बढ़ रहे थे। इस समय उन्होंने हजामत बनवाई थी। वे अपने निजी वस्त्र पहने थे। दूर से देखने में दुर्बल होने के सिवा और कोई अंतर न दिखता था वे मानो किसी गहन विषय को सोचते हुए व्याख्यान देने रंग-मंच पर आ रहे थे। उनके आगे खुली पुस्तक हाथ में लिए पादरी कुछ वाक्य उच्चारण कर रहा था। उनके पीछे जैसा अपने पूरी पोशाक में थे। उनकी बगल में मजिस्ट्रेट और डॉक्टर भी चल रहे थे। क्षण भर तख्ते पर खड़े रहने के बाद जल्लाद ने उनके गले में रस्सी डाल दी। पादरी ने कहा – "मैं प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर तुम्हारी आत्मा को शांति प्रदान करे"

मास्टर साहब ने कहा "चुप रहो, मैं प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर मेरी आत्मा को ज्वलंत अशांति दे, जो तब तक न मिटे जब तक मेरा देश स्वाधीन न हो जाये और मेरे देश का प्रत्येक व्यक्ति शांति न प्राप्त कर ले।" [138] यह कहानी आचार्य चतुरसेन शास्त्री की है। जिसमें पराधीनता से मुक्ति के लिए

[137] The editors show that the British normally banned publication for two main reasons: first they promoted criticism of the British administration; and second, they promoted religious and/ or racial strife. The proscription of publication for moral or sexual reasons seems almost never to have been the case, in spite of the fact that a number of such publications are known to have originated in India.", *From preface written by B.C. Bloomfield, Graham Shaw and Mary Lloyd, Publications proscribed by the Government of India, 1985, The British Library, London*

[138] आचार्य चतुरसेनशास्त्री, 'फंदा'. रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, 1999, राधाकृष्ण, नई दिल्ली : 269

अंतिम दम तक लड़ने की जिजीविषा जो परिचय पात्र के माध्यम से करवाया है। वह उनके समकालीन अप्रतिबंधित कहानियों के कहानीकारों की बस की बात नहीं दिखती। इस तरह की – 'फांसी' (विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक), 'विद्रोही के चरणों' पर (जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'), 'बलिदान' (मुनीश्वरदत्त अवस्थी), इत्यादि कहानियां हैं।

इरफ़ान हबीब ने पी.सी.जोशी और कार्लमार्क्स के हवाले से लिखा है कि "1857 पर पी.सी.जोशी द्वारा सम्पादित ग्रन्थ में, तलमीजखाल्दून ने सुव्यवस्थित दस्तावेजी साक्ष्यों से युक्त एक लेख में यह तर्क पेश किया है कि इस विद्रोह ने "देशी सामंतशाही तथा विदेशी साम्राज्यवाद के खिलाफ किसान युद्ध" का रूप ले लिया था और इस तरह यह सब से बढ़कर एक सामंत विरोधी आन्दोलन था और उसके बाद ही एक साम्राज्यवाद विरोधी विद्रोह। इस सिलसिले में हम पी.सी.जोशी से सहमत होंगे कि यह तर्क अनुचित तरीके से 1857 की बगावत के उपनिवेश विरोधी चरित्र को कमजोर करता है और बहुत अयथार्थवादी तरीके से भूस्वामी वर्गों को विद्रोहियों की कतारों से बाहर कर देता है। स्वाभाविक रूप से यह, जैसा कि हम पहले ही देख पाए हैं, 1857 के विद्रोह मार्क्स के आकलन के भी अनुरूप नहीं है। मार्क्स के लिए यह "एक क्रांति" थी, "एक राष्ट्रीय क्रांति", जिसमें किसानों के अलावा जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों के भी कुछ हिस्से थे।[139]" यहाँ 1857 का विद्रोह सामन्ती और साम्राज्यवादी विद्रोह दोनों एक साथ था या केवल साम्राज्यवादी विद्रोह ही था। कुल मिलाकर मूल बात यहाँ ऐतिहासिक नजरिये की है कि किसी विद्रोह को कैसे देखा जा रहा है। लेकिन अगर हम उस दौर के या उस विद्रोह से सम्बन्धी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से इस विद्रोह को समझने की कोशिश करेंगे तो स्पष्ट होगा कि साम्राज्य और सामंत दोनों ही से जनता मुक्ति चाहती थी। इसीलिए यह विद्रोह जनमानस में व्यापक रूप से फैला। प्रतिबंधित कहानियों में एक कहानी है - 'बागी की बेटी' जो 1857 पर आधारित है। मुनीश्वरदत्त अवस्थी इस कहानी में दिखलाते हैं कि एक बागी जो देश को सामन्ती

[139]. इरफ़ान हबीब, 'राष्ट्रीय विद्रोह की कहानी', मुरली मनोहर प्रसाद सिंह और चंचल चौहान(सम्पा.), 1857 इतिहास कला साहित्य, 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 27

और साम्राज्यवादी जड़ता से मुक्ति दिलाने के क्रम में शहीद होता है। उसके इस अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए उसकी बेटी ने कमर कस ली है। "वे सन 1857के दिन थे, जबकि संसार के पूर्वी भाग – भारत में स्वतन्त्रता की आभा – सी निकल रही थी। गुलामी के अँधेरे में वर्षों रहते हुए प्राणियों के प्राण पर बन आई थी और चमकती हुई तलवारें आशा की ओर इशारा कर रही थीं। रक्त की धारा का प्रतिबिम्ब आकाश में अरुण का रूप धारण कर रहा था। इस नवीन युग के प्रमुख पात्र धुंधपंत नाना साहब पेशवा का कानपुर और उसके आस-पास अधिकार हो चुका था। बिठूर उसकी राजधानी थी। वीर सेनापति तात्या टोपे ने झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई की सहायता से कालपी के मैदान में लेफ्टिनेंट बुकर को मैदान से भगा दिया। बौकर के सहायक फ्रेनर साहब तथा उनके उन्तीस साथी गिरफ्तार करके बिठुर भेजे गए थे। कानपुर के युद्ध में पकड़े गए सैनिकों के साथ कर्नल फ्रेनर अपनी आयु के दिन बिठुर जेल में व्यतीत कर रहे थे। उस मरहठे सरदार ने फ्रेनर से और प्रश्न नहीं किये। वह उदासीन की भाँति जेल के बाहर हो गया।"[140] इस कहानी में प्राणी जगत की मुक्ति के लिए तमाम उद्दम किये जा रहे हैं। इसके अलावा प्रतिबंधित हिन्दी कहानियां और इसके लेखक दोनों ही समाज में मौजूद किसी भी तरह की पराधीनता से मुक्ति की लालसा रखते हैं।

जिस तरह ऊपर पी.सी.जोशी के हवाले से 1857 की क्रांति को सामन्ती और साम्राज्यवादी दोनों से ही मुक्ति की बात की गई है। उसी प्रकार प्रतिबंधित हिंदी कहानियों का अध्ययन करने से ऐसा महसूस होता है कि 1857 के प्रथम जन आदोलन के साथ सम्पूर्ण स्वतन्त्रता आन्दोलन के केंद्र में भी सामन्ती और साम्राज्यवादी दोनों ही जड़ताओं के खिलाफ आन्दोलन था। कम-से-कम प्रतिबन्धित हिंदी कहानियों के गहन अध्ययन से यह बात सिद्ध हो जाती है। इसके अध्ययन और साहित्य के साथ सामाजिक इतिहास में भी राजनैतिक, सामाजिक इतिहास में वृद्धि की गुंजाइश बनेगी। हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रतिबंधित कालगत और विषयगत दोनों ही स्तर पर पुनर्रचना की सम्भावना बनेगी। इस

[140]मुनीश्वरदत्तअवस्थी, 'बागी की बेटी'. रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, 1999, राधाकृष्ण, नई दिल्ली : 132

प्रकार प्रतिबंधित हिंदी कहानियों को हिंदी साहित्य में जगह देने से हिंदी साहित्य के इतिहास पर तो असर पड़ेगा ही साथ ही कहानी विधा का इतिहास भी समृद्ध होगा।

प्रेमचंद और उनकी प्रतिबंधित कहानियाँ

हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंद को एक मानक के रूप में स्वीकार्यता है। उनका लिखा और उस परम्परा से जुड़ जाने पर आज भी हिन्दी कथाकार गौरवान्वित महूसस करते हैं। यही हाल हिन्दी आलोचना और आलोचकों का है। लेकिन प्रेमचन्द के सम्पूर्ण लेखन को पकड़ पाना अभी भी हिन्दी आलोचकों की पकड़ के बाहर महसूस होता है। यदि प्रेमचंद से सम्बंधित आलोचना पर हम गौर करें तो हमें यह समझाते आलोचक नहीं थकते हैं कि, प्रेमचंद किसानों, मजदूरों, स्त्रियों की आवाज़ थे, आदि-आदि। लेकिन यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात छूट जाती है कि इन सबके साथ प्रेमचन्द वाणी की स्वतन्त्रता के प्रबल पक्षधर भी थे। इसलिए उनके दो कहानी संग्रह सोजे वतन (1908) और समर-यात्रा व अन्य कहानियाँ (1932) को भारत में अंग्रेजी सरकार ने जब्त कर लिया। जिन कहानियों में अंग्रेजी सरकार और देशी सामंतवादी प्रवृति की कठोरतम आलोचना मौजूद है। इसी आलोचना पद्धति के बारे में प्रेमचंद खुद लिखते हैं कि "साहित्य में समालोचना का जो महत्व है, उसको बयान करने की जरूरत नहीं है। सत् साहित्य का निर्माण बहुत गम्भीर समालोचना पर ही मुनहसर है। योरोप में इस युग को समालोचना का युग कहते हैं। वहाँ प्रतिवर्ष सैकड़ों पुस्तकें केवल समालोचना के विषय की निकलती रहती हैं, यहाँ तक कि ऐसे ग्रन्थों का प्रचार, प्रभाव और स्थान क्रियात्मक रचनाओं से किसी प्रकार घटकर नहीं है। कितने ही पत्रों और पत्रिकाओं में स्थायी रूप से आलोचनाएँ निकलती रहती हैं; लेकिन हिंदी में या तो समालोचना होती ही नहीं या होती है तो द्वेष या झूठी प्रशंसा से भरी हुई अथवा ऊपरी, उथली और बहिर्मुखी। ऐसे समालोचक बहुत कम हैं जो किसी रचना की तह में डूबकर उसका तात्विक, मनोवैज्ञानिक विवेचन कर सकें। हाँ, कभी-कभी प्राचीन ग्रन्थों की आलोचना नजर आ जाती है, जिसे सही मानों में समालोचना कह सकते हैं, मगर हम तो इसे साहित्यिक मुर्दापरस्ती ही कहेंगे। प्राचीन कवियों और साहित्याचार्यों का यशोगान हमारा धर्म है, लेकिन जो प्राणी केवल अतीत में रहे, पुरानी सम्पदा का ही स्वप्न देखता रहे और अपने सामने आने वाली बातों की तरफ से आँखें बंद कर ले, वह कभी अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है, इसमें हमें संदेह है। पुरानों ने जो कुछ लिखा, सोचा और किया,

वह पुरानी दशाओं और परिस्थितियों के अधीन किया। नए जो कुछ लिखते, सोचते या कहते हैं, वह वर्तमान परिस्थितियों के अधीन करते हैं इनकी रचनाओं में वही भावनाएं और आकांक्षाएँ होती हैं, जिनसे वर्तमान युग आंदोलित हो रहा है।"[141] यहाँ सबसे पहली बात कहने की जरुरत है कि अगर हम प्रेमचंद के सम्पूर्ण लेखन को पढ़ें और विचारें, और उसी के बनिस्वत उनके आलोचकों को पढ़े और विचारें तो ऐसा लगता है कि प्रेमचंद स्वयं के सबसे अच्छे आलोचक थे। इस निबंध में प्रेमचंद देश की बदहाली और साहित्यिक सन्दर्भ के तरफ इशारा करते हैं। यह बात किसी से छिपी नहीं थी कि सामन्ती और विदेशी साम्राज्यवाद की सांठगांठ से उत्पन्न समस्याओं की वजह से भारतीय समाज और साहित्य किस हद तक प्रभावित था। इसीलिए प्रेमचन्द की प्रतिबंधित कहानियां देशी और विदेशी दोनों तरह के शासकों के दमन से उत्पन्न समस्याओं को दिखलाती हैं।

प्रेमचंद की प्रथम कहानी संग्रह 'सोज़े वतन' जिसे उन्होंने 1907-08 में लिखा था। इसमें पाँच कहानियां संकलित हैं। 1. दुनिया का सबसे अनमोल रतन, 2. सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम, 3. यही मेरा वतन है, 4. शेख मखमूर, 5. शोक का पुरस्कार। दूसरा प्रतिबन्धित कहानी संग्रह समर-यात्रा व अन्य कहानियाँ जिसे उन्होंने 1929 से 32 के दौरान लिखी थी। इसमें 12 कहानियां संकलित हैं। जिनके नाम इस प्रकार है – 1. कानूनी कुमार, 2. जुलूस, 3. पत्नी से पति, 4. समर-यात्रा, 5. शराब की दुकान, 6. मैकू,7. आहुति, 8. जेल, 9. लांछन, 10. होली का उपहार, 11. ठाकुर का कुआँ, 12. अनुभव। जैसा की इन दोनों कहानी संग्रहों के नाम में ही कहानियों की विषय-वस्तु निहित है। प्रथम कहानी संग्रह 'सोज़े वतन' मतलब देश का कष्ट और दूसरे कहानी संग्रह 'समर यात्रा' मतलब लड़ाई का समय। इन कहानी संग्रहों के माध्यम प्रेमचंद प्रश्न करते दिखते हैं कि देश के कष्ट के कारण क्या हैं, लड़ाई किसके लिए और किस लिए ? जिसका जवाब भी वह इन कहानियों में देते हैं, और अपने निबंधों के माध्यम से भी देते हैं।

[141] प्रेमचंद, 'साहित्य में समालोचना' निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका, प्रेमचंद रचना संचयन, साहित्य अकादेमी 2012 नयी दिल्ली, पृष्ठ 738

सोज़ेवतन कहानी संग्रह की प्रथम कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन है। इस कहानी के अंत में प्रेमचंद कहते हैं "खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।"[142] यह कथन ही इस कहानी को खोलती मालूम पड़ती है। इससे पहले कहानी में यह प्रश्न रखा जाता है कि, दुनिया की सबसे अनमोल चीज क्या है ? जिसके खोज में दिलफिगार अपने प्रेमिका की मांग पर निकलता है, लेकिन वह द्वंद में रहता है कि, आखिर कौन सी चीज है जो अनमोल है। वह सोचता है "मैं घड़े बराबर मोती की खोज में जा सकता हूँ। मैं समुंदर का गीत, पत्त्थर का दिल, मौत की आवाज़ और इनसे भी ज्यादा बेनिशान चीजों की तलाश में कमर कस सकता हूँ। मगर दुनिया की सबसे अनमोल चीज ! यह मेरी कल्पना की उड़ान से बहुत ऊपर है।"[143] इसी द्वंद को दूर करने के लिए प्रेमचंद कुछ निबंध लिखते हैं जैसे 'स्वराज्य के फ़ायदे' और 'बच्चों को स्वाधीन बनाओ'। स्वराज्य के फायदे में प्रेमचंद इस विषय को एकदम खोल कर रख देते हैं कि स्वाधीनता दुनिया का अनमोल रतन क्यों है। वह लिखते हैं "आज तो हमारा देश संसार के सबसे कंगाल देशों में है, जहाँ के निवासियों को साल में नौ महीने आधे पेट भोजन करके निर्वाह करना पड़ता है। इसका कारण कुछ तो यह है कि भूमि इतनी उर्वरा नहीं रही, लेकिन मुख्य कारण हमारी पराधीनता है।"[144] संग्रह की दूसरी कहानी 'सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम है'। इस कहानी में प्रेमचंद इटली के स्वतन्त्रता सेनानी मैजिनी और उसकी प्रेमिका मैग्डलीन के संवाद के माध्यम से व्यक्तिगत प्रेम के लिए सांसारिक और देश-प्रेम या आज़ादी का क्या महत्व है। उसको दर्शाने की कोशिश करते हैं। तीसरी कहानी 'यही मेरा वतन है' में प्रेमचंद दिखलाने की कोशिश करते हैं कि गुलामी की वजह से अपना प्यारा वतन कैसे बदल गया है और इसको देख कर कैसा महसूस होता है। वह लिखते है "उस वक्त भी मेरे जिगर में एक कांटा-सा

---

142 प्रेमचंद,'सोज़े वतन', बलराम अग्रवाल(सं),'सोजे वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियां' (सं-2015), साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ:25

143 प्रेमचंद,'सोज़े वतन', बलराम अग्रवाल(सं),'सोजे वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियां' (सं-2015), साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ:21

144 प्रेमचंद, 'साहित्य में समालोचना' निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका, प्रेमचंद रचना संचयन, साहित्य अकादेमी (2012) नयी दिल्ली, पृष्ठ 689

खटकता था और वह कांटा यह था कि मैं अपने देश से निर्वासित हूँ। यह देश मेरा नहीं है, मैं इस देश का नहीं हूँ। धन मेरा था, बीवी मेरी थी, लड़के मेरे थे और जायदादें मेरी थीं, मगर जाने क्यों मुझे रह-रहकर अपनी मातृभूमि के टूटे-फूटे झोंपड़े, चार-छ: बीघा जमीन और बचपन के लंगोटिया-यारों की याद सताया करती थी और अकसर खुशियों की धूमधाम में भी यह खयाल चुटकी लिया करता कि काश, अपने देश में होता !"[145] इस बदहाली को प्रेमचंद की ऊपर उद्धृत कथन से भी समझा जा सकता है। प्रेमचंद देश की बदहाली का कारण विदेशी शासन द्वारा किए गए लूट को मुख्य वजह मानते है। इस कहानी में प्रेमचंद देश की संस्कृति और समृद्धि को याद करते हुए पश्चताप करते है। 'शेख मखमूर' कहानी इस संग्रह की अगली कहानी है। इसके शुरुआत में ही प्रेमचंद लिखते हैं "मुल्के जन्नतनिशा के इतिहास में वह बहुत अँधेरा वक्त था जब शाह किशवर की फतहों की बाढ़ बड़े जोर-शोर उस पर आई। सारा देश तबाह हो गया। आजादी की इमारतें ढह गईं और जानोमाल के लाले पड़ गए।"[146] अंग्रेजी सरकार के शासन से पहले भारत की एकता का मार्मिक चित्रण इस कहानी में करते हुए प्रेमचंद दिखते हैं। साथ ही इस देश के युवाओं को इसकी जिम्मेदारी का एहसास कराते हैं। अंतिम कहानी 'शोक का पुरस्कार' है। इस कहानी में युवाओं को केंद्र में रखकर लिखते है "मैं नौजवान था, सुन्दर था, स्वस्थ था, रूपये-पैसे की न मुझे इच्छा थी और न कुछ कमी, माँ-बाप बहुत कुछ छोड़ गए थे। दुनिया में सच्ची ख़ुशी पाने के लिए जिन चीजों की जरुरत है वह सब मुझे प्राप्त थीं।"[147] लेकिन पराधीनता और पश्चिम के प्रति आकर्षित होने की वजह से सब कुछ खत्म ही गया है। प्रेमचंद का मकसद इस कहानी संग्रह के माध्यम से यह बताने का है कि आज़ादी का क्या निहतार्थ है, और युवाओं के लिए आज़ादी क्यों महवपूर्ण है ? अपने सोजे- वतन कहानी संग्रह के सम्बन्ध में प्रेमचंद पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ बातचीत में कहते हैं "मैंने 1907 में गल्प लिखना शुरू किया। सबसे पहले 1908 में

[145] प्रेमचंद,'सोज़े वतन', बलराम अग्रवाल(सं),'सोजे वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियां' (सं-2015), साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ:36

[146] प्रेमचंद,'सोज़े वतन', बलराम अग्रवाल(सं),'सोजे वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियां' (सं-2015), साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ:40

[147] वहीं पृष्ट :53

मेरा 'सोजे-वतन', जो पाँच कहानियों का संग्रह था, ज़माना प्रेस से निकला था, पर उसे हमीदपुर के कलेक्टर ने मुझसे जलवा डाला था। उनके ख्याल में वह विद्रोहात्मक था, हालाँकि तब से उसका अनुवाद कई संग्रहों पत्रिकाओं में निकल चुका है।"[148] इससे सम्बंधित पहली बात यह है कि इसी कहानी संग्रह के माध्यम से प्रेमचंद ने कहानी लेखन का आरम्भ किया। क्योंकि कहानी रूप के स्तर पर छोटी होती है और सम्प्रेषण भी उसका गहरा होता है। लेकिन यहाँ सर्वाधिक सोचने वाली बात यह है कि प्रेमचंद खुद ही अपने संग्रह को कलेक्टर के दबाव में जला डाला था। यह बात किसी रचनाकार और उसके जीवन के लिए कैसी हो सकती इसका अंदाजा लगाना आज भी मुश्किल है।

दूसरी कहानी संग्रह 'समर-यात्रा व अन्य कहानियाँ' में प्रथम कहानी कानूनी कुमार है। इस कहानी में प्रेमचंद तत्कालीन सरकार और कानूनी कुमार नामक पात्र से देश की स्थिति पर बहस करवाते हैं। कानूनी कुमार कहता है "कानूनी कुमार – (आप-ही-आप) देश की दशा कितनी खराब होती चली जाती है। गवर्नमेंट कुछ नहीं करती। बस दावतें खाना और मौज उड़ाना उसका काम है। (पार्क की ओर देखकर) आह ! यह कोमल कुमार सिगरेट पी रहे हैं। "शोक! महाशोक! कोई कुछ नहीं कहता, कोई रोकने की कोशिश भी नहीं करता।"[149] उन्होंने इस कहानी को देश में स्त्रियों के साथ अत्याचार और उनकी दुर्दशा पर केन्द्रित करते हैं। वह इसके लिए धर्म को भी जिम्म्मेदार मानते है। जुलूस कहानी में स्वराज्य के लिए रणनीतियों को लेकर अन्तर्द्वन्द है। इस कहानी में यह दर्शाने की कोशिश की गई है कि, जन-मानस किस तरह से अंग्रेजों से लड़-लड़ कर थक गई है, और अब जुलूस पर से भरोसा उठ गया है। लेकिन वहीं दूसरे पात्र से प्रेमचंद कहलवाते हैं कि जो देशी लोग अंग्रेजों की सरपरस्ती करते हैं। उनके वजह से यह स्थिति हुई है। कहानी में आगे साम्प्रदायिक घटना और स्त्रियों को जुलूस में बढ़

---

[148] साक्षात्कार पं बनारसीदास चतुर्वेदी का पत्र साक्षात्कार, निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका, प्रेमचंद रचना संचयन, साहित्य अकादेमी (2012) नयी दिल्ली, पृष्ठ 1004

[149] प्रेमचंद, 'समर-यात्रा व अन्य कहानियां', बलराम अग्रवाल(सं),'सोजे वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियां' (सं-2015), साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ:63

चढ़ कर भाग लेना दिखाया गया है। हमें यहाँ याद रहना चाहिए की प्रेमचंद ने इन सब मसलों को अपने कथा, कहानियों में शामिल तो किया ही साथ-ही साथ इन मसलों पर 'हिन्दू मुस्लिम एकता' और 'नारी जाति के अधिकार' जैसे स्वतन्त्र लेख लिखाकर भी जन मानस तक पहुँचाने की कोशिश किया। तीसरी कहानी महात्मा गाँधी के स्वदेशी आन्दोलन से प्रेरित है। इस कहानी में प्रेमचंद ने बढ़िया रूपक गढ़ा है। इसमें दो मुख्य पात्र पत्नी और पति का संवाद स्वदेशी चीजों के इस्तेमाल को लेकर है। जहाँ पत्नी स्वदेशी चीजों के इस्तेमाल के लिए लालायित है, वहीं पति विदेशी चीजों से आग्रहित है। प्रेमचंद लिखते हैं "मिस्टर सेठ को सभी हिन्दुस्तानी चीजों से नफरत थी और उनकी सुंदरी पत्नी गोदावरी को सभी विदेशी चीजों से चिढ़ ! मगर धैर्य और विनय भारत की देवियों का आभूषण है। गोदावरी दिल पर हजार जब्र करके पति की लायी हुई विदेशी चीजों का व्यवहार करती थी, हालाँकि भीतर-ही-भीतर उसका हृदय अपनी परवशता पर रोता था। वह जिस वक्त अपने छज्जे पर खड़ी होकर सड़क पर निगाह दौड़ाती और कितनी ही महिलाओं को खद्दर की साड़ियाँ पहने गर्व से सिर उठाये चलते देखती, तो उसके भीतर की वेदना एक ठंडी आह बनकर निकल जाती थी। उसे ऐसा मालूम होता था कि मुझसे ज्यादा बदनसीब औरत संसार में नहीं है। मैं अपने स्वदेशवासियों की इतनी-भी सेवा नहीं कर सकती।"[150] कहानी में आगे गोदावरी अपनी आज़ादी के लिए लड़ती है और स्वदेशी चीजों को इस्तेमाल करती है और स्वदेशी आन्दोलन में भाग भी लेती है। इसके अलावा कहानी के बीच-बीच में कांग्रेस की स्वाधीनता आन्दोलन का चित्रण है। अगली कहानी समर-यात्रा है। इस कहानी में प्रेमचंद बूढ़ी पात्र के माध्यम से स्वत्रंता की पुकार करवाते नजर आते है। कहानी की शुरुआत में महिला अपनी बूढ़ेपन को कोसती है कि देश की आज़ादी के लिए स्वतन्त्रता सेनानियों का इतना बड़ा मेला लगा हुआ है, और अपनी इस जर्जर अवस्था की वजह से, मैं उसमें सहयोग नहीं कर पा रही हूँ। लेकिन दूसरे ही क्षण बुढ़िया उठती है और सभा में जाकर नाच-गान करती है। इस कहानी में बीच में कविता की पंक्तियाँ

[150] प्रेमचंद, 'समर-यात्रा व अन्य कहानियां', बलराम अग्रवाल(सं),'सोजे वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियां' (सं-2015), साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ:81

भी हैं। जिसके साथ कहानी आगे बढती रहती है। आगे अंग्रेजी दमन का जिक्र है। इस सन्दर्भ में वह लिखते हैं "सहसा नोहरी ने चिल्लाकर कहा- अब सच सब जने खड़े क्यों पछता रहे हो ? देख ली अपनी दुर्दशा, या अभी कुछ बाकी है ! आज तुमने देख लिया न कि हमारे ऊपर कानून से नहीं लाठी से राज हो रहा !"[151] अगली कहानी 'शराब की दुकान' है। जिसमें शुरुआत में शराब की दुकान के आस-पास की शराबियों की मनोदशा का वर्णन है। कहानी में आगे एक महिला कांग्रेस कार्यकर्ता की शराब की दुकान बंद करवाने से सम्बन्धी बहस है। जिसमें यह प्रस्ताव रखा जाता है कि, महिलाओं को शराब की दुकान और वहाँ मौजूद शराबियों के बीच जाना असुरक्षित है। लेकिन महिला कांग्रेस कार्यकर्ता पिकेटिंग की जिद्द पर अड़ी हुई है, और महात्मा गाँधी की बातों का हवाल देकर अपनी बात पुष्ट करती है। एक प्रसंग द्रष्टव्य है-

"जयराम ने प्रसन्न होकर कहा –मैं सच्चे ह्दय से आपको धन्यवाद देता हूँ।

मिसेज सक्सेना ने निराश होकर कहा – महाशय जयराम, आपने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है और मैं इसे कभी क्षमा न करूँगी। आप लोग ने इस बात का आज नया परिचय दे दिया कि पुरुषों के अधीन स्त्रियाँ अपने देश की सेवा भी नहीं कर सकतीं।"[152] कहानी में इस कथन से पहले भी मिसेज सक्सेना नामक महिला पात्र से प्रेमचंद भारत की तत्कालीन पितृसत्तामक सोच को कहलवाते हैं। और इस उद्धरण के माध्यम से प्रेमचंद देश की स्वधीनता की लड़ाई में स्त्रियों की भागीदारी की जरुरत को भी महसूस करवाते हैं। अगली कहानी मैकू में भी शराब और नशे की लत की वजह से स्वाधीनता आन्दोलन में आ रही रुकावटों का वर्णन है। कहानी में आगे तत्कालीन पुलिस व्यवस्था और शराबियों का सम्बन्ध को भी दिखलाते हैं। 'आहुति' कहानी विश्वविद्यालय में दो छात्र एक छात्रा की मनोदशा

---

[151] प्रेमचंद, 'समर-यात्रा व अन्य कहानियां', बलराम अग्रवाल(सं),'सोजे वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियां' (सं-2015), साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ:91

[152] प्रेमचंद, 'समर-यात्रा व अन्य कहानियां', बलराम अग्रवाल(सं),'सोजे वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियां' (सं-2015), साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ:105

से शुरू होती है। जिसमें आनंद पैसेवाला रहता है। जो विश्वम्भर को पढ़ने लिखने में मदद करता है और करना भी चाहता है। लेकिन विश्वम्भर का मन पढ़ाई-लिखाई में नहीं लगती। दूसरे तरफ आनंद की मानसिक आधिपत्य से भी वह परेशान रहता है। लेकिन उस आधिपत्य को तवज्जो न दे कर देश की पराधीनता से ज्यादा परेशान रहता है। एक दिन वह लिखता है –

"प्रिय, आनंद,

मैं जानता हूँ कि मैं जो कुछ करने जा रहा हूँ वह मेरे लिए हितकर नहीं है; पर न जाने कौन-सी शक्ति मुझे खींचे लिए जा रही है। मैं जाना नहीं चाहता, पर जाता हूँ, उसी तरह जैसे आदमी मरना नहीं चाहता, पर मरता है; रोना नहीं चाहता, पर रोता है। जब सभी लोग, जिन पर हमारी भक्ति है, ओखली में अपना सिर डाल चुके थे, तो मेरे लिए भी अब कोई दूसरा मार्ग नहीं है। मैं अब और अपनी आत्मा को धोखा नहीं दे सकता। यह इज्जत का सवाल है, और इज्जत किसी तरह का समझौता (Compromise) नहीं कर सकती।"[153] इस पत्र से आनंद को बहुत गुस्सा आता है वह रूपमणि के पास जाता है और रूपमणि भागे-भागे उसको रोकने के लिए कांग्रेस दफ्तर जाती है तब वहां से भी विश्वम्भर अपने कार्यस्थल के लिए निकल चुका होता है। वहाँ से रूपमणि भागी-भागी रेलवे स्टेशन पहुंचती है। जहाँ पर विश्वंभर उसे मिलता है और देश की युवाओं और उनकी आरामपरस्ती पर उन दोनों के बीच बहस होती है, और रूपमणि उसके तर्कों से सहमत होती है। उसके साथ काम के लिए निकल जाती है, और आनद को धिक्कारती है कि कैसा समझौतापरस्त   युवा है। जो देश पर आई भयंकर विपत्ति को भी नहीं समझता और अपने पढ़ाई-लिखाई का दम्भ भरा करता है। लेकिन इस लड़ाई में विश्वम्भर अपनी आहुति देता है। जेल कहानी में जेल में स्त्रियों की दशा के साथ देश में किसानों की स्थिति और पुलिस का दमन का वर्णन है। अगली कहानी लांछन है। यह कहानी एक स्त्री के मनोदशा के आस-पास घुमती है। स्त्री को देश की पराधीनता की चिंता सताए जाती है, लेकिन उसका पति उसको कैद करके रखता है। लेकिन

---

[153] प्रेमचंद, 'समर-यात्रा व अन्य कहानियां', बलराम अग्रवाल(सं),'सोजे वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियां' (सं-2015), साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ:122

स्त्री देश की स्थिति जानने के लिए अपने घर में काम करने वाली से बातचीत करती रहती है। इससे उसके पति को दिक्कत होती है, और काम वाली को काम से निकल देता है। फिर भी उसकी पत्नी नहीं मानती है और एक भिखारी से बातचीत करना शुरू करती है और इससे उसके पति को शक होता है। उनके बीच झगड़ा होता है। जिससे परेशान होकर पत्नी घर छोड़कर चली जाती है। 'होली का त्यौहार' के माध्यम से प्रेमचंद अपने देश की देशज संस्कृति को दिखलाने की कोशिश करते है। इस कहानी की शुरुआत होली के वर्णन से होती है। जिसके लिए एक पात्र होली के अवसर पर अपनी पत्नी के लिए साड़ी उपहार देना चाहता है, लेकिन वह साड़ी खद्दर का नहीं होता है। एक तरफ देश की गुलामी से मुक्त कराने के लिए विलायती वस्तुओं का प्रयोग महात्मा गाँधी ने वर्जित किया है। वहीं दूसरी तरफ अपने ही देश के वासी कैसे विलायती कपड़े पहनना चाहते हैं। इस पर प्रेमचंद व्यंग्य करते नजर आते हैं।

'ठाकुर का कुआँ' कहानी का जिक्र ऊपर किया गया है। प्रेमचंद की प्रतिबन्धित कहानियों का अध्ययन और विचार करने पर हमें भारत में साम्राज्यवादी दौर में दमन का इतिहास तो पाते ही हैं परन्तु प्रेमचंद अपनी कहानियों के माध्यम से यह भी दिखलाने की कोशिश करते हैं कि कैसे भारतीय सामन्तवाद और पितृसत्ता एकसाथ मिलकर भारतीय समाज का दमन कर रहा था और है।

पाण्डेय बेचन शर्मा ‘उग्र’ की प्रतिबंधित कहानियाँ

पाण्डेय बेचन शर्मा ‘उग्र’ हिन्दी साहित्य के लिए जाना पहचान नाम है, लेकिन हिंदी आलोचना और इतिहास में उन्हें ‘अपनी खबर’ और ‘घासलेटी साहित्य’ तक ही सीमित करने की कोशिश की गई है। विधाओं से सम्बंधित इतिहास केन्द्रित पुस्तकों में उग्र का जिक्र तक नहीं मिलता। उग्र प्रेमचंद के समकालीन थे। इन्होंने कहानी उपन्यास समेत साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य किया था। इनके बारे में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि “पाण्डेय बेचन शर्मा ‘उग्र’ हिन्दी के ऐसे लेखक हैं जिनके विचार और लेखन में साम्राज्यवाद विरोध प्रखर रूप से मौजूद है। भाव के रूप में साम्राज्यवाद विरोध उनके मन में पहले से था। लेकिन साम्राज्यवाद विरोधी सोच, चेतना और रचनाशीलता का विकास बाद में हुआ जिसकी अभिव्यक्ति उनकी अनेक रचनाओं में हुई है। उन्होंने ‘उग्र’ उपनाम उसी साम्राज्यवाद विरोध के भाव के प्रभाव में रखा था।”[154] उग्र के समय के भारतीय इतिहास और साहित्य में समाज भयंकर रूप से प्रताड़ित था। इसके लिए उस समय के संवेदनशील रचनाकार उतनी ही तीव्रता से मुठभेड़ कर रहे थे। उग्र भी पत्रकारिता और अपने साहित्य के माध्यम से साम्राज्यवादी शासन पद्धति की पोल खोल रहे थे। इसलिए उनकी लिखी कहानियों को प्रतिबन्ध का सामना करना पड़ा।

उग्र की क्रांतिकारी कहानियों को 1939 में प्रतिबंधित कर दिया गया। ये कहानियां विविध पत्र पत्रिकाओं में छपीं थीं। इनके नाम इस प्रकार है – ‘उसकी माँ’, ‘नागा नरसिंह दास’, ‘वह दिन’, ‘ऐसे होली खेलो, लाल !’, ‘ध्रुव धारणा’, ‘नादिरशाही’, ‘निहिलिस्ट’, ‘कर्तव्य और प्रेम’, ‘नेता का स्थान’, ‘पागल’, ‘जल्लाद’। ये कहानियां भारत में अंग्रेजी राज और रूस में जारशाही के दमन का इतिहास है। इनकी कहानियों के हवाले से मैनजर पाण्डेय लिखते हैं कि “इस कहानी में उग्र ने साम्राज्यवाद की चालाकी और मौकापरस्ती को भी उजागर किया है। उन्होंने दिखाया है कि हिन्दुस्तान के आज़ाद होने के बाद कैसे टाम, डिक और हैरी भी आज़ादी के जश्न में शामिल होते हैं। कहानी में उग्र ने लिखा है

[154] मैनेजर पाण्डेय ,आलोचना में सहमती असहमति, 2013, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ:167

कि “बाजार की हवा के साथ रुख बदलने में उस्ताद टाम-डिक-हैरी ने भी आजादी दिवस कम धूमधाम से नहीं मनाया। टाम ने शराबखाने को खद्दर से सजाया, डिक ने बदमाश विलायती छोकरियों को तिरंगे जैकेट पहनाए और हैरी के सिनेमा हाउस की ऊँची खोपड़ी पर इंडिया का राष्ट्रीय झंडा फ़हराया गया। झंडा फहराया कांग्रेस कमेटी के देशभक्त अध्यक्ष ने और खद्दर के चूड़ीदार पजामा, अचकन और जवाहर टोपी पहनकर टाम-डिक-हैरी तीनों ने नगरवासियों को एक पार्टी देकर प्रसन्न किया। 'आज़ादी मुबारिक! आज़ादी मुबारिक!!' के नारे लगाते-लगाते तीनों के कंठ सूख गए। उन्हें विश्वास हो गया कि रंगपुर के बुद्धू इंडियन उनके जुल्मों को भूल गये, एतबार हो गया कि आगे भी पुरानी आसानी से वह इंडिया का दोहन-शोषण कर सकेंगे।” कहानी के अंत में उग्र जी का साम्राज्यवाद विरोधी और लोकतंत्र का समर्थन पूरे रूप में सामने आता है। टाम, डिक और हैरी द्वारा आज़ादी के उत्सव मनाने के नाटक के बीच में अचानक एक दर्जन शस्त्रधारी भारतीय नौजवान आते हैं और टाम, डिक और हैरी को घेर लेते हैं। उनकी धोखाधड़ी की पोल खोलते हुए कांग्रेस का अध्यक्ष कहता है “हम रंगपुर शहर के नागरिक गोरे नीच स्वार्थी आतताई का विश्वास उनकी पैशाचिक रूचि देखने के बाद अब हरगिज नहीं कर सकते। हमें तुम्हारी एक भी चीज नहीं चाहिए। न शिक्षा, न सिनेमा, न सूट और न शराब। हमारी और तुम्हारी भी कुशल अब इसी में है कि अपनी दुकानें बढ़ा तुम लोग अपने-अपने देश को रवाना हो जाओ। चलो !” यहाँ उग्र की साम्राज्यवाद विरोधी आकांक्षा की अभिव्यक्ति हुई है, पर वास्तव में देश के आज़ाद होने के बाद ऐसा हुआ नहीं।”[155] उग्र ने अंग्रेजी साम्राज्वादवाद का खुल कर प्रतिरोध किया। भारत से साम्राज्यवादी शासन पद्धति उखाड़ फेंकने के लिए वैचारिक स्तर पर किसी एक विचारधारा के साथ नहीं बल्कि उन्होंने जितना मार्क्सवाद का सहारा लिया उतना ही गांधीवाद का भी। इसीलिए उनकी कहानियों में मार्क्सवाद और गाँधीवाद दोनों के प्रति सम्मान दीखता है।

उग्र की प्रतिबंधित कहानी संग्रह में पहली कहानी 'उसकी माँ' है। इस कहानी का जिक्र भी ऊपर किया गया है। जिसका मूल निहितार्थ यह है कि एक युवा जो देश की पराधीनता से व्याकुल रहता

[155] वहीं, पृष्ठ:171

है लेकिन उसके आरामपरस्त पड़ोसी को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दूसरी कहानी 'नागा नरसिंह दास है' यह कहानी साधुओं द्वारा देश की पराधीनता से मुक्त कराने का उपक्रम पर केन्द्रित है। इस कहानी में एक तरफ लूट को दिखाया गया है, वहीं दूसरे तरफ साधुओं द्वारा उसका प्रतिकार है। कहानी में आगे साधुओं का पूरा ग्रुप स्वतंत्रता आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित कर रहा है। इस कहानी में राम और गाँधी को समाज के उद्धार के लिए समतुल्य दिखाने की कोशिश की गई है। सत्याग्रह के बारे में कहता है "सत्याग्रह!" आर्य कार्यकर्ता महाशय ने करतारपुर के ग्रामीण मित्र को अपने सामने हक्का-बक्का सा खड़ा देखकर साश्चर्य प्रश्न किया।

उत्तर मिला, "हाँ महाशयजी! जमात के साधुओं ने सत्याग्रह आरम्भ कर दिया है। चलिए, जरा करतारपुर, आप ही को लिवा चलने आया हूँ। बड़ा आनंद है। सारे गाँव में बीस जगह साधुओं द्वारा नमक तैयार किया जा रहा है। पुलिस परेशान खड़ी है। यद्यपि साधुओं ने पूर्ण आहिंसा-व्रत लिया था, फिर भी विदेशी पुलिस-अधिकारी उनकी गठीली भुजाओं से भड़कता है।"[156]

तीसरी कहानी 'वह दिन' है। यह कहानी गुलाम भारत में गरीबों की दशा से शुरू होती है। आगे देशी राजाओं द्वारा जनता की गुलामी का फायदा उठाना भी दिखाया गया है। कहानी में जेल से सम्बन्धी बातें और उसके अन्दर होने वाली यातनाओं के बारे में भी बात की गई है। फिर कथा अपने पिछले विषय-वस्तु से जुड़ती है। साथ ही कथाकार यह दिखलाने की कोशिश करता है कि देशी दलाल विदेशी शासन के साथ मिलकर किस तरह से इस देश की जनता पर अत्याचार कर रहे हैं। कहानी के अंत में विदेशी शासन की वजह से देश की सामाजिक और राजनीतिक बदहाली के बारे में कथाकार पात्र से कहलवाता है "मैं हड्डियों के ढाँचे में इस शासन-पद्धति को नाश कर देने की भयंकर शक्ति को लेकर कारागार के बाहर आया। पर, हाय! यहाँ क्या देखा? परदा पलट गया था। रंगमंच से महात्मा गाँधी का प्रस्थान हो गया था और फूट का प्रवेश। अत्याचारी अपना भयंकर तांडव दिखा रहे थे और

[156] रुस्तम राय, प्रतिबंधित हिंदी साहित्य, 1999, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, पृष्ठ: 33

पीड़ित –जो उस दिन किसी प्रिय आशा से नाच रहे थे-तड़प रहे थे, रो रहे थे। असहयोग लम्बी सांसे ले रहा था। दासता की कड़ियाँ अधिक मजबूती के साथ कसी जा रही थीं। उक्त दृश्य से व्यग्र होकर मैंने एक आह खींची-कहाँ गया मेरा वह दिन ?"[157]

'ऐसी होली खेलो, लाल!' कहानी देशी रजवाड़े में होली का उत्सव से शुरू होती है। जिसमें एक पात्र या स्वतन्त्रता सेनानी की वीरता और उसके बेटे का वर्णन है। जो बेटा अंग्रेजों से बगावत करता है और जेल जाता है। जहाँ उसको मौत की सज़ा मुकर्रर होती है। कहानी मेवाड़ क्षेत्र पर केन्द्रित है। कहानी में आगे ब्याह का प्रसंग है लेकिन देश की सामाजिक परिस्थिति से प्रेमी-प्रेमिका पीड़ित रहते है और शपथ लेते हैं कि, इस होली के उत्सव के दौरान हम देश की पराधीनता को तोड़ेंगे और ब्याह करेंगे। इस दौरान स्त्री पात्र से संवाद है " 'स्त्रियों को हमारे रण-प्रस्थान के पूर्व ही, 'जौहर' करना होगा और बच्चों को किसी प्रकार बचाकर सुरक्षित स्थान में भेजना होगा। इसलिए मैं तुम्हें यह संदेश सुनाने के लिए आया हूँ कि मुसकराती-मुसकराती आग में कूदने को शीघ्र ही प्रस्तुत हो जाओ।' 'मैं?' कुछ सोचती हुई पद्मा गंभीर भाव से बोली, 'मैं जौहर नहीं करूँगी।

'फिर क्या करोगी?'

'होली खेलूँगी!' मुस्कराहट के साथ उत्तर मिला।

'किससे?'

'विदेशी मुग़ल सेनापति से, विदेशी दानव से !''"[158]

[157] वहीं, पृष्ठ: 40

[158] वहीं, पृष्ठ: 47

कहानी के अगले प्लाट में विदेशी सेना और उसका दमन को रेखांकित किया गया है। लेकिन इसको मात देने के लिए युद्ध में स्त्री पुरुष दोनों एक दूसरे का सहयोग करते है और पुरुषों के साथ रण-क्षेत्र में स्त्रियाँ भी जाती हैं।

अगली कहानी ध्रुव धारण है। यह कहानी एक प्रेमी-प्रेमिका के संवाद से शुरू होती है। और इसी संवाद के साथ आगे बढ़ती है। इस संवाद का केंद्र विषय-वस्तु देश की गुलामी और विदेशी शासन की प्रताड़ना को बनाया गया है। इसमें विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों की जिम्मेदारी उठाने के लिए आगाह किया गया है। मुख्य पात्र उपेन्द्र और रमा है। रमा और उपेन्द्र गाँधी के आन्दोलन भाग लेते हैं और जेल जाते है। कहानी में आगे धारा 124 (अ) का जिक्र है। इसके सन्दर्भ में कथाकार एक संवाद के माध्यम से कहता है "देवकुमार, तुम कचहरी गए थे?" रमा ने अपने भाई से पूछा।

देवकुमार-"अभी वहीं से आ रहा हूँ। विचारपति ने फैसला सुना दिया"।

रमा- "क्या सुनाया? उन्हें कितने दिनों की सज़ा हुई?"

देवकुमार- "दो वर्ष की कड़ी सज़ा।"

रमा-"किस अपराध में?"

देवकुमार- "उनके ऊपर भारतीय दंड-विधान की 124 (अ) धारा लगाई गई थी। उनका अपराध था सम्राट के विरुद्ध अप्रीति फैलाना। इसे जासूसों ने उनके कई भाषणों से सिद्ध किया था।"[159] ध्यान रहे की कानून की इसी धारा के माध्यम से लोगों के लिखने और बोलने को नियंत्रित किया जाता था। रमा और उपेन्द्र एक दूसरे से प्रेम करते हैं, लेकिन इस प्रेम को देश प्रेम के बिना अधूरा मानते हैं। इसलिए देश की मुक्ति उनका कर्तव्य बन जाता है। फिर कहानी में उपेन्द्र के माध्यम से जेल के अन्दर की यातनाओं को दिखलाने की कोशिश की गई है।

---

[159] वहीं,, पृष्ठ: 53

'नादिरशाही' कहानी की शुरुआत में दिल्ली का चित्रण है। कहानी की शुरुआत में कथाकार लिखता है " दिल्ली ! तू अमरावती की कोई वेश्या तो नहीं है? जरुर ऐसा ही है। अवश्य किसी देवता के अभिशाप से तू भू-खंड के रूप में भारतवर्ष की छाती पर हजारों, लाखों वर्षों से पड़ी है। जो तुझे देखता है वही तुझ पर मुग्ध हो जाता है। साधारण वेश्याओं का हृदय श्मशान होता है, पर तेरा हृदय महाश्मशान है। साधारण वेश्याएं अपने दो-चार प्रेमियों का रक्तपान करके संतुष्ट हो जाती हैं, पर तूने आज तक अपने न जाने कितने प्रेमियों का सर्वनाश किया है ! इतिहास ने जहाँ-जहाँ तुझे याद किया है, वहाँ-वहाँ उसके पन्ने रक्त से रंगे हैं।"[160] आगे बताया गया है कि दिल्ली पर किन-किन शासकों ने आक्रमण किया और कितनी जाने गई। लेकिन इस कथा को 1857 की पृष्ठभूमि के बतौर कहा गया है। इस कहानी में सिखों और अंग्रेजों की मिली भगत से दिल्ली में एक मुसलिम दम्पति के घर उत्पात करते हुए दिखया गया है। उसमें एक मुसलमान को मार दिया जाता है और उस घर में मौजूद महिलाओं के साथ दुष्कर्म करने की कोशिश की जाती है। इससे डर महिलाएं और दम्पति भागती है और सिख और अंग्रेज उनका पीछा करते हैं। इस कहानी में स्पष्ट रूप से दिखलाने की कोशिश की गई है कि समाज जब खतरे में होता है तो उस समय महिलाओं की स्थिति कैसी होती है।

अगली कहानी निहिलिस्ट रूस और उसकी राजधानी मास्को में चल रही जारशाही शासन के खिलाफ आन्दोलन का चित्रण है। रूस में इस शासन की वजह से उत्पन भयंकर अमानवीयता और अत्याचार को दिखलाने की कोशिश की गई है। उसके खिलाफ राष्ट्रभक्ति के प्रचार को भी दिखलाया गया है। इसको बढ़ावा देने के लिए साहित्य के महत्व को रेखांकित किया गया है। एक प्रसंग इस प्रकार है "रेटकिन महोदय ! आप हमें लुटेरे या बदमाश न समझिये। हमलोग ने किसी विशेष प्रयोजन से आपको इतना कष्ट दिया है आशा है, आप हमें क्षमा करेंगे और अपने कष्टों पर ध्यान न देंगे। आपको एक घंटे का समय दिया जा रहा है। इतनी देर में आप इस कमरे के सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन कर लें

[160] पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, 'नादिरशाही', रुस्तम राय (सम्पा.), 1999, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, पृष्ठ:61

। ऐसा करने पर ही आप अपने घर जा सकेंगे। आपने भोजन तो कर लिया होगा ?"[161] कहानी में आगे जिस कमरे में रेटकिन को रखा जाता है उस कमरे में लगी चित्रकारी को रेटकिन निहारता है। जिस चित्रकारी में जारशाही के अत्याचार को दिखलाने की कोशिश किया गया है। साहित्य और चित्रकारी का प्रभाव रेटकिन के ऊपर इस तरह पड़ता है कि, वह शपथ लेता है कि अब देश को जारशाही से मुक्त कराएंगे। जिसके लिए उसको प्रताड़ित किया जाता है और जेल में डाल दिया जाता है।

'कर्तव्य और प्रेम' कहानी भी रूस पर केन्द्रित है। यह कहानी भी एक चित्रकारी से शुरू होती है। इस कहानी में बाप और बेटी के संवाद है। बाप अपनी बेटी डोराइना को बताता है कि उसका भाई किस तरह से जारशाही के खिलाफ लड़ते हुए मारा जाता है और किस प्रकार निहलिस्टों को प्रताड़ित और सज़ा दी जाती है। बाप अपनी बेटी को जारशाही के अड्डो के बारे में पता करने और एक जार को मारने का काम देता है। लेकिन उसकी डोराइना बेटी उस सुंदर जार के प्रेम में पड़ जाती है और विश्वासघात करती है। उसके साथ भागने का प्रस्ताव रखती है। लेकिन जार भागने से पहले निहलिस्टों का रहने का अड्डा पूछता है। परन्तु उसका पिता उसका पीछा करता है, और उसने जार को गोली मार देता है, और अपनी बेटी को सज़ा भी देता है। इसका जिक्र इस प्रकार है "रोवस्की के सामने ही डोराइना क्रुस में जड़ दी गई। पुत्री के निवेदन और रोदन का कर्तव्यशील पिता के हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। उस स्थान को छोड़ने के पूर्व रोवस्की ने डोराइना के गले में एक तख्ती लटकाकर उस पर उसी के रक्त से लिखा दिया –

विश्वासघात का फल!"[162] इस कहानी में एक बाप बेटी के माध्यम से यह दिखलाने की कोशिश किया गया है कि देश के लिए किसी तरह का छल बर्दाश्त नहीं होगा।

[161] रुस्तम राय, प्रतिबंधित हिंदी साहित्य, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, पृष्ठ: 68

[162] वहीं, पृष्ठ: 79

अगली कहानी 'नेता का स्थान' है। इस कहानी में दो बच्चों का वर्णन है। दोनों बच्चे मानवता पर बातचीत कर रहे हैं और इसमें नेता की भूमिका को भी रेखांकित करते हैं। नेता की वजह से कितना दुर्गुण फैला हुआ है। कैसे भ्रष्टाचार दिन-पर दिन बढ़ता जा रहा है। एक इसे धर्म से जोड़ता है, लेकिन दूसरा गौतम बुद्ध, महावीर और गाँधी का हवाला देता है। फिर पहला कहता है नेता बनाने के लिए अख़बार जिम्मेदार है। इस प्रसंग को कथाकार इस तरह से दर्ज करता है "अनेक वर्षों तक जनता के साथ रहकर, अख़बारों से प्रचार कर जेल और निर्वासन का दंड भोगकर हमारे पूर्व-कथित 'नेता' ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर ली। जिन दिनों हमारे नेता को (अब हम दूसरे नवयुवक को इसी नाम से पुकारेंगे) नेतृत्व मिला उन दिनों लीडरी का भाव कुछ सस्ता भी था। पहले के नेताओं ने अपनी तपस्या से यशैषणा का मार्ग साफ़ कर रखा था। नए नेताओं को कुछ साधारण परीक्षा पास कर लेने ही –किसी समाचारपत्र की नीति के संचालक हो जाने से और उत्तेजित भाषा में –"भाइयों और बहनों" कहकर गर्ज लेने से ही-नेतृत्व सुलभ था। नेता हो जाने के बाद; अपढ़, श्रद्धालु और उत्तेजनाप्रिय मूर्ख जनता की नकेल हाथ में आ जाने के बाद एक दिन 'नेता' और सेवक दोनों दोस्तों की भेंट हुई।

"मैं नेता हूँ।" नेता ने सेवक से कहा।

"तुम राक्षस भी हो, देवता भी।" सेवक ने उत्तर दिया।"[163]

फिर राम और राक्षस का उदाहरण देकर समाज के प्रति उसकी वफादारी को आगाह करता है। लेकिन नेता पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता है, और जनता आन्दोलन और नेता से बहस करने लगती है। इस कहानी में अंग्रेजी सरकार के देशी वफादारों को भी रेखांकित करने की कोशिश की गई है।

'पागल' कहानी रूस के पेट्रोगाड में एक जेलर और कैदी को केंद्र में रखकर लिखी गई है। जेलर कैदी से उसके दोस्त को सम्राट के खिलाफ लिखने की वजह से पकड़े जाने की खबर देता है। पहले वह लेख बताता है कि कहाँ और किस शीर्षक (दुर्बलों की आह) से छपा था, और फिर जेल में

---

[163] वहीं, पृष्ठ: 83

उस पर सज़ा के बारे में बताता है। "जेलर –"इधर स्मरनोफ़ के बारे में हमारे महामान्य सम्राट जार की आज्ञा हुई है कि 'वह उसी पत्र में अपने लेख के लिए पश्चताप करें तथा क्षमा प्रार्थी हों।'

क्रोडकाफ़ – "स्मरनोफ़ ने तो इस प्रस्ताव को न स्वीकार किया होगा?"

जेलर- "नहीं। और क्योंकि वह लेख सम्राट के शासन की पोल खोलता है इसलिए उनका विशेष हठ है कि लेखक क्षमा प्रार्थी होवे ही। स्मरनोफ़ सत्य की तरह दृढ़ है। उसकी आज इसी जेल में मेरे सामने बड़ी दुर्गति हुई है- शायद वह अभी तक अस्पताल में मूर्छितावस्था में ही पड़ा होगा। पर लक्षण से जान पड़ता है कि प्राण दे देने पर भी वह क्षमाप्रार्थी न होगा।"[164] फिर उसकी जेल में हुई दुर्दशा के बारे में बतलाता है। कहानी में हर जगह जारशाही की यन्त्रणाओं के बारे में लिखा गया है। इसके साथ यह भी दिखलाने की कोशिश की गई है कि कैसे किसी सामाजिक सरोकार वाले व्यक्ति को व्यवस्था पागल बना देती है या पागल घोषित कर देती है।

अंतिम कहानी 'जल्लाद' एक गरीब और दमित बच्चा पर केन्द्रित है। वह दमित बच्चा का कसूर केवल इतना ही है कि राजा के बाग़ से फल तोड़ लिया था। फिर उसको राजा मरवाता है और पूछता है कि तुम्हारी हिम्मत कैसे हो गई मेरे बाग़ से फल तोड़ने की इसके लिए उसको इतना प्रताड़ित किया जाता है कि वह मूर्छित हो जाता है। उसको मूर्छित होने के बाद उसको फेंकवा देता है। उधर से गुजर रहा जल्लाद उसे उठाकर अपने घर ले जाता है, और फिर वह बच्चा भी जल्लाद बन जाता है। उसी पेशा को अपना वंशगत पेशा मान लेता है। लेकिन अपनी बदकिस्मती पर बहुत पश्चताप करता है। साथ-साथ भारत की साम्राज्यवादी शासन के प्रति अपना क्षोभ भी व्यक्त करता है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की प्रतिबंधित कहानियां भारत में सम्राज्यवाद की पोल तो खोलती-ही-खोलती साथ ही साथ यह भी दिखलाती की भारत में सम्राज्यवाद सामंतवाद के साथ कैसे समझौता किया हुआ है। उग्र यह भी दिखलाने की कोशिश करते हैं कि किसी भी समाज पर बाहरी शासन तभी

[164] वहीं, पृष्ठ: 89

सम्भव है। जब चली आ रही आंतरिक शासन व्यस्था से जनता उब जाये, तब साम्राज्यवाद उसको लालच दिखाकर अपने साथ लेती है और शासन करती है।

मुनीश्वरदत्त अवस्थी की प्रतिबंधित कहानियां

मुनीश्वरदत्त अवस्थी का नाम हिन्दी साहित्य के लिए अभी नया ही है। उनका नाम साहित्य के इतिहास में एकदम नहीं लिया जाता है, ना स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में। लेकिन उनकी प्रतिबंधित हिंदी कहानियां हिन्दी साहित्य और स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास दोनों को समृद्ध करने की ताकत रखती है। उनकी 1931 में 'बागी की बेटी' नाम से प्रतिबंधित कहानी संग्रह इसका गवाह है। इस कहानी संग्रह में 20 कहानियां संकलित है। जिसे ब्रिटिश हुकुमत ने प्रतिबन्धित कर दिया था। इनके नाम इस प्रकार हैं – 1. क्रांति कामना, 2. मायाजाल, 3. चमेली का चौरा, 4. स्वदेश के लिए, 5. ऋणी, 6.फांसी का कैदी, 7. बागी की बेटी, 8. प्रतिरोध, 9. समर्पण, 10. संकल्प, 11. तरुण तापसी, 12. धर्म-दृष्टि, 13. आश्रयदाता, 14. भीषण प्रतिकार, 15. बलिदान, 16. पश्चताप, 17. गुरु-दक्षिणा, 18. विजयोत्सव, 19. बलिदान की भावना, 20. निहिलिस्ट। इन कहानियों का अध्ययन और मनन करते हुए अक्सर हमें अपने लिखित मौजूदा साहित्य, इतिहास और संस्कृति पर शक उत्पन्न होता है। दूसरे तरफ लगता है कि साम्राज्यवाद अपने प्रतिरोधियों से अभी तक बदला ले रहा है।

उनकी प्रथम प्रतिबंधित कहानी 'क्रांति कमाना' है। यह कहानी अपने देश का धन लुटे जाने के पश्चताप से शुरू होती है। वहीं दूसरे तरफ यह भी संतोष है कि लूट का धन ज्यादा दिन टिकता नहीं है। जयसुख और उसका बेटा हरसुख इस कहानी के मुख्य पात्र हैं। हरसुख जमींदार था और अंग्रेजी हुकूमत ने उसकी जमींदारी छीन ली। उससे उत्पन्न परिस्थितयों को केंद्र में रखकर इस कहानी का ताना-बाना बुना गया है। हरसुख अपने बाप की जमींदारी वापस चाहता है। जिसके लिए वह अदालत तक जाता है, लेकिन कोई फायदा नहीं होती है। इससे तकलीफ और बढ़ती जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि हरसुख अब मजदूर बन जाता है। उसकी पीड़ा अब यह है कि क्रांति के बिना कुछ संभव नहीं है। वह मन ही मन सोचता रहता है कि, इस देश में युवाओं की क्या स्थिति है न उनके पास ढंग का रोजगार है, न उनको ढंग की शिक्षा मिलती है। अंत में कहानीकार लिखता है "हरसुख ने माँ की

लाश को काली नदी के किनारे जलाया। उसके चित्त में प्रश्न उठा कि अब गाँव में ही रहकर खेती करे। किन्तु उसका स्वास्थ्य तो पहले ही नष्ट हो चुका था। एक बार उसने आत्महत्या करने की भी सोची। काली नदी के ऊँचे कगारे से वह कूदना ही चाहता था कि किसी ने उसे पीछे खिंच लिया, वह था उसका विवेक। वह कह उठा, हमारी दुर्दशा का कारण यह शरीर नहीं है। वस्तुतः सरकार की कृपा से ही मैंने स्वास्थ्य खोया, धन खोया, माता खोई, दर-दर धक्के खाए। शरीर को दंड देना अन्याय है। कुछ क्षण पश्चात् उसके चित में क्रांति की कामना उत्पन्न हुई और वह उन्मत की भांति तेजी से दिल्ली की ओर चल दिया।"[165]

दूसरी कहानी 'मायाजाल' है। यह कहानी एक मजदूर को केंद्र में रखकर लिखी गई मालूम पड़ती है। इसमें दिखाया गया है कि, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं से उत्पन्न स्थितियों से देश की जनता का क्या हाल हो गया है। फिर आगे उसकी दीनता का वर्णन है। कुछ दिनों बाद उसे एक जमींदार के घर खाना मिलने लगा जिस पर जमींदार हमेशा ताना देता रहता है कि बुधुवा को रोटी लग गई। आगे वह उससे कुछ बुरे काम करने के लिए कहता है, लेकिन बुधुवा मना कर देता है। जिससे उसका मालिक नाराज होता है मारता है, और अपने घर से भगा देता है। कुछ दिनों बाद उसको चोरी के आरोप में जेल भी भेजवा देता है। "बुधुवा हवालात में बंद हो गया। उस पर अपने मालिक (मुंशीजी) के घर चोरी करके माल ले भागने का आरोप है। मुक़दमे की पेशी हुई। उसे छ: मास की सज़ा मिल गई।"[166] लेकिन वह अपने मालिक मुंशीजी का मोह-माया नहीं त्याग पाता है। और उसी मायाजाल के बारे में लगातार सोचता-विचारता रहता है।

'चमेली का चौरा' कहानी की कथा को एक अनाथ लड़की और उसके जमींदार बाप के इर्द गिर्द रखा गया है। लड़की को राजशाही ऐशो-आराम में रहने की आदत पड़ जाती है। लेकिन अंग्रेजी सरकार के कारण उसको उसको दुर्दिन का सामना करना पड़ रहा है। यह दुर्दिन उसके निजी जिंदगी में

[165] वहीं,, पृष्ठ: 113

[166] वहीं, पृष्ठ: 116

केवल न होकर समाज के हर क्षेत्र में फैल जाता है। इस सरकार के बदौलत एक तरफ भारत का आर्थिक शोषण तो हो ही रहा है, लेकिन दूसरे तरफ अत्याचार और भ्रष्टाचार भी फ़ैल रहा है। कपड़ा उद्योग में खूब धांधली और मनमानी के माध्यम से इस बात को कथाकार दर्ज करता है। इस मनमानी में पुलिस का भी स्पष्ट सहयोग रहता है। पुलिस पैसों के लिए जनता के ऊपर घोर यंत्रणा करती है। लेकिन रामसजीवन एक पात्र जिसको यह सब अच्छा नहीं लग रहा है। वह चाह के भी कुछ नहीं कर पा रहा है। इस दमन से जुलाहों की स्थिति एकदम दयनीय हो गई है।

'स्वदेश के लिए' कहानी रूस के एक मजदूर नेता की दीनता पर केन्द्रित है। इस दीनता के वजह से उस मजदूर नेता के बाप शराब का आदती बन जाता है। कहानी में आगे जारशाही से उत्पन्न समाज में कुरूपता को समझने के लिए नेता किताबों को पढ़ना शुरू करता है। जिससे शासन को खतरा होता है। "हाँ माँ! मैंने अपने मिस्त्री से पढ़ना सिखा है। माँ ने एक ठंडी साँस ली। पेटिट ने माँ की ओर देखकर किंचित मुसकराकर पूछा –"क्यों माँ ?" अब तो माँ आँसू न रोक सकी। उसने कहा –बेटा ईश्वर के लिए बुढ़ापे में मेरी जान संकट में न डालो।"[167] लेकिन वह अपने पिता के बर्बादी को समझ रहा था और उन कारणों को भी, लेकिन वह शराब की आदतों में फसना नहीं चाहता था। बल्कि उससे खुद और अपने समाज को निकालने की कोशिश में था। कहानी में आगे पढ़ने से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के बारे में बतलाया गया है। पुस्तक पढ़ने के बाद पेटिट अपने समाज और पुस्तक में निहित मुद्दों पर अपने दोस्तों के साथ बहस करता है। उसके बाद इसको बदलने और क्रांति की योजना बनाता है।

अगली कहानी 'ऋणी-परिशोध' है। इस कहानी में आयरलैंड की पराधीनता को केंद्र बनाया गया है। आयरलैंड पर इंग्लैंड का शासन के सदर्भ में दिखलाने की कोशिश की गई है कि कैसे एक देश दूसरे देश पर अपना शासन जमाता है। पहले इंग्लैण्ड कहता है कि आयरलैंड मेरा चचेरा भाई है। लेकिन देखते ही देखते वह पूरे देश को लूटना शुरू कर देता है। फिर युवाओं के सामने इस शासन के वजह से उत्पन्न

[167] वहीं, पृष्ठ: 121

समस्यों को दिखलाने की कोशिश की जाती है। एक युवा पात्र के मुख से युवाओं की शक्ति और आत्म-बल को दिखलाया जाता है। युवा कहता है कि एक युवा क्या नहीं कर सकता है। वह आयरलैंड से इंग्लैंड के शासन को खत्म कर सकता है। वह कहता है "मैं सब कुछ कर सकता हूँ। मैं इंग्लैंड वासियों की शैतानियत मिटा सकता हूँ। ब्याज और दरब्याज के साथ बदला चुका सकता हूँ। यदि और कुछ नहीं तो कम-से-कम अपनी कौम के लिए, प्यारे आयरलैंड के लिए मर तो सकता हूँ।"[168] इसलिए वह संकल्प लेता है कि मैं आयरलैंड को मुक्ति दिलाऊंगा। जिसके लिए वह एक क्रांतिकारी दल में शामिल होने की कोशिश करता है, लेकिन शामिल नहीं हो पाता। परन्तु वह सरकार के खिलाफ षड्यंत्र जारी रखता है। इस षड्यंत्र में उसका एक साथी पकड़ा जाता है और उसको फांसी होती है।

'फांसी का कैदी' एक युवा की कहानी है। पहले तो वह देश से अत्याचार मिटाने के लिए तरह-तरह का यत्न करता। "स्वतन्त्रता युद्ध के समय फिरंगियों के अत्याचारों की कहानी सुनकर मैं उतेजित हो उठता और बदला लेने की धुन में उपाय सोचा करता। अपने गाँव से दूर मीलों की झोपड़ीयों में जाकर तीर चलाने का अभ्यास करता और अपने कार्य की आर्थिक चिंता से दूर रखने के विचार से उसने डकैती करने की भी शिक्षा प्राप्त करता। किन्तु सरला के प्रेम ने मुझे बदल दिया।"[169] इसकी वजह से उसे लगता है कि मैं अपने देश के लिए कुछ नहीं कर पा रहा हूँ। दूसरी तरफ अंग्रेजों की झूठ और लूट और बढ़ती जा रही थी। जिसका सहयोग देशी सामन्तवादी खूब कर रहे थे और समाज में विकृति भी फैलती जा रही थी। कहानी में इससे मुक्ति के लिए उपक्रम को लेकर बातचीत है। वह सरला को त्यागने की कोशिश करता है लेकिन सरला कहती है कि यह तुम्हारी गलतफहमी है। मैं तुम्हारे साथ युद्ध में चलूंगी और समाज को मुक्त करूंगी। इसी क्रम में वह गिरफ्तार होता है और उसे फांसी की सज़ा होती है।

[168] वहीं, पृष्ठ: 124

[169] वहीं, पृष्ठ: 127

'बागी की बेटी' कहानी जेल में बंद एक कैदी से शुरू होती है। आगे कहानी में 1857 की स्वतन्त्रता आन्दोलन से उत्पन्न आशाओं का वर्णन है। जिसमें भाग ले रही स्त्रियों को जेल में डाल दिया गया है। जेल के अन्दर की दुर्व्यवस्थाओं को दिखलाया जाता है। इसके आगे सेनापति और उस बागी लड़की से बातचीत अंग्रेजी हुकूमत और उसकी जनता के प्रति जवाबदेही पर है। जिसका वह प्रतिकार करती है। लेकिन इतना सबकुछ होने के बाद भी लड़की को पता नहीं रहता है कि, वह किस जुर्म में जेल गई है। सेनापति कहता है "तुमको मृत्युदंड की आज्ञा हुई है। कैदी ! तुम मरने के लिए तैयार हो। 'किस अपराध के बदले'- - उस स्त्री ने प्रश्न किया। व्यंग्य की हँसी हँसते हुए सेनापति ने उत्तर दिया- 'नहीं जानती हो ? तुम अंग्रजी सरकार के बागी सरगना की लड़की हो।"[170] आगे अंग्रेजो की शासन की स्थिति को दिखलाया जाता है कि वह शक के आधार पर किस तरह से पूरे के पूरे परिवार को खत्म करते हैं।

'प्रतिरोध' कहानी प्रथम विश्वयुद्ध 1916 पर केन्द्रित है। एक तरफ रूस की जारशाही सरकार जर्मनी के साथ युद्ध में अपनी सारी ताकत झोंक देता है। वहीं दूसरे तरफ मौका की तलाश में जुटी रुसी क्रांतिकारी दल जारशाही से मुक्ति की साजिश रचती है। कहानी में आगे पति पत्नी का संवाद है। पति, पत्नी को छोड़ अकेले युद्ध के लिए रहस्मयी ढंग से निकलना चाहता है।

अवस्थी की 'समर्पण' कहानी अंग्रेजी सरकार के अत्याचार से शुरू होती है। आगे यह दिखलाने की कोशिश की जाती है कि किस तरह भारतीय जनता केवल अंग्रेजी सरकार से त्रस्त नहीं है बल्कि देशी जमींदारी प्रथा भी उसके लिए अभिशाप है। इस पूरी कहानी को एक परिवार के माध्यम से बतलाया गया है। चारों-ओर अन्याय के बीच यह परिवार अपने बचाव का रास्ता खोजता है लेकिन कहीं दीखता नहीं है। एक तरफ पूंजीवाद दूसरी तरफ न्याय का ढकोसला और तीसरी तरफ धर्म का अन्याय है। तब वह कहता है, "यह धर्म और सदुपदेशों के ठेकेदार एजेंट अपने सर में लम्बी जटाओं के भीतर पूंजीवाद

[170] वहीं, पृष्ठ: 133

का खांत लिए हैं। सचमुच, इनके कपड़े गरीबों के रक्त से रँगे हुए हैं और घुटी हुई खोपड़ी के साथ न्याय और विवेक की बातों की भांति भी अपना नाता तोड़ चुके हैं। मंदिर, मस्जिद, गिरजा और ठाकुरद्वारों में भी तो ईश्वर के स्थान पर किंग की तस्वीर पर ढले हुए चाँदी और ताम्बों के टुकड़ों का ही बोलबाल है और उस दिन हमने उद्धारकों पर भी उसी पूंजीवाद का भूत देखा तब तो मेरे मुँह से अनायास निकल गया कि उस गरीब प्राणी की बात उसकी जानकारी से भी अधिक सत्य है।"[171] आगे जमींदारी व्यवस्था की वजह से किस तरह देश की गरीब जनता बेघर हो गई है, उसे दिखलाया गया है और फिर इन परिवारों की दीनता को दर्शाया गया है।

'संकल्प' कहानी में युद्ध का वर्णन है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार भारत के अतीत के माध्यम से दिखलाने का प्रयास करता है कि, किस तरह भारतीय जनता अपने राष्ट्र की सुरक्षा करती थी। इसको बतलाने के लिए कथा को चित्तौड़ पर मुगलों के आक्रमण और उसका प्रतिरोध का सहारा लिया गया है। इसको आगे भारतमाता के मुख से देश में हो रहे अत्याचारों का ब्यौरा दिलवाया जाता है। "अंत: ब्रम्हा, विष्णु, महेश आदि विभिन्न देव नामधारिणी मातृभूमि तेरी ही शपथ खाकर संकल्प करता हूँ कि, जब तक मैं मातृभूमि का उद्धार न कर लूँगा तब तक न सोने-चाँदी के बरतन में भोजन करूँगा और न चारपाई पर सोऊंगा और उस मातृभूमि सेवक को मूँछों पर हाथ फेरने पर लानत है, जिसका देश पराधीन हो।"[172] आगे युवा संकल्प लेता है और युद्ध की भूमि में स्वाधीनता के लिए उतर जाता है।

अगली कहानी 'तरुण तपसी' है। यह कहानी बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी में काम करने वाले एक कर्मचारी को मुख्य पात्र बनाया गया है। आगे उसकी बेटी की शादी का जिक्र है। इस शादी के माध्यम से दिखाया गया है कि किस तरह का अत्याचार और अन्याय भारत में हो रहा है। इसको और स्पष्ट करने के लिए जुलाहों के ऊपर हो रहे अत्याचारों को केंद्र बनाया गया है। एक युवक जो इसे देख परेशान

---

[171] वहीं, पृष्ठ: 139

[172] वहीं, पृष्ठ: 139

रहता है, और दूसरे तरफ उसको आत्म ग्लानि भी रहती है कि, मेरे सामने हो रहे अत्याचारों का मैं प्रतिरोध नहीं कर पा रहा हूँ। लेकिन काली का उपदेश सुन वह उद्धेलित हो जाता है, अंग्रजों से प्रतिरोध शुरू कर देता है। कथाकार अंत में लिखता है कि "सन 1662 ई. के मई मास में वह एक नदी के किनारे बैठा था। उसके बाल बढ़ गये थे। पैरों में रक्षा के लिए कोई वस्तु न थी। गले में था कुरता, बगल में कम्बल, ह्रदय में था दर्द और प्रेम। उसने समाज का कार्य दूसरों पर छोड़कर राजनीतिक सुधार का बीड़ा उठाया। वही सुशील अब बदल गया। यह तरुण तापसी निर्धनों की आँखों का तारा है और परदेशियों के ह्रदय का शूल।"[173]

'धर्म-दृष्टि','आश्रयदाता' और 'बलिदान की भावना' तीनों ही काहानियाँ आयरलैंड पर केन्द्रित है। धर्म-दृष्टि कहानी में आयरलैंड में सम्राज्यवाद की वजह से उत्पन्न समस्यायों को केंद्र में रखा गया है। आगे क्रांतिकारिणी कमिटी द्वारा लिखित पर्चों में निहित मुद्दों पर बातचीत है। "एक समय की बात है कि डबलिन की क्रान्तिकारिणी कमेटी की ओर से एक परचा 'रणनिमंत्रण' निकला जिसमें अंग्रेजों के अत्याचार का भंडाफोड़ था और साथ ही उसके प्रतिकार के लिए नवयुवकों को गुप्त समिति में सहयोग देने का निमंत्रण भी था। उसमें यह भी दिखाया गया था कि किसी देश में जब खुले आन्दोलनों को चलाने में पग-पग पर रुकावट डाली जाती है तो वहाँ गुप्त रूप से कार्य करना उचित और अनिवार्य हो जाता है। इस परचे को निकले चार दिन भी नहीं गुजरे थे कि, वहाँ की सरकार की ओर से वह परचा जब्त कर लिया गया।"[174] आगे यह बतलाया गया है कि आयरलैंड की स्वतन्त्रता आन्दोलन में किस तरह की रूकावट थी। इससे एक क्रांतिकारी विक्षुब्ध होकर गाँव लौटता है, अपने साथ तीन और युवकों को साथ लेता है। कहानी में यह दिखलाने की कोशिश की गई है कि, धर्म किस तरह से पूंजीवाद के साथ है। लेकिन साम्राज्यवाद और धर्म के शासन को समाप्त करने के लिए वह अस्त्रों की जरूरत महसूस करता है। जिसके लिए वह एक इंग्लैंड के सैनिक की हत्या कर उससे अस्त्र छीनता है। और

[173] वहीं,, पृष्ठ: 146

[174] वहीं, पृष्ठ: 147

बाद में गिरजाघर में बम धमाका करता है। इसके परिणाम स्वरूप उसके परिवार की सरकार हत्या कर देती है। वहीं दूसरे तरफ 'आश्रयदाता' कहानी में आयरलैंड में शांति और अमन के नाम पर चल रहे लूट को दिखलाया जाता है। जिससे एक गरीब युवक बहुत खिन्न होता है, और वह क्रांतिकारी दल का गठन कर लेता है। लेकिन उसके क्रांतिकारी गतिविधियों की वजह से उस पर राजद्रोह का अभियोग लगता है। इधर कालेन्स को जेल जाते ही दल दो भागो में विभक्त हो जाता है। एक भाग चाहता है कि देश को शांति और सरकार के सहयोग से मुक्त होना चाहिए, वहीं दूसरा भाग चाहता है कि देश क्रांतिकारीऔर बिना सरकार के सहयोग से आजाद होगा। बलिदान कहानी भी इसी तरह इंग्लैंड के अत्याचार से पीड़ित जनता और उसके साथ धर्म के ढकोसला की कथा है।

'भीषण प्रतिकार' और इस संग्रह का अंतिम कहानी 'निहिलिस्ट' रूस पर केन्द्रित है। इस कहानी में आगे देश की सुरक्षा का हवाला देकर जेल में बंद कैदियों को निर्वासित किया जा रहा है। इससे खिन्न कैदी और देश की जनता ईश्वरीय अस्तित्व को संदेह के घेरे में ला रही है, क्योंकि एक तरफ जारों का अत्याचारी शासन है तो दूसरे तरफ धर्म और ईश्वर के नाम पर दोहरा शोषण हो रहा है। लेकिन इधर एक कैदी साइबेरिया ले जाते वक्त भाग जाता है। बाद में उसे पुलिस पकड़ती है, और उसके साथ भीषण अत्याचार करती है। निहिलिस्ट कहानी में भी जारशाही के अत्याचार से निपटने के लिए तमाम प्रयासों, रणनीतियों के साथ उसका दमन का चित्रण है।

अगली कहानी 'बलिदान' मध्यकालीन शासक के आरामपरस्ती से उत्पन्न समस्यायों पर केन्द्रित है। कहानी में एक तरफ शासक अपने ऐशो-आराम की जिंदगी जीता है, तो वहीं दूसरे तरफ उसका सेनापति अकेले अंग्रेजी साम्राज्य को उखाड़ फेंकने का शपथ लेता है। जिसके लिए वह अपने आप को भी बलिदान कर देता है।

'पश्चताप' कहानी में एक बालक का चित्रण है। उसकी दिनचर्या और अभाव की वजह से अख़बार बेच कर उससे पैसा इकट्ठा कर पुस्तक खरीदता है। वहीं दूसरे तरफ उसके पिता दुत्कारता रहता है कि धनी

घर में पैदा होकर पेट के लिए चिल्लता है। लेकिन इसके लिए वह प्रतिकार करता है। और कहता है देश की मुक्ति के लिए पढ़ना और जानना जरूरी है। आगे फिर वह क्रांतिकारियों के दल में शामिल होता है, और एक अंधी लड़की से प्रेम कर वह उसके साथ देश मुक्ति के लिए अभियान शुरू करता है। उसके काम और नाम को देख उसका बाप पश्चताप करता है।

'गुरु दक्षिणा' कहानी अवध के नवाब और उसके ऊपर हुई बर्बर कार्यवाही पर केन्द्रित है। इसमें दिखलाया जाता है कि, कैसे अंग्रेजी हुकूमत लखनऊ पर कब्जा करती है। और नवाब के महल में दबिश कर नवाब को गिरफ्तार करना चाहती है। लेकिन एक महिला विनती करती है कि ऐसा मत करो। फिर आगे इंसानियत का हवाला दिया जाता है। लेकिन अंग्रेज मानते नहीं हैं, और युद्ध होता है। महल और क्षेत्र के लोग भाग जाते है। उसी दौर में एक महात्मा से मुलाकात होती है, जो देश मुक्ति का उपाय सुझाता है। जो गुरु दक्षिणा के नाम पर फिरंगियों से मुक्ति का वचन लेता है।

अगली कहानी 'विजयोत्सव' कुंवर छत्रसाल सिंह की याद और उनके पराक्रम पर केन्द्रित है। जो बुंदेलखंड का राजा था। उसके रहन-सहन और दिनचर्या से कहानी शुरू होती है। यह सब उनकी अगली पीढ़ी को याद कराया जाता है। तब सेनापति अपने तत्कालीन राजा से संवाद करता है, और कहता है विजय दशमी आ गया और देश अभी भी परतंत्र है। इस परतन्त्रता में हमलोगों और हमारे राज्य की जनता का क्या स्थिति है। आगे विजय दशमी के ऐतिहासिक महत्व को याद किया जाता है, और राजा कुंवर का शपथ लिया जाता है कि इस बार विजय दशमी को अंग्रजों को भगायेंगे और विजयोत्सव मनायेंगे। कहानी में आगे युद्ध की रणनीति बनती है। लेकिन युद्ध में जाने से पहले राजा की पत्नी सवाल करती है कि अकेले आप कैसे जायेंगे रणक्षेत्र में, इस बार बहस होती है। अंत में स्त्री पुरुष सब मिलकर युद्ध लड़ते हैं।

मुनीश्वरदत्त अवस्थी की कहानियों को पढ़ते और मनन करने पर ऐसा आभास होता है कि मुनीश्वरदत्त अवस्थी को कहानी या साहित्य लेखन का कार्य करने नहीं बैठे थे। उन्होंने अपनी कहानियों

के माध्यम से यह दिखलाने की कोशिश की है कि, अंग्रेजी हुकूमत के दौर में भारतीय समाज की हकीकत क्या थी, और उससे पहले की हकीकत क्या थी ? आजादी को कैसे हालिस किया जाना चाहिए और किसके लिए आजादी ? इन्हीं सब चीजों के स्पष्ट करने के लिए वह रूस, आयरलैंड और भारत के क्षेत्रीय राज्य और उसके राजा के बारे में लिखते हैं। इस लेखन के दौरान वे इन राजाओं की खामियों को भी सीधे तौर पर उल्लेख करते हैं।

ऋषभचरण जैन की प्रतिबंधित कहानियां

ऋषभचरण जैन का नाम हिंदी साहित्य में अक्सर उपन्यास और जैनेन्द्र कुमार के साथ लिया जाता है। लेकिन 1931 में उनकी प्रकाशित प्रतिबंधित कहानी संग्रह 'हड़ताल' को अब तक याद नहीं किया गया है। इस संग्रह में कुल छः कहानियां संकलित हैं। जो अंग्रेजी हुकूमत के शासन की पोल खोलती हैं। कहानियों के नाम इस प्रकार है। 1. हड़ताल, 2. छोटी बेटी, 3. फरार, 4. उसके बाद, 5. और मेरे भी, 6. रहस्य। यह भारतीय जनमानस का अंग्रेजी हुकूमत के प्रति सोच और धारणा को उजागर करती है।

संग्रह की पहली कहानी 'हड़ताल' है। कहानी की शुरुआत इस प्रकार होती है "एक था भगतसिंह, एक सुखदेव और एक शिवराम। 23 मार्च सन 1931 ई. को शाम के सात बजे तीनों को फांसी पर लटका दिया। या यों कहें, कि फांसी पर लटका दिया गया, बल्कि कहें जान के बदले जान ले ली गई, अब यह कौन कहे, और कौन जाने कि कैसे जान ली गई। और फिर जानने या कहने की आवश्यकता भी क्या है। मार दिया गया, उन्हें कत्ल कर दिया गया, या कहें कानून की नज़र में उन्हें सज़ा दे दी गई, और जनता की नजर में उन्हें शहीद बना दिया गया।

बात क्या थी ? और क्यों इस सज़ा या शहादत का मौका आया यह बात आज सब जानते हैं। तब क्या जाने, हमारी यह कहानी पचास साल बाद के बच्चों को इतिहास की तरह दी जाए। तब उन्हें जो दिक्कत, इस शहादत, फांसी, या सज़ा का कारण समझने में पड़ेगी, उसी का खयाल रखकर संक्षेप में कुछ इतिहास लिखते हैं।"[175] इस उद्धरण से यह साफ है कि कहानी का रुख क्या है। मतलब कहानी भगत सिंह और सुखदेव आदि से सम्बन्धित है। आगे उनकी फांसी की बारे में और उसके वजह का जिक्र किया जाता है। लाहौर में लाजपत राय की लाठी से हत्या और इनकी फांसी को एक साथ रखकर देखा जाता है। फिर इससे सम्बंधित घटनाओं को याद किया जाता है। न्याय में हुए भेदभाव को अच्छे से चित्रित करने

[175] वहीं,, पृष्ठ: 185

की कोशिश की जाती है। वहीं दूसरे तरफ भगत सिंह, और सुखदेव को फांसी के तख्ते और उस समय की मनोदशा को भी दिखलाया गया है। इनके फाँसी से सम्बन्धित महात्मा गाँधी के विचारों पर व्यंग्य किया गया है। कहानी में आगे फाँसी के बाद देश में उत्पन्न विद्रोह और हड़ताल जैसी परिस्थितियों को भी दिखलाने की कोशिश की गई है। कानपुर में हिन्दू-मुसलिम दंगे को इसी क्रम में देखने की कोशिश की गई है। अंत में हड़ताल के दौरन विभिन्न समुदाय के लोगों की मनोदशा का चित्रण है।

'छोटी बेटी' कहानी 'हड़ताल करो! हड़ताल करो !!' के उदघोष से शुरू होती है। इसके बाद हड़ताल में शामिल लोगों के मनोभाव का चित्रण है। हड़ताली अपने झंडे आदि लेकर एक गर्ल्स स्कूल पहुंचते हैं। जहाँ की प्रिंसपल हड़ताल के पक्ष में नहीं है। वहाँ पहुँचकर हड़ताल के बारे में उसे बतलाते हैं कि, हडताल क्यों जरुरी है। अंग्रेजी सरकार का असहयोग इस देश की व्यवस्था के लिए कितना जरूरी है। फिर भी प्रिंसपल नहीं मानती है, और वह धमकी देने लगती है कि पुलिस बुलाऊंगी, फिर भी हड़ताली नहीं मानते तब व्याकुल होकर कहती है कि सरकार द्वारा जो 60 रूपये मिलते हैं वह बंद हो जायेंगे। इधर एक छात्रा जो उसकी छोटी बेटी रहती है। वह हड़तालियों के साथ हो जाती है। किसी तरह सिपाही आ जाते हैं, और महिलाओं के साथ छेड़-छाड़ करते हैं। जिसके वजह से हाथ-पाई होती है , और इस दौरान भारतीय झंडा गिरने को हो जाता है। लेकिन वही प्रिंसपल उस झंडे को गिरने से बचाती है और हड़तालियों के साथ हो जाती है। उसकी छोटी बेटी इसका नेतृत्व करने लगती है।

तीसरी कहानी 'फरार' है। यह कहानी राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार एक कैदी के बारे में है। जब वह जेल जाता है तो, वहाँ एक पहरेदार से मिलता है। जो अंग्रेजी सरकार की वजह से उत्पन्न समस्यायों और संकट को बतलाता है। वह बतलाता है कि कैसे पैसे के लिए हमलोग अपना धर्म बेच रहे हैं। फिर देश की परतन्त्रता के कारण और विदेशी हुकूमत को हो रहे फायदे के बारे में बातचीत करता है। इधर कैदी फरार होने का उपाय सोचता रहता है। फिर वह नित्य-कर्म करने का बहाना बनाकर निकल जाता है और फरार हो जाता है। उसके फरार हो जाने के बाद गरिबा नामक पहरेदार को जेल

और सज़ा हो जाती है। जिसकी सूचना उसे अख़बार से मिलती है। सूचना सुनकर वह पश्चताप करता है। लेकिन गरीबा एकबार फिर सब कुछ धर्म के ऊपर छोड़ देता है।

अगली कहानी 'उसके बाद' है। यह कहानी एक गरीब परिवार की उलझनों के बारे में है। जिसमें बाप चाहता है कि बेटा पढ़लिखकर बड़ा हो जाए और नौकरी पेशा करने लगे तो उसकी शादी कर दी जाएगी। जिससे अपनी जिंदगी को थोड़ा आराम मिल जायेगा। जिसे वह अपने माँ बाप के प्रस्ताव को ठुकरा देता है। उसे अपनी नौकरी पेशा से ज्यादा चिंता देश की गुलामी की है। जिसके लिए वह अपने घर में मीटिंग बुलाता है, और अस्त्र से विदेशी सरकार के हौसले पस्त कर देने की ठानता है। इस बात को सुनते ही उसके माँ-बाप परेशान हो जाते हैं और वे अपने आने वाले दिनों के बारे में चिंता करने लगते हैं। कहानी में आगे इसी बात पर बहस है। जिसमें बेटा तर्क देता है कि मेरे बाद आप लोग भी देश के लिए बलिदान हो जाओ। फिर क्रांतिकारी कार्यों में भाग लेता है, और पकड़ा जाता है। सज़ा के रूप में उसे फाँसी होती है। फाँसी के कुछ दिन पहले अपने माँ-बाप को पत्र लिखता है। जिसमें लिखता है कि तुम्हें गर्व होना चाहिए की मैं देश के लिए मर रहा हूँ। उसके बाद उसकी माँ की व्यथा है। जिसे लोग इस डर से बात नहीं करते की वह क्रांतिकारी की माँ और इसी डर से भीख भी नहीं देते।

चौथी कहानी 'और मेरे भी' है। यह कहानी दक्षिण अफ्रीका की राजनैतिक सामाजिक संरचना में प्रवासियों का योगदान और उनके ऊपर अत्याचार पर केन्द्रित है। इस कहानी के शुरुआत में कथाकार लिखता है कि "दक्षिण अफ्रीका में कई जातियां बसती हैं। अंग्रेज, बोअर, मलायी, भारतीय, हब्शी आदि। इनमें से मलायी और बोअर लोगों का सम्बन्ध हमारी कहानी से नहीं है।

भारतीय भी कई तरह के हैं। मुक्त भारतीय व्यापारी और गिरमिटिये भारतीय। दक्षिण अफ्रीका में बहुत सी सोने की खाने हैं। उनमें काम करने के लिए जो गरीब भारतीय तीन या पाँच साल के एग्रीमेंट या गिरमिट पर जाते थे वे गिरमिटिया और मियाद खत्म होने पर वहीं बस जानेवाले मुक्त भारतीय कहलाते हैं।

एक नई खच्चरी जाति और चल निकली है। हब्शिन युवतियों और गोरों के व्यभिचार-स्वरूप उत्पन्न हुए बालक-बालिकाएं कलर्ड कहलाते हैं।"[176] इसे कहानी की प्रस्तावना के रूप में लिखा गया है। कहानी में तीन प्रमुख पात्र हैं मनसुख, जसरानी और हम्बेल। मनसुख खान में मजदूरी का काम करता है। उसकी पत्नी भी उसी खान में काम करते करते तपेदिक से मर जाती है। जसरानी उसकी बेटी रहती है, जो हम्बेल से प्रेम करती है, लेकिन अपने पिता की मियाद खत्म होते ही वह अपने वतन लौटना चाहती है। यह हम्बेल नहीं चाहता है। लेकिन जसरानी इसके लिए जिद्द करती है और अडिग रहती है कि, मैं अपने वतन जाऊँगी। यह चीज हम्बेल को बुरी लगती है, वह उसके पिता को एक भारतीय मजदूर मुखराम को पैसा देकर मरवा देता है। इधर हल्ला हो जाता है कि मनसुख खान में दबकर मर गया। इससे उसकी बेटी बहुत विचलित होती है। लेकिन यह बात जसरानी से मुखराम खुद बतला देता है कि हम्बेल ने तुम्हारे पिता को मुझे पैसा देकर मरवा दिया है। इसको सुन जसरानी उस समय वहां चल रहे महात्मा गाँधी का सत्याग्रह में भाग लेने निकल जाती है। अपना सामान भी गरीबों में बाँट देती है और हम्बेल को बोलती है कि तुम दूसरी शादी कर लेना। हम्बेल शादी कर लेता है लेकिन इधर जसरानी को भी तपेदिक हो जाता है और वह अस्पताल में अपनी अंतिम दिन गिनती रहती है। जब हम्बेल पहुँचता है तो उससे माफ़ी मागता है कि मैंने ही तुम्हारे पिता की हत्या करवाई थी। इसके बाद जसरानी कहती है कि 'और मेरे भी'।

इस संग्रह की अंतिम कहानी 'रहस्य' है। यह कहानी एक युवा लेखक और उसकी समस्याओं के बारे में है। जिसे एक रूपक के रूप में इस्तेमाल किया गया है। लेखक अपने लिखे के पुरस्कार के इंतजार में होता है, और पुरस्कार की राशि आती नहीं है। जिसके वजह से उसका जीना मुश्किल हो गया है। उसी पुरस्कार राशि से उसका जीवन चलता था। पुरस्कार राशि इस बार आने में देर होती है। जिसके चलते लेखक का जीवन संकट में पड़ जाता है। लेकिन उसके पास एक कलम रहती है जो हीरे

[176] वहीं, पृष्ठ: 215

की होती है, और उस कलम को एक सेठ खरीदना चाहता है। लेखक कहता है कि "लेखक ने कलम को बोसा दिया, और स्नेह पूर्वक उसे तकते हुए कहता रहा... यह कलम जो सब अवस्थाओं में मेरे साथ रही। मैं धन कुबेर रहा तो उसने मेरा साथ न छोड़ा, गरीब हो गया हूँ, भूखो मर रहा हूँ तो भी यह मुझे छोड़ना नहीं चाहती।... यह कलम जिसने आज तक ऐसी बहुमूल्य सामग्री उगली है, जिसे पढ़-पढ़कर देशवासी उन्मत हो रहे हैं। जिसे पढ़कर आज युवकों के खून में उबाल आ रहा है। हूँ। इसे बेच दूँ !! हूँ। बला से मैं मर जाऊं कोई चिंता नहीं, पर तुझे न छोडूंगा मेरी प्यारी कलम ! तुझे न बेचूँगा, न बेचूँगा।"[177] इधर पुरस्कार राशि आती है और डाकिया को रिश्वत देकर राशि कोई और ले लेता है। लेकिन लेखक जानता रहता है कि पुरस्कार राशि आ गई है। जिसे वह अपने संकट के वजह से नहीं ले पता है। इसको जान सेठ फिर उसके घर में दाखिल होता है। और उसको मरा पड़ा देख कलम ले लेता है, और कलम को तोड़ता है तो उसमें से हीरा निकालता है। लेकिन तब तक प्राकृतिक प्रकोप आ जाती है। जिसकी वजह से सेठ भी मर जाता है। इस कहानी में लेखक और सेठ दोनों का मरना ही रहस्य बन जाता है।

[177] वहीं, पृष्ठ: 224

अन्य प्रतिबंधित हिन्दी कहानियां

अन्य प्रतिबंधित हिंदी कहानियों में एक कहानी यशपाल की 'दोस्त' है, दूसरी कहानी लक्ष्मीचंद्र वाजपेयी की 'लावारिस लाश', तीसरी कहानी मुक्त की 'भिखारिन', चौथी कहानी लीलावती बी.ए. की 'मजदूरिन', पांचवी कहानी जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' की 'विद्रोही के चरणों पर', छठी कहानी आचार्य चतुरसेन शस्त्री की 'फंदा', सातवी कहानी विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'फाँसी' और आठवी कहानी 'स्नेह की ज्वाला' है।

यशपाल की कहानी 'दोस्त' एक अध्यापक की कहानी है। यह कहानी विप्लव के 1939 के अंक में छपी थी और इसके केंद्र में एक अध्यापक रहता है। जो फिलोसफी पढ़ाता है। उसका तबादला देहरादून हो गया है। इससे वह काफी खुश है, और देहरादून जाने की तैयारी में लग जाता है। लेकिन उसकी पत्नी के घर से एक अकस्मात पत्र आता है। जिसके वजह से वह उसके साथ देहरादून नहीं जा पाती है। लेकिन उसको चिंता रहती है कि, उसका पति वहां अकेले कैसे रहेगा। लेकिन पति चाहता है कि मैं कुछ दिन अकेला रहूँ। इसलिए वह अकेले चला जाता है। वहाँ पहुँचकर एक नौकर रखता है। जिसका नाम फतेहसिंह रहता है। इसके बाद प्रकृति के बीच जीवन का सौन्दर्य का आनंद लेता है। लेकिन कुछ वक्त बाद उसकी पत्नी एक और मिल्खी नामक नौकर के साथ देहरादून पहुँचती है। जहाँ वह अपने पति और फतेहसिंह की अवघड़पन को देखती है। उसे काम को ठीक से न करने के वजह से डांटती-फटकारती रहती है। एक दिन उसे घर से निकल देती है। इसे सुन उसका पति बहुत दुःखी होता है। लेकिन दबाव के कारण कुछ बोल नहीं पाता है।

दूसरी कहानी 'लावारिस लाश' है। यह कहानी क्रांति पत्रिका में 1939 के अंक प्रकाशित हुई थी। एक गरीब किसान दम्पति की कहानी है। दिन भर के परिश्रम के बाद हरखू चारपाई पर लेटता है तो सोचता है कि, सारी मेहनत हमारी और मौज कोई और कर रहा है। इसी क्रम में वह इस नतीजे पर पहुँचता है कि खुद के लिए लड़ाई खुद ही लड़नी पड़ेगी। अपने पत्नी के मरने के पन्द्रह दिन के क्रिया

कर्म के बाद वह अपनी खेती किसानी जमाना चाहता है, और काम शुरू करता है। अपने खेतों में काम करता है। उसकी बेटी खाने में दो मोटी-मोटी रोटी लेकर जाती है, और अपने बाप का खाने का इंतजार करती है। लेकिन इसी बीच जमींदार के दो सिपाही पहुँचते हैं, और हरखू को मारते-पीटते जमींदार के पास ले जाते हैं। वहां उससे जबरदस्ती एक दस्खत कराया जाता है कि तुमने 25 रूपये उधार लिया है। इसके बाद हरखू को अपने बाप पर हुए इस तरह की अत्याचार की याद आती है। कुछ दिन बाद उसकी बेटी की भी हैजे से मौत हो जाती है। इधर हरखू अपने ऊपर हो रहे अन्याय से तंग आकर मरने का विचार करता है लेकिन मरना सम्भव नहीं हो पाता है। जमींदार अपने पैसे के लिए उसकी सारी सम्पति कुड़क कर लेता है। कुछ दिनों बाद हरखू की भी हैजे से मौत हो जाती है। इसके सन्दर्भ में कथाकार लिखता है "परन्तु हरखू की लाश सुबह से शाम तक एक ही स्थान पर-जहाँ वह मरा था-ज्यों-की त्यों पड़ी रही। किसी ने उसे छूने की आवश्यकता नहीं महसूस की। हैजे से मरे आदमी की लाश को आखिर छुए तो कौन ? कोई ऐसा फालतू न था कि, उसके शव को छूकर हैजे के भयानक रोग को अपने निकट बुलाता।

सूर्य अस्त हो रहे थे। उसके बहन, लाश पर हाथ-सर पटक-पटककर रो रही थी। उस नारी के शोक को शब्दों में व्यक्त करना उसके प्रति अन्याय होगा।

पर हाँ, यह मैं जरुर जानता हूँ, मैंने देखा भी है, उसकी जमीन-जायदाद के बहुत से लोग हकदार थे, परन्तु उसकी लाश...

शायद वह लवारिश थी !"[178]

अगली कहानी 'भिखारिन' है। जो सैनिक के 1928 अंक में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी में 1920 के महात्मा गाँधी की अपील पर असहयोग आन्दोलन का एक परिवार के निजी जिंदगी पर प्रभाव को चित्रित किया गया है। यह कहानी एक सम्पन्न घर के पति पत्नी को केंद्र में रखकर लिखी गई है।

[178] वहीं, पृष्ठ: 185

पति एक प्रतिष्ठित वकील है। जो अपने पेशे को नहीं छोड़ना चाहता है। जिस पेशे से अंग्रेजी सरकार को सहयोग मिलता है। वही उसकी पत्नी गाँधी से प्रभावित रहती है, खद्दर पहनती और अपने पति को भी वकीली छोड़ देश को मुक्त करने के लिए सहयोग करने की विनती करती है। लेकिन उसका पति वकालत नहीं छोड़ता है। इससे परेशान होकर वह घर छोड़कर चली जाती है। वहीं वकील पति दूसरी शादी कर लेता है। जिसके बच्चे से मिलने वह भिखारिन की जैसी आती है। एक दिन वह बच्चे को अपने साथ ले जाती है और उसको मिठाई के साथ गाँधी के आन्दोलन के बारे में बतलाती है। जिससे बच्चा उसके प्रति आकर्षित हो जाता है। लेकिन उसके पिता को पता नहीं रहता है कि, वह उसकी पहली पत्नी चुन्नी है। जब वह एक दिन उसके सामने आती है तो, वह कहता है कि, तुम्हारा हठ नहीं गया तुम अब भी खद्दर ही पहनती हो। इसको लेकर बहस होती है। जिससे उसका पति निरुत्तर हो मूर्छित हो जाता है।

चौथी कहानी 'मजदूरिन' है। जो क्रांति के 1939 अंक में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी एक मजदूरिन और उसके परिवार की दशा पर है। इसमें दिखलाया जाता है की एक तरफ धन-दौलत सम्पन्न परिवार एक महल में ऐशो आराम से रहता है। वही दूसरे तरफ उस महल को बनाने के लिए अपना खून पसीना बहाने वाले मजदूरों की स्थिति का बयान है। जिसके बारे में लिखा गया है कि "वह नन्हा सा बच्चा जब भूख से व्याकुल होकर चारों ओर सर घुमा-घुमाकर माँ के स्तन खोजता फिरता है, तो बहन 'आ ! आ !' कर उसे चुप कराने का निष्फल प्रयत्न करती रहती है। रो-रोकर बच्चे की घिग्घी बंध जाती है, पर माँ अपना काम छोड़कर कैसे उसकी पुकार सुने ? अभी ऊपर से मालिक की फटकार पड़ने लगे और पेट भरने के इस ठौर से भी वह वंचित हो जाए, तो पेट क्या बच्चे का मुँह देखकर भरेगा।"[179] वहीं दूसरे तरफ अपने मालिक के बच्चे को देखकर मुलिया अफसोसती रहती है कि एक तरफ मेरा बच्चा है। जिसे खाने को कुछ नसीब नहीं है। वहीं दूसरे तरफ वह बच्चा ही जिसके मुँह में हमेशा कुछ

[179] वहीं, पृष्ठ: 245

न कुछ ठूसा रहता है। अपने मालिक के हर बात को मुलिया गौर से ध्यान लगाकर इधर-उधर से सुनती रहती है। एक दिन वह उस दम्पति की बाते छिपकर सुनती है। जब वह अपने पति को दुत्कारती है कि दिन-रात पैसे की धुन रहती है। बच्चे की कोई फ़िक्र ही नहीं है। इससे से तो अच्छा वह मजदूर हैं। इस बात को सुनाने के बाद मुलिया को संतोष होता है कि, इस दुनिया में सब गरीब हैं।

अगली कहानी 'विद्रोही के चरणों में' है। यह कहानी चाँद के फाँसी अंक 1928 में छपी थी। इसमें एक राज्य की कहानी है। उस राज्य का राजा अपनी बेटी की शादी अपने राज्य के मंत्री के बेटे से करना चाहता है। जो एक दूसरे से प्रेम भी करते हैं। लेकिन कुंवर करुणेंद्र जिससे शादी करनी है। वह राजा को उसके अत्याचारों से अवगत करता है। लेकिन राजा उसे राजज्ञा को पालन करने की नसीहत और उसके शादी के संदर्भ को देखते हुए उस पर दया का नाटक करता है। फिर भी कुंवर नहीं मानता है, तो उसे सज़ा देने की बात करता है। इधर मंत्री के घर भी उसका बाप उससे बहस करता है, और कहता है कि मैं इस राज्य का मंत्री हूँ। अगर तुम नहीं मानोगे तो मैं तुम्हें राज्य के नियमों के हिसाब से दण्डित करूँगा। इसलिए आगे राजा और उसके शासन के खिलाफ़ विद्रोह बढ़ता है। राजा मंत्री से पूछता है कि, तुम्हारा बेटा है। उसको सम्भाल लो, लेकिन मंत्री अपने बेटे और जनता पर हो रहे अत्याचार से आक्रोषित हो जाता है, और वह राजा को जनता के सामने झुकने की सलाह देता है। परन्तु राजा उसे जेल भेजवा देता है। उधर राजा अपनी पत्नी को कुंवर का साथ देने के शक में मरवा देता है। उसके डर से उसकी बेटी भागकर कुंवर के पास पहुँचती है, और अपनी सारी व्यथा सुनाती है। तब तक राजा सेना और सेनापति को भेजकर कुंवर को गिरफ्तार करवा देता है, और उसे फांसी की सज़ा देता है। लेकिन जनता अपने आक्रोश के साथ राजमहल पर आक्रमण करती है। जिसमें उसकी सेना भी साथ रहती है, और राजा को पकड़कर फांसी की सज़ा देती है। उसकी बेटी अपने होने वाले पति के चरणों में गिर जाती है।

विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की कहानी 'फाँसी' चाँद के 1928 अंक में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी लखनऊ के दो दोस्तों की कहानी है। कामता प्रसाद डॉक्टर है और अपने औषधालय में बैठा है, और डॉक्टरी का पेशा करता है। उधर उसका दोस्त रेवतीशंकर वेश्यावृति में शामिल रहता है। सुन्दरबाई नाम की एक वेश्या से वह प्रेम भी करता है। लेकिन सुन्दरबाई कामता को जान जाती है और कामता भी दावा देने के लिए उसके पास जाता है। सुन्दरबाई उससे प्रेम करने लगती है। यह बात रेवती को बुरी लगती है और सुन्दरबाई की हत्या कर देता है। जिसके लिए पुलिस शक के आधार पर कामता को पकड़ ले जाती है, और सज़ा के रूप में फाँसी देती है। लेकिन इस फाँसी को कामता के पिता गलत मानते हैं, और रेवती शंकर असली फाँसी का हकदार बनता है।

'स्नेह की ज्वाला' कहानी एक अनाथ बच्चे की कहानी से शुरू होती है। उसके साथ घर में हो रहे व्यवहार या अत्याचार को दिखलाने की कोशिश की जाती है। नयी आई दुल्हन को उसकी सास उस बच्चे से बात करने को मना करती है। लेकिन नयी आई दुल्हन उमा को उस सात वर्ष के बच्चे पर दया आती है, और छिपकर उससे खिलाती और दुलार करती है। इसके वजह से घर में झगड़ा होता है। जिससे उमा घर छोड़कर चली जाती है। इधर बच्चे की स्थिति और दयनीय हो जाती है। घर के झगड़ों का आरोप भी उसी पर लगता है। लेकिन उमा को उस बच्चे का स्नेह नहीं छोड़ता है, और वह उसके पास आती है। उसकी जिंदगी को बचाती है।

ब्रजेन्द्रनाथ गौड़ का प्रतिबंधित उपन्यास

'पैरोल पर' ब्रजेन्द्रनाथ गौड़ का प्रतिबंधित उपन्यास है। यह उपन्यास 1943 में प्रकाशित और प्रतिबंधित हुआ। इस समय के अगर साहित्य और उपन्यास को देखा जाये तो अब तक हिंदी साहित्य की सभी विधाएं प्रतिष्ठा पा चुकी थीं। लेकिन प्रतिबंधित हिन्दी उपन्यासों का जिक्र हमारे साहित्य इतिहास से सम्बंधित पुस्तकों में नहीं मिलता है। जबकि उपन्यास और प्रतिबंधन के बारे में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि "आधुनिक युग की सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधि कला रूप बनने के लिए उपन्यास को कठिन संघर्ष करना पड़ा है। आधुनिक युग के प्रतिबंधित और तरह-तरह के सेंसरशिप के शिकार साहित्य का अगर कोई ब्योरा तैयार किया जाए तो उसमें सबसे अधिक संख्या उपन्यासों की ही होगी। उपन्यास के विरोध के अनेक कारण रहे हैं। आरम्भ से ही उपन्यास की कला में निहित लोकतान्त्रिक चेतना का विरोध सामन्ती चेतना की ओर से होता रहा है।"[180] मैनेजर पाण्डेय की यह बात बहुत हद तक सही है। लेकिन प्रतिबंधन और हिंदी भाषा में लिखे हुए उपन्यासों को देखें तो, अब तक हिंदी भाषा में लिखित दो उपन्यासों को प्रतिबंधित होने की सूचना प्राप्त हुई है। परन्तु बांग्ला और विदेशी भाषाओँ से अनुदित उपन्यासों की सूंची जरुर लम्बी है। जहाँ तक सामंती चेतना का विरोध और उपन्यास का सम्बन्ध है। उसके बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि, "इस तृतीय उत्थान में हमारा उपन्यास कहानी साहित्य ही सबसे अधिक समृद्ध हुआ। नूतन विकास लेकर आनेवाले प्रेमचंदजी जो कर गए वह तो हमारे साहित्य की एक निधि ही है, उनके अतरिक्त पं. विश्वम्भरनाथ कौशिक, बाबू बृंदावनलाल वर्मा ऐसे ऐतिहासिक उपन्यासकार उपन्यास भंडार की बहुत सुन्दर पूर्ति करते जा रहे हैं। सामाजिक उपन्यासों में देश में चलनेवाले राष्ट्रीय तथा आर्थिक आन्दोलनों का भी आभास बहुत कुछ रहता है। तअल्लुकदारों के अत्याचार, भूखे किसानों की दारुण दशा के बड़े चटकीले चित्र उनमें प्राय: पाए जाते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा केवल यही कहना है कि हमारे निपुण उपन्यासकारों

---

[180] मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, 2012, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ: 59

को केवल राजनीतिक दलों द्वारा प्रचारित बातें लेकर ही न चलना चाहिए, वस्तुस्थिति पर अपनी व्यापक दृष्टि भी डालनी चाहिए। उन्हें यह भी देखना चाहिए कि अंगरेजी राज्य जमने पर भूमि की उपज या आमदनी पर जीवन निर्वाह करनेवालों (किसानों और जम्मीदारों दोनों) की और नगर के रोजगारियों या महाजनों की परस्पर क्या स्थिति हुई। उन्हें यह भी देखना चाहिए कि राज कर्मचारियों का इतना बड़ा चक्र ग्रामवासियों के सिर पर ही चला करता है, व्यापारियों का वर्ग उससे प्राय: बचा रहता है। भूमि ही यहाँ सरकारी आय का प्रधान उदगम बना दी गई है। व्यपार श्रेणियों को यह सुभीता विदेशी व्यापार को फलता फूलता रखने के लिए दिया गया था, जिससे उनकी दशा उन्नत होती आई और भूमि से सम्बन्ध रखनेवाले सब वर्गों की- क्या जमींदार, क्या किसान, क्या मजदूर-गिरती गई।"[181] यहाँ एकदम साफ़ है कि उपन्यास विधा में यह ताकत है कि समाज में चल रहे उथल-पुथल, उंच-नीच और दमन का पूरा ब्यौरा प्रस्तुत कर सके।

प्रतिबंधित हिन्दी उपन्यासों की जो सूची है। उसमें हिन्दी भाषा में लिखित दो ही उपन्यासों का नाम है। प्रथम 'पैरोल पर' और दूसरा ऋषभचरण जैन का 'गद्दर' उपन्यास। लेकिन गद्दर उपन्यास उपलब्ध नहीं है। पैरोल पर उपन्यास की शुरुआत तीन पात्रों की बैठक से होती है। वह पात्र हैं रस्तोगी, उसकी पत्नी अमिता और कपूर। इस बैठक में मजदूरों की चल रही हड़तालों पर बातचीत है। रस्तोगी और अमिता दोनों ही मिल मालिक रहते हैं, और कपूर मजदूरों का नेता है। पहले तो मिल में मजदूरों की हड़ताल की वजहों पर बातचीत होती है। एक प्रसंग इस प्रकार है "अख़बार मेज़ पर रखकर उसने भेद भरी दृष्टि से अमिता की मुसकराती हुई आँखों के मादक भोलेपन को देखा और कहा –'जी हाँ, उम्मीद भी है कि हड़ताल के इतिहास में इस हड़ताल का खास महत्व होगा। हमें इतनी सफलता की तो आशा भी नहीं थी। इस बार मजदूरों ने निश्चय कर लिया है कि भूखे मर जायेंगे, पर अधिकार लेकर मानेंगे।'

[181] आचार्य रामचद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 2016, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ:367

रस्तोगी ने कहा-'तो आप लोग ने निश्चय कर लिया है कि हमें चैन से न बैठने देंगे ?'

कपूर ने उपहास की हँसी हँसते हुए कहा-'और आपने भी तो गरीब मजदूरों को भूखों मारने का निश्चय किया है। आप यह नहीं सोचते कि जिनकी मेहनत से आप लाखों रुपए कमाते हैं, उन्हें आप उस मेहनत के एवज में देते ही क्या हैं?''"[182] आगे मजदूरों का श्रम और उसके मूल्य पर बहस होती है। कपूर फिर प्रश्न करता है कि मजदूरों से अधिक काम क्यों लिया जा रहा है। पर्याप्त पारिश्रमिक अभी भी क्यों नहीं मिल रहा है। जब इन मांगों को लेकर वे हड़ताल पर रहते है तो पुलिस गोलीबारी करती है और कुछ मजदूर मारे जाते हैं। उसके बाद मजदूरों की स्थिति का बयान है। इसके बाद मशविरा बनाया जाता है कि, मिल मालिकों और मजदूरों को एक साथ मिलकर ही दोनों का भला हो सकता है, और उनकी मांगे जायज है। यह सुझाव कपूर रस्तोगी के सामने रखता है। परन्तु रस्तोगी उसी समय इसको ख़ारिज कर कपूर को विदा कर देता है। आमिता फिर रस्तोगी को समझाती है और कहती है, कुछ तुम झुक जाओ और कुछ मजदूर अपने शर्तों में नरमी बरते। इस बात को लेकर रस्तोगी अमिता को डांटता है। फिर आमिता उसे कहती है कि इस तरह से तो मिल बंद ही करना पड़ेगा और मिल बंद हो जाने से जितना नुकसान तुम्हारा होगा उतना ही नुकसान मजदूरों का होगा। रस्तोगी इस बात को मानता है और कपूर को वापस बुलाकर समझौते का पत्र देता है। जिस पर कहता है कि हम लोग इस पर मीटिंग में बात करेंगे। इधर मीटिंग में बात और बहस करने के बाद मान लिया जाता है और हड़ताल खत्म हो जाता है।

वहीं दूसरी तरफ अमिता कपूर से प्रेम करने लगती है। और अमिता को शंकर भी चाहता है। लेकिन अमिता उससे आकर्षित नहीं होती है। इससे चिढ़ शंकर ने संगठन में दरार पैदा कर खुद को मजदूर नेता घोषित कर देता है, और कपूर पर आरोप लगता है कि उसने रस्तोगी से मिलकर मजदूरों के आन्दोलन को कमजोर किया है। शंकर अपने भाषण में कहता है "ऐसी हालत में भाइयों, तुम्हारा फर्ज

[182] रुस्तम राय, प्रतिबंधित हिंदी साहित्य, 1999, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, पृष्ठ: 298

है कि तुम अपना ऐसा नेता चुनों, जो तुम्हारी भलाइयों की ओर ध्यान दे। तुम्हारे हक़ की खातिर तुम्हारे बनाए हुए कानूनों को न तोड़े। जिस तरह कि कपूर साहब ने मिल मालिकों से मिलकर अपनी जेबें भरीं और तुम्हारे लिए, जो कुछ उन्हें करना चाहिए था, वह न किया।"[183] जिसे सुन कपूर दुःखी होता है। इधर रस्तोगी को भी मिल यूनियन से बाहर कर दिया जाता है। इस प्रसंग को इस तरह बयाँ किया गया है "अमिता ने ड्राअर से अख़बार निकालकर कपूर की ओर बढ़ा दिया। उसमें बहुत तरह की बातें प्रकाशित हुई थीं। जिस कपूर ने मजदूरों की भलाई के लिए अपना जीवन लगा दिया, उसी कपूर को उसी के सहकारी शंकर ने अपनी बेहूदा चालबाजियों द्वारा इस तरह दूर हटा दिया है कि वह मजदूरों का कोई न रहा। मजदूरों के ह्रदय अब कपूर को कोई स्थान नहीं देना चाहते। इसी तरह मिल ओनर्स एसोसिएसन ने अमिता के स्वामी, रस्तोगी को भी उसकी गैरहाजिरी में अलग कर दिया।"[184]

कपूर कानपुर शहर छोड़ बनारस रहने के लिए जाता है। बनारस में भी उसका मन नहीं लगता है तो वह मिर्जापुर जाता है। वह लगातार सोचता रहता है कि शंकर मजदूरों को भड़का कर उनके संगठन और जीवन को खत्म कर देगा। जो मजदूरों के प्रति नरमी बरतता है। किसी काम के वजह से कपूर मिर्जापुर से लखनऊ के लिए रेल में बैठता है तो सामने बैठे दो व्यक्ति आपस में बातचीत करते हैं कि कानपुर में क्या चल रहा है। कपूर का भी पता नहीं कहाँ चला गया और शंकर में वह बात है नहीं की इस मार काट को खत्म कर सके। इस तरह की सभी बातें कपूर सुनता है और कुछ बोलता नहीं है। रेल जब बहराइच स्टेशन पर पहुँचती है तो शीला सरकार जो बंगाल कम्युनिस्ट पार्टी की नेता रहती है भागे-भागे उन दोनों व्यक्तियों के पास पहुंचती है। और कहती है कि कपूर इसी ट्रेन में है। उसको उतारों उसके लिए लखनऊ में पुलिस खड़ी है गिरफ्तार करने के लिए। कपूर को उतारा जाता है, फिर मार्क्सवादी संगठन पर बहस होती है। परन्तु कपूर गाँधी वादी रहता है। वह हिंसा को न मान अहिंसा को मानता है। जिस पर शीला कहती है "हमारा प्रान्त इस ओर शीघ्रता से आगे बढ़ रहा है मिस्टर कपूर ! हम लोग

[183] वहीं, पृष्ठ: 321

[184] वहीं, पृष्ठ: 327

गुप्त रूप से संगठन कर रहे हैं। वहाँ हमारी पार्टी में तीन सौ से ज्यादा ऐसे सदस्य हैं जो प्राणों को हथेली पर लेकर काम करने को तैयार हैं। देश अहिंसा से स्वतंत्र न होगा।"[185] ऐसी बातों को सुनकर कपूर तैयार हो जाता है, और उत्तर प्रदेश में काम शुरू करता है। इधर पुलिस कपूर को खोजती रहती है। वह शंकर के मुखबिरी के वजह से पकड़ा भी जाता है। लेकिन मार्क्सवादी पार्टी के लोगों ने उसको जेल से भागा लिया।

कथा में आगे संघर्ष केवल मिल और मजदूरों के लिए न रहकर देश से विदेशी शासन और हर वर्ग से गैर-बराबरी को हटाना मुख्य कार्य बन गया है। इसके लिए मार्क्सवादी संगठन के लोगों को उत्तर प्रदेश के सारे हिस्से में भेजा जाता है। कार्य शुरू होती लेकिन दमन भी उतना तेज होता है। इसके बारे में अमिता कहती है "ख़ास आदमियों की बात छोड़िये जो भी किसानों, मजदूरों अथवा अन्य श्रमिक वर्ग या नौजवान का हिमायती होगा, उनसे सहानुभूति रखता होगा, पुलिस द्वारा खतरनाक करार दिया जायेगा और गिरफ्तार कर लिया जाएगा।"[186] इधर रस्तोगी और शीला एक साथ मिलकर देश को आज़ाद कराने के लिए संघर्ष शुरू करते है। लेकिन रस्तोगी को भी पुलिस पकड़ ले जाती है। इधर कपूर को जेल से भागकर जिस गुप्त स्थान पर रखा जाता है। वहां से कपूर देश के लिए बलिदान की मंशा से भाग निकलता है। और कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे को रोकने के प्रयास में घायल होकर जेल चला जाता है। अमिता गर्भवती रहती है। रात के समय में मार्क्सवादी पार्टी के सदस्यों की खोजबीन में पुलिस उसके घर पर दबिश देती है। दोनों तरफ से गोलियां चलती है। जिसके दौरान अमिता की छत से गिरकर मौत हो जाती है। उसके क्रियाकर्म के लिए उसका पति पैरोल पर जेल से बाहर आता है।

---

[185] वहीं, पृष्ठ: 329

[186] वहीं, पृष्ठ: 341

यह उपन्यास कोई औपन्यासिक ढांचे के हिसाब या उपन्यास के शिल्पों को ध्यान में रखकर नहीं लिखा गया है। परन्तु जैसा की ऊपर मैनेजर पाण्डेय और आचार्य रामचद्र शुक्ल के उद्धरणों के माध्यम से उपन्यास के दायित्व और उसकी जरूरत को रखांकित किया गया है। उस पर यह उपन्यास खरा उतरता है। इस उपन्यास में यह दिखलाया गया है कि सामंतवाद और साम्राज्यवाद से संघर्ष के लिए गाँधीवादी विचारधारा और मार्क्सवादी विचारधारा के सदस्य साथ-साथ संघर्ष करते हैं, और वे लोग देश से दमित तबके की दमन को मिटाने का भरसक प्रयास करते है।

अध्याय 4:
प्रतिबंधित हिंदी नाटक

प्रतिबंधन का सामान्य अर्थ 'निषेध' होता है। लेकिन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में इसका अर्थ उस वैधानिक कार्रवाई से है जो प्रकाशन, संगठन, सभा आदि को गैर-कानूनी घोषित कर दमनात्मक रूख अपनाता है। कई बार भाषण, यात्रा आदि पर भी निषेधाज्ञा लागू कर दी जाती है। यह कार्रवाई सत्ताधारी उनके विरुद्ध करता है, जो उनकी कुरीतियों का खुलासा करता है, उनकी दुर्व्यवस्था के विरुद्ध जनता को जागरुक करता है और अपने हक़ की लड़ाई के लिए प्रेरित करता है। इसी लड़ाई की वजह से लेखकों और तरक्कीपसंद लोगों को अपनी रचना और विचार सहित विस्थापित, निर्वासित होना होता है या मृत्यु का विकल्प चुनना पड़ता है। निर्वासन के बारे में एडवर्ड सईद लिखते हैं कि "चिंतन के एक विषय के रूप में निर्वासन जितना ही आकर्षक लगता है, अनुभव के स्तर पर यह उतना ही भयावह होता है। निर्वासन नाम है उस टूटन का जो किसी मनुष्य और उसकी जन्मभूमि, उसके अपने स्व और इस स्व के वास्तविक आश्रय के बीच घटित होता है। यह एक ऐसा घाव होता है जो कभी भी भर नहीं पाता इसके अंतर्तम में छिपी व्यथा से पार पाना असम्भव होता है।"[187] औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी सरकार ने बहुत सारे स्वतन्त्रता सेनानियों से लेकर लेखकों तक को देश से निर्वासित कर दिया था। निर्वासन और प्रतिबंधन दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। दोनों का दंश एक जैसा होता है।

शासक अपने वर्चस्व और सत्ता को मजबूत करने के लिए अन्य उपकरणों के साथ 'प्रतिबन्ध' नामक उपकरण का सहारा लेता है। इसीलिए देरिदा ने साहित्य, जनतंत्र और शासक के संबंधों के बारे में लिखा है कि "साहित्य की नियति प्रतिबंध से मुक्ति के साथ बंधी है, जनतांत्रिक स्वतन्त्रता के आकाश

---

[187]एडवर्ड सईद, वर्चस्व और प्रतिरोध रामकीर्ति शुक्ल (अनु.), 2015, नयी किताब, दिल्ली, पृष्ठ376

से; जिसमें मुद्रण और प्रकाशन की स्वतन्त्रता के साथ बोलने की स्वतन्त्रता भी शामिल है। साहित्य के बिना जनतंत्र सम्भव नहीं है और जनतंत्र के अभाव में साहित्य भी मुमकिन नहीं है। यह सम्भव है कि कोई व्यक्ति दोनों में-से किसी को न चाहे। इन दोनों के बिना अपना काम करने वाले शासकों की भी कमी नहीं है, दोनों को बिना शर्त अच्छा और अनिवार्य न मानने वालों का अभाव नहीं है। लेकिन किसी भी स्थिति में एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। यह सब मानते हैं कि जब भी किसी साहित्यिक कृति पर प्रतिबंध लगाया जाता है तब जनतंत्र खतरे में होता है। साहित्य की सम्भावना, समाज द्वारा दी गयी वैधता, उसके बारे में संदेह या भय का शमन आदि मिलजुलकर उसे कोई भी सवाल पूछने, सभी कट्टरताओं पर संदेह करने, यहाँ तक कि नैतिकता और उत्तरदायित्व की राजनीति से सम्बद्ध मान्यताओं का भी विश्लेषण करने की छूट देते हैं।"[188] यहाँ देरिदा ने सही इंगित किया है कि साहित्य के बिना जनतंत्र सम्भव नहीं है। साहित्य और समाज का रिश्ता गहरा होता है। किसी भी संवेदनशील रचनाकार के लिए समाज एक थेरेपी जैसा काम करता है, लेकिन जब देश की सत्ता विदेशी शासक के हाथ में हो तो लेखकीय जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। उस समय लेखक अपनी रचनाओं में विदेशी शासन द्वारा किये जा रहे दमन को उकेरता भी है और साथ-साथ उस विदेशी सत्ता से मुठभेड़ कर देश को मुक्त कराने की कोशिश भी करता है। इसी वजह से उसको शासक प्रताड़ित और उसकी रचनाओं को प्रतिबंधित करता है।

भारत में अंग्रेजी राज के दौरान इस उपकरण का अंग्रेजी शासकों ने खूब सहारा लिया। शुरुआत में अंग्रेजी सरकार ने साहित्य को अपने सरोकारों से दूर रखने की कोशिश की लेकिन इससे सफलता न मिलता देख और जन मानस के बीच साहित्य की पहुँच को देखते हुए प्रतिबन्ध का सहारा लिया, नतीजन 'विभिन्न भारतीय भाषाओं में 3908 पुस्तकें प्रतिबंधित हुई। जिसमें हिंदी की सर्वाधिक 1391 पुस्तकें प्रतिबंधित हुई।'[189] भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी (उपनिवेश स्थापित करने का पहला प्रयास)

[188]मैनेजर पाण्डेय द्वारा उद्धृत, आलोचना में सहमती असहमति, 2013, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली: पृष्ठ 33

[189]Barrier Gerald N, Banned controversial literature and political control in British India 1907-1947, 1976, Manohar publication New Delhi : P. 167

की स्थापना से लेकर 20वीं सदी के मध्य तक अंग्रेजी राज कायम था। लेकिन 18वीं सदी के मध्य के बाद इन उपनिवेशवादी ताकतों को अपनी स्थिति भारत में मजबूत करने की जरूरत महसूस हुई। जिसे बिना कानून का सहारा लिए नहीं किया जा सकता था। इसलिए 'केवल 1799ई. से 1931ई. तक प्रेस और सेंसरशिप से सम्बंधित 13 कानून बनाये गये और संशोधित किये गये।'[190] इन कानूनों के जरिये प्रतिबंधित पुस्तकों के लेखकों के ऊपर मुख्यतः राजद्रोह की धाराएँ जैसे -124ए और 153ए लगायी जाती थीं। अगर हम प्रतिबन्ध के इतिहास को देखें तो सम्राट ऑगस्टस (27ई. पू.- 14 ई.) यूरोप में पहला शासक था 'जिसने लिखे या बोले शब्द को दण्डित करने का प्रयास किया था।'[191] लेकिन यूरोप में उस दौर में या बाद के दौर तक धर्म और नीति से सम्बंधित पुस्तकें ही प्रतिबंधित या जलाई जाती थीं। जिस प्रकार प्रतिबन्ध सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक बदलाव के लिए बहस को दबाने के लिए होता है, उसी प्रकार औपनिवेशिक प्रतिबन्ध मुख्यतः उपनिवेशितों की अभिव्यक्ति की धार कुंद करने का हथियार था।

भारत में उपनिवेशवाद आर्थिक आधार पर स्थापित हुआ। और अंत तक उसका आधार आर्थिक शोषण ही रहा। लेकिन इसके साधन के रूप में राजनीतिक और सामाजिक प्रभुत्व को अपनाया गया। संतोष भदौरिया ने जैकवाडिस का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "भारत में अंग्रेजी उपनिवेशवाद शासन का मुख्य उद्देश्य था आर्थिक शोषण करना। यह तथ्य है कि उस समय बिना राजनीतिक पराधीनता के किसी भी देश का आर्थिक शोषण नहीं किया जा सकता था। आर्थिक दोहन की अनिवार्य शर्त है- राजनीतिक प्रभुत्व कायम करना। प्रसिद्ध अमरीकी विद्वान जैकवाडिस ने उपनिवेशवाद की व्याख्या करते हुए लिखा है –' उपनिवेशवाद का राजनीतिक सारतत्व है- राजसत्ता के आधार पर एक देश द्वारा दूसरे देश को प्रत्यक्ष रूप से पूरी तरह अधीन रखना। इसमें राजसत्ता

---

190 Blog Access date 06/05/2018, https://netjrfmasscomm.blogspot.in/2010/04/major-press-laws-enacted-during-british.html

191 नरेंद्र शुक्ल, उपनिवेश, अभिव्यक्ति और प्रतिबन्ध, 2017, अनन्य प्रकाशन,दिल्ली: पृष्ठ 14

प्रभुत्वशाली विदेशी शक्ति के हाथों में होती है' ।''[192] प्रतिबंधित हिंदी साहित्य में इस आर्थिक शोषण का दर्द खूब सुनाई पड़ता है। एक उदाहरण बाबूरामपेंगोरिया की प्रतिबंधित कविता 'जुलाहों के साथ अत्याचार' से लिया जा सकता है –

''देखो भाइयों ध्यान लगा कर भारत में यह अत्याचार।
किस प्रकार से नष्ट हुआ भारत का सारा व्यापार।
वोल्टस ने अत्याचारों का पूरा विवर्ण दिया बताय।
हमरे अत्याचारों के कारण ही भई दुर्दशा जुलाहिन क्यार।।''[193]

भारतीय इतिहास के अंग्रेजी राज और उससे मुक्ति के लिए किये गये गए संघर्ष में साहित्य की एक क्रांतिकारी भूमिका है। देश को ब्रिटिश शासन की गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए एक ओर जहाँ आन्दोलनकारी, क्रांतिकारी तथा जन समुदाय सक्रिय था, वहीं दूसरी ओर इस दौर में लिखे गए तमाम साहित्य, आज़ादी की भावना को प्रेरित करने, साम्राज्यवादी शक्तियों को उखाड़ फेंकने के लिए, जनता को उत्साहित करने में अहम् भूमिका निभा रहा था। सेंसरशिप के बावजूद लेखकों में कोई खौफ न था। सजा भुगतने के बाद भी ये अपने तरीके से साहित्यिक कृतियों के माध्यम से जनता को उद्वेलित कर रहे थे । ऐसा साहित्य शासन के लिए खतरनाक साबित हो रहा था। नतीजतन आज़ादी की भावना से अनुप्राणित सारी रचनाओं को जब्त कर लिया गया। ऐसा सभी भाषाओं में रचित विधाओं (कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ, नाटक, गीत, लोक-गीत, नज्म-गज़ल) इसके आलावा इतिहास की पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएं, पैम्पलेट, इश्तिहार इत्यादि भी भारी मात्रा में जब्त हुए। इनके प्रतिबंधित होने का मुख्य कारण यह था कि ये जनता को ब्रिटिश शासन के खिलाफ भड़काने में अपनी अहम् भूमिका निभा रहे थे।

हिंदी नाटक 19वीं सदी के मध्य से ही असल रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र इसके प्रथम स्तम्भ के रूप में हमारे सामने आते हैं। भारतेंदु ने नाटक के बारे में लिखा है कि

[192]**Blog Access date 06/05/2018,http://www.hindisamay.com/content/1081/1/संतोष-भदौरिया-आलोचना-प्रतिबंधित-सच-का-आर्थिक-रोज़नामचा.**

[193]प्रतिबंधित हिंदी कविताएं, सम्पा-मधुलिकाबेन पटेल, स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली : पृष्ठ 127

“राजनीति धर्मनीति, आन्विक्षिकी, दंडनीति, संधि, विग्रह प्रभृतिराजगुण, मन्त्रणाछतुरी, आद्य करुणा, प्रभृतिरस, विभाव, अनुभाव व्यभिचारी भाव, तथा सात्विक भाव तथा व्यय, वृद्धि, स्थान प्रभृति त्रिवर्ग की समालोचना में सम्यक रूप समर्थ हो तब नाटक लिखने को लेखनी धारण करें।”[194] प्रतिबंधित हिंदी साहित्य और नाटकों पर संवाद करना उनसे जुड़ी स्मृतियों को और ताज़ा कर देने जैसा है। प्रतिबंधन के मानदंड में अंग्रेजी सरकार ने निहित ही किया था कि स्वतन्त्रता आन्दोलन से सम्बन्धित महानायकों और अंग्रेजी राज की करतूतों पर लिखी रचना प्रतिबन्धित की जाएगी। प्रतिबंधित हिंदी नाटकों में अंग्रेजी सरकार द्वारा निषेधित विषयों को बखूबी चित्रित किया गया है।

“स्वदेशीय तथा भिन्न देशीय सामाजिक रीति व्यवहार रीति पद्धति का निदान फल और परिणाम इन तीनों का विशिष्ट अनुसन्धान, नाटक रचना का उत्कृष्ट उपाय है।”[195] इस प्रकार नाटक लेखन हेतु परम्परा और समकालीनता के साथ व्यवहार और संस्कृति का ज्ञान होना जरुरी है। इसीलिए भारतेंदु ने ‘भारत दुर्दशा’ नामक हिंदी का प्रथम राजनीतिक नाटक लिखा और उसमें परम्परा और समकालीनता का सम्मिश्रण किया है। भारतेंदु ने इसमें समकालीनता को रेखांकित करने के लिए लिखा कि,-

“अँगरेजी राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेशचलि जात इहै अति ख़्वारी ॥
ताहूपै महँगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुःख ईसदेतहाहारी ॥
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हाहा! भारतदुर्दशा न देखी जाई ॥”[196]

---

[194] नाटक, ‘भारतेंदु हरिश्चंद्र ‘ सम्पादक अजीत पुष्कल और हरिशचंद्रअग्रवाल, नाटक के सौ बरस, 2001. शिल्पायन, दिल्ली: पृष्ठ 17

[195] वहीं 17

[196]भारतेंदु हरिश्चंद्र. ‘भारत दुर्दशा’ सेhttp://www.hindisamay.com/content/40/1/%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4%E0%A5%87%E0%A4%82%E0%A4%A6%E0%A5%81-%E0%A4%B9%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%9A%E0%A4%82%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0--%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%9F%E0%A4%95-%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4%E0%A4%A6%E0%A5%81%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A4%B6%E0%A4%BE.cspx

इस नाटक में भारतेंदु ने भारत के सुखमय अतीत को दर्शाते हुए समकालीन अंग्रेजी राज की लूट को मार्मिक ढंग से उकेरा है। भारतेंदु के उपरांत हिंदी नाटक की गति थोड़ी धीमी दिखायी पड़ती है। 20वीं सदी के आरम्भ के एक दशक बाद जयशंकर प्रसाद ने हिंदी नाटकों को फिर से उँचाई प्रदान करने की कोशिश की। इस सन्दर्भ में गिरीश रस्तोगी लिखती हैं कि "भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी नाटक को एवं नाट्य- कला को जन्म दिया, प्रसाद ने उसे एक नयी दिशा दी, विषय और शैली की दृष्टि से उसे चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। प्रसाद ने पूरे हिंदी साहित्य में जागरण की सांस्कृतिक चेतना की, राष्ट्रीय भावना की, करुणा और प्रेम की, उद्दात मानवीय भावों और आदर्शों की लहर सी दौड़ा दी। उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने नाटक ही नहीं, कविता, निबंध, कहानी, उपन्यास, आलोचना सभी माध्यमों से हिंदी साहित्य को नयी शैली-शिल्प, नये रूप दिए। प्रसाद के नाटक हिंदी नाट्य- साहित्य में एक नया अध्याय खोलते हैं।"[197] भारतेंदु और प्रसाद दोनों ही हिंदी नाटक के उत्स-गर्भ भी हैं और समृद्धि भी। इन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज की दयनीय दशा को अपने तीक्ष्ण रचनात्मक विवेक से पकड़ा और अपनी रचनाओ में समाहित किया। लगभग इसी प्रकार की विषय- वस्तु स्वतन्त्रता कालीन साहित्य में देखने को मिलता है। भारतेंदु ने जब हिंदी साहित्य में प्रवेश किया तब से लगभग दो-ढाई सौ वर्ष पूर्व ही ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के साथ ही भारत में औपनिवेशिक साम्राज्य के पदचिन्ह दिखने लगे थे। 1857 के संग्राम के बाद यह साम्राज्य खुले रूप में सामने आया। तब हिंदी साहित्य का विषय-वस्तु राजदरबारों तक सीमित था। इसके बारे में रामविलास शर्मा ने लिखा है "देश में नए सांस्कृतिक और राजनीतिक जागरण के साथ-साथ आधुनिक हिंदी का जन्म हुआ और उसका साहित्य क्रमशः विकसित होता गया। ...1857 के पहले और कुछ दिन बाद तक विकसित और पुष्ट गद्य के बिना भी साहित्य अधूरा नहीं माना जाता था। लेकिन अब परिस्थितियाँ बदल रही थीं। ...सामाजिक सुधार नयी धारा का एक आवश्यक अंग था। तभी से यह परम्परा चली कि स्वाधीनता आन्दोलन के नेता समाज-सुधारक भी हों और अपने राजनीतिक प्रचार में सुधारों की बात भी कहें। भारतेंदु काल में प्रत्येक सजग

[197]गिरीश रस्तोगी, हिंदी नाटक का आत्मसंघर्ष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं 2017, पृष्ट 30

लेखक राष्ट्रीयता की नई कल्पना से प्रभावित दिखाई पड़ता है।"[198] इसी सजगता की राह पकड़े हिंदी साहित्य की विषय-वस्तु उत्तरोत्तर वृद्धि करती रही। लेकिन प्रतिबंधन जैसा विषय हिंदी साहित्य की पकड़ से अब भी बाहर था। जिसके रचनाकार तत्कालीन समाज की रुढियों से मुक्ति की हर संभव कामना लिए लगातार हिंदी साहित्य को समृद्ध किये जा रहे थे। अगर देखा जाय तो जितनी आग इन रचनाओं में मौजूद है अन्य तत्कालीन रचनाओं में मौजूद नहीं है। इसी वजह से उस समय की अंग्रेजी सरकार ने हिंदी की लगभग 1391 पुस्तकें ज़ब्त कर ली। इन पुस्तकों में स्वतंत्रता की चाह इतनी तीव्र थी की अंग्रेजी सरकार इससे घबड़ा गयी। इन्हीं प्रतिबंधित पुस्तकों के साथ नाटक भी प्रतिबंधित हुआ। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान जननायकों के प्रभाव, आम जन मानस और नाटकों के संदर्भ में नरेंद्र शुक्ल ने अपने पुस्तक में एक घटना का जिक्र किया है। "पंजाब को छोडिये, सुदूर दक्षिण में मंगलौर से 40 किलोमीटर दूर एक गाँव में अप्रैल की एक गर्म दुपहरी में जब घर के बड़े बुजुर्ग घरों में आराम कर रहे थे, कुछ युवा बच्चे बगीचे में पेड़ों के नीचे एक प्रहसन में व्यस्त थे। नाटक कुछ इस तरह खेला जा रहा था। दो बालक न्यायाधीश की भूमिका में थे। उनमें से तीन भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु बने थे। न्यायधीशों ने अपना फ़ैसला सुनाया। अपराधियों ने अपना फ़ैसला हँसकर सुना और उसी समय एक गगनभेदी नारा गूँजा 'इंकलाब जिंदाबाद'। दृश्य बदल गया। कुछ बच्चे कांस्टेबल की भूमिका में आ गए। वे अपराधियों को फांसी के स्थल तक ले गए। पेड़ की एक डाल पर रस्सी डालकर फांसी की गाँठ लगाई गयी। भगत सिंह की भूमिका वाले बच्चे को स्टूल पर खड़ा किया गया। बच्चे का हाथ-पाँव बाँधकर रस्सी गले में डाल दी गयी। जाने कैसे स्टूल गिर गया अगले ही पल बच्चे की आँख पथरा गयीं, वह मर गया। "[199] यह घटना देखने में महज एक बच्चों का खेल प्रतीत होता है, लेकिन यह घटना उस देश की गुलामी और उससे मुक्ति लिए जन नायकों के बलिदान को प्रमाण सहित प्रस्तुत करता है। साथ ही यह भी दिखलाता है कि स्वतन्त्रता आंदोलन के जन नायकों की पहुँच आम-जन में

[198]रामविलास शर्मा, मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, अरुणोदय प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1994, पृष्ठ10

[199]डॉ. नरेंद्र शुक्ल, ब्रिटिश राज और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, 2017, वाणी प्रकाशन नयीदिल्ली: पृष्ठ 83

कैसी थी कि बच्चों तक ने स्वतन्त्रता सेनानियों का संकल्प अपने ज़ेहन में बैठा लिया था और अपने बचपने में भी शामिल कर लिया था।

सतेन्द्र कुमार तनेजा ने सात ज़ब्तशुदा हिंदी नाटकों को 'सितम की इन्तिहा क्या है ?' नाम से सम्पादित किया है। उनके द्वारा सम्पादित हिंदी नाटकों की सूची इस प्रकार है 1. लक्ष्मण सिंह –'कुली प्रथा'-1916, 2.किशनचन्दजेबा- 'जख्मी पंजाब'- 1922, 3. देवदत्त- 'शासन की पोल'-1922, 4. पाण्डेयबेचन शर्मा उग्र- 'लाल क्रांति के पंजे में'-1924, 5. गोबिंदराम- 'बरबादिय हिन्द'-1929, 6. अज्ञात- 'रक्त-ध्वज'- 1931, 7. बुद्धिनाथ झा कैरव- 'लवणलीला'- 1931। इन सभी नाटकों का रचनाकाल 1916 से 1931 तक का है या गाँधी के भारत आगमन के बाद का है और इनमें निहित विषय-वस्तु भारतीय जनता का अंग्रेजी सरकार द्वारा शोषण के साथ ही महात्मा गाँधी की गतिविधि भी है। इसके बारे में स्वयं सम्पादक सत्येन्द्र कुमार तनेजा ने लिखा कि "ज़ब्तशुदा साहित्य इसलिए ज़ब्त हुआ क्योंकि उसमें मुक्ति की ज्वाला धधक रही थी। देश की इस अमूल्य धरोहर को राष्ट्रीय संग्राम के परिप्रेक्ष्य में देखना- परखना होगा। विद्रोह-मूलक प्रकृति इस साहित्य की विशिष्टता है। इस साहित्य का मूल्यांकन करते समय उसके साथ न्याय तभी हो पायेगा यदि साहित्य के अतिरिक्त इतिहास, राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र आदि से जुड़े पहलुओं पर नज़र रखी जाए। समकालीन राजनैतिक आन्दोलन और उनके पीछे कार्य कर रही शक्तियों और उनके असर पर भी ध्यान देना होगा।"[200] इस उद्धरण से प्रतिबंधित हिंदी नाटकों का फलक और उसके विस्तार का अंदाजा लगाया जा सकता है। ये नाटक मोटे तौर पर ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के निमित्त और इस सत्ता की करतूतों को उजागर करने के लिए लिखे गए थे। ये नाटक कला के स्तर पर कमजोर होते हुए भी जनता के बीच पकड़ के स्तर पर बहुत मजबूत दिखायी पड़ते हैं।

[200]सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 'सितम की इन्तिहा क्या है ?: सातज़ब्तशुदा हिंदी नाटक', राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय. 2010 नई दिल्ली, पृष्ठ: 32

जैसा की ऊपर संकेत किया गया है कि प्रतिबंधन की अवधारणा भी यूरोपीय अवधारणा है। हालाँकि भारत में प्रतिबंधन को पेशेवर तरीके से मान्यता नहीं मिली हुई थी। जिस तरह से अंग्रेजी सरकार ने अपने शासन काल में प्रदर्शित किया। भारतीय इतिहास के मध्यकाल और उससे पहले सिद्ध-नाथ सम्प्रदाय और कबीर आदि जैसे रचनाकारों और समाज सुधारकों के साथ बर्ताव को देखें तो रूढ़िवादिता के खिलाफ लिखे जाने और भाषायी वर्चस्व के विरुद्ध या चुनौती देने पर रचनाकारों, विचारों को अवश्य दबाया और प्रताड़ित किया गया है। लेकिन यहाँ हमें एक बात स्वीकार करनी चाहिए कि भारत में कठोर दंड के माध्यम से प्रायश्चित्त करने और प्राण दंड की सजा हत्या आदि के सन्दर्भ प्रचलित थे। प्राण दंड के औचित्य और अनौचित्य पर विद्वानों की सोच द्रष्टव्य है "प्राण दंड के अतिरिक्त अन्य दंडों को बड़ी आसानी के साथ सुधारात्मक प्रवृति का सिद्ध किया जा सकता है। परन्तु प्राण दंड के सम्बन्ध में यह स्थापना नहीं की जा सकती, क्योंकि प्राणदंड दे देने पर अपराधी के भौतिक शरीर का पूर्ण विनाश हो जाता है, इस अवस्था में उसे सुधार का अवसर नहीं होता।"[201] यह बात उस समय की है जब नैतिक और अनैतिक का भेद बहुत सीमित था। इससे संबधित कानूनों को समझने के लिए 'मनुस्मृति और आपस्तम्ब सूत्र' जैसे ग्रन्थ देखे जा सकते हैं। लेकिन कोई औपचारिक कानून तब तक नहीं बना था और ना ही कोई संस्था थी । राजा की स्वेच्छा से प्रतिबंधन होता था। यही प्रक्रिया कभी नरमी कभी कठोरता के साथ भारत में 19वीं सदी में अंग्रेजी सरकार ने अपनाया। भारत में प्रथम नाटक 'नील दर्पण' (1860, बँगला), जिसके लेखक दीनबंधु मित्र थे, प्रतिबंधित हुआ। इसे 1876 में प्रतिबंधित कर दिया गया। इसके बाद ड्रेमेटिक परफॉर्मेन्सेज कन्ट्रोल एक्ट 1876 के तहत भारी मात्रा में नाटक प्रतिबंधित किये गए । 'नील दर्पण' नाटक नील की खेती करने वाले किसानों के उत्पीड़न पर आधारित है। इसके बारे में सत्येन्द्र कुमार तनेजा ने लिखा है कि " 'नील दर्पण' वह पहला नाटक है जिसके लेखक ने अपने भीतरी ज्वार को अनुशासित रखा, परन्तु साम्राज्यवाद की विकृतियों के अनावरण में कोई कमी न छोड़ी। 1875 में हुए इसी नाटक के लखनऊ-प्रदर्शन से सरकार बखूबी समझ

[201]नरेश चतुर्वेदी(सं), चाँद : फाँसी अंक,2014, राधाकृष्ण, नयी दिल्ली, पृष्ठ: 28

गई कि प्रकाशित नाटक से कहीं अधिक उसका मंचन कितनी चिंताजनक स्थिति पैदा कर सकता है ।"[202] इस पक्ष के अलावा अंग्रेजी सरकार के नाटकों के प्रदर्शन और प्रकाशन से डर को देखने के लिए नरेंद्र शुक्ल द्वारा उद्धृत 6-9 मई 1910 को भारत में ब्रिटिश के अतरिक्त उपसचिव का पत्र देखा जा सकता है । जिसमें वह लिखता है "भारत सरकार निश्चित कारणों से यह विश्वास करती है कि भारतीय प्रेस अधिनियम (1910 का-I) के पारित होने के बाद नाटक कंपनियों और तथाकथित जात्रा पार्टियों द्वारा राजद्रोह पूर्ण विचारों वाले नाटकों के द्वारा प्रदर्शन के माध्यम से राजद्रोही विचारों का प्रसार बड़ी तेजी से बढ़ा । 'ड्रोमेटिक परफारमेंस एक्ट, 1876 (1876 का XII) द्वारा स्थानीय सरकारों को इन परिस्थितियों से निपटने की सारी शक्तियाँ दी गई हैं । तदनुसार मैं लेफ्टिनेंट गवर्नर का इन प्रावधानों की ओर ध्यान दिलाते हुए सुझाव देना चाहता हूँ कि वे इसके माध्यम से इस (राजद्रोह) प्रवृति को रोकने में सफल होंगे ।"[203] साहित्यिक विधाओं में नाटक सर्वाधिक सम्प्रेषणीय विधाओं में से एक है । इसी सम्प्रेषणीयता की वजह से शासकीय दमन और शोषण को उजागर अपने अभिनेयता के माध्यम से करता है । अंग्रेजी राज में भारी मात्र में नाटक लिखे और मंचित तो हुए, लेकिन अंग्रेजी सरकार की दमनात्मक रुख की वजह से प्रकाशित न हो सका । यहाँ तक स्वतंत्र भारत में भी नाटक और नाटककारों का इतना प्रभाव था कि सफदर हाशमी जैसे नाटककारों को हत्या को गले लगाना पड़ा ।

प्रथम प्रतिबंधित नाटक 'कुली-प्रथा' है । इस नाटक को 1916 में प्रकाशित होते ही सरकार ने ज़ब्त कर लिया । इसके लेखक लक्ष्मण सिंह हैं, जो प्रसिद्ध कवयित्री सुभद्रा कुमरी चौहान के शौहर थे । यह नाटक भारतीय मजदूरों की व्यथा है, जिन्हें पैसा, सुख और भगवान का लालच दिखा कर विदेशी द्वीपों पर मजदूरी के लिए ले जाया गया, और वहाँ की स्थिति का वर्णन है । ऐसा माना जाता है कि 1843-1920 के बीच एग्रीमेंट के तहत फिजी, गयाना, त्रिनिदाद, मारीशस, सूरीनाम और नेटाल

---

[202]सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 'सितम की इन्तिहा क्या है ?: सातज़ब्तशुदा हिंदी नाटक', राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय. 2010, नई दिल्ली, पृष्ठ: 23

[203]नरेंद्र शुक्ल, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और प्रतिबंधित साहित्य, संयुक्त प्रान्त के विशेष सन्दर्भ में (1907-1935), (सामयिक प्रकाशन समाज और इतिहास, नवीन श्रृंखला-6 के तहत प्रकाशित परचा), 2014, नेहरू स्मारक एवं पुस्तकालय,नई दिल्ली: पृष्ठ:10

ले जाये गए मजदूरों को गिरमिटिया मजदूर कहा जाता है। इस प्रवास के दौरान गिरमिटिया मजदूरों पर जो अत्याचार हुआ। उससे देश और विदेश दोनों में हलचल पैदा हुई। इस प्रथा पर संकेत करते हुए महात्मा गाँधी ने लिखा है कि "मजदूरों को नेटाल हिन्दुस्तानियों ने किस तरह ठगा, कैसे उनके जाल में फंसकर ये लोग नेटाल पहुंचे, वहां पहुंचने पर उनकी आंखे कैसे खुलीं, आँख खुल जाने पर भी वे नेटाल में क्यों बने रहे, कैसे उनके पीछे दूसरे भी वहाँ पहुंचे, वहां पहुंचकर उन्होंने धर्म और नीति के सारे बंधन कैसे तोड़ फेंके अथवा ये बंधन खुद टूट गए, कैसे विवाहिता पत्नी और वेश्या के बीच का भेद तक नहीं रहा, इस सबकी कहानी तो इस छोटी-सी पुस्तक में लिखी ही नहीं जा सकती।

इन मजदूरों को नेटाल में एग्रीमेंट में गए हुए मजदूर कहते हैं। इससे ये अपने –आपको 'गिरमिटिया' कहने लगे। इसलिए आगे से हम 'एग्रीमेंट' को 'गिरमिट' और उसके अन्दर गए हुए मजदूरों को गिरमिटिया कहेंगे।"[204] कुली बना ले जाने की प्रथा से भारतीय समाज आतंकित था। जिसका चित्रण इस नाटक में भी मिलेगा। लेकिन इस भयावह समस्या को देखते हुए उस समय के प्रमुख रचनाकारों ने अपने लेखन में इस प्रथा की खामियों को उजागर किया। इसमें तोताराम सनाढ्य माखनलाल चतुर्वेदी और प्रेमचंद इत्यादि प्रमुख थे।

दूसरा नाटक 'जख्मी पंजाब' जलियांवालाबाग हत्याकांड जनरल डायर, रोलैट एक्ट मार्शल लॉ जैसे अंग्रेजों की दमनात्मक नीति के साथ तिलक, गाँधी जैसे महानायकों द्वारा हो रहे प्रतिरोधों पर केन्द्रित है। माशर्ल लॉ के सदर्भ में इस नाटक में एक प्रसंग इस प्रकार है

"नटी : मार्शल लॉ ने क्या अनर्थ किया?

नट : वह अनर्थ जो आज तक किसी न्यायशील हाकिम ने अपनी निर्दोष प्रजा पर नहीं किया। चीन, जापान, रूस, ईरान, तुर्की, अर्बिस्तान, फ्रांस, इंगलिस्तान का इतिहास खोलकर

[204] मोहनदास करमचंद गाँधी, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, श्री कालिका प्रसाद (अनुवादक),2011, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ: 33

देखो, मगर ऐसी करुणाजनक घटना कहीं न पाओगे। कहने को मार्शल ला दो शब्द है, जरा-सी ज़बान हिलाने का नाम है, परन्तु भारत में आज इस मार्शल ला की बदौलत कितनी आत्माओं का जीना हराम है, घर-घर में कुहराम है।"[205] यह संवाद ही मोटे तौर पर नाटक की केन्द्रीय विषय वस्तु है। नाटक में आगे भारतीय गुलामी से उत्पन्न समस्याओं का जिक्र है। जिसके लिए आम-जनता सत्याग्रह शुरू करती है। उसके बाद डायर का प्रसंग है। जो दमन पर उतारू है। नाटक के आखिरी हिस्से में नरसंहार से उत्पन्न परस्थितियों और घटनाओं का वर्णन है। यह नाटक पढ़ते हुए ऐसा लग सकता है कि जलियाँवाला बाग़ नरसंहार के माध्यम से किशनचंद जेबा भारतीय जन समुदाय को अंग्रेजी दमन की हकीकत को बतलाना चाहते हों।

तीसरे नाटक (शासन की पोल) में दो भाइयों के बीच स्वतन्त्रता को लेकर संवाद है। यह नाटक आकार में महज ग्यारह पृष्ठ का है। इस में मोहन और सोहन दो ही पात्र के माध्यम से देश की स्थित और अपनी भूमिका को लेकर संवाद है। एक पात्र अपनी महत्वकंक्षाओं और परिस्थितिओं के चपेट में है, और सरकार का सहयोग करना चाहता है। वहीं दूसरा पात्र सोहन असहयोग आन्दोलन और अंग्रेजी दमन के खिलाफ है। और कहता है "आज 'सरोज नगरी' में एक नया ही रंग दिखाई दे रहा है जिधर देखिए उधर ही अलग-अलग दलबंदियाँ दिखाई दे रही हैं 'जिसकी ढपली उसकी राग' की कहावत चरितार्थ हो रही है एक देश और जाति में पक्ष है तो दूसरा विपक्ष एक देश की उन्नति के लिए जेल और काले पानी की यातनाएँ भोग रहा है तो दूसरा अपने भाइयों की गर्दनों पर छुरी फेर रहा है।"[206] दोनों में सरकार की नीतियों और

---

[205] किशनचंद जेबा 'ज़ख़्मी पंजाब', सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 'सितम की इन्तिहा क्या है ?: सातज़ब्तशुदा हिंदी नाटक', 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय. नई दिल्ली, पृष्ठ 243

[206] देवदत्त, 'शासन की पोल', सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 'सितम की इन्तिहा क्या है ?: सातज़ब्तशुदा हिंदी नाटक', 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय. नई दिल्ली, पृष्ठ 229

भारतीय प्रजा स्थिति को लेकर खूब बहस होती है । अंततः दोनों देश की स्वाधीनता और अंग्रेजी हुकूमत का असहयोग को स्वीकार करते हैं ।

'लाल क्रांति के पंजे में' पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का एकांकी नाटक है, जो रुसी क्रांति और लेनिन के महत्व पर केन्द्रित है । इसके बारे में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि "'लाल क्रांति के पंजे में' एकांकी नाटक है जो रूस की बोल्शेविक क्रांति के आरम्भिक एक दिन की घटना पर केन्द्रित है । इस एकांकी में ज़ार निकोलस के आतंककारी शासन के अंत, रूस की बोल्शेविक क्रांति की विजय और ज़ार के पूरे परिवार का अंत होता है ।... उग्र जी की यह एकांकी गोरखपुर से निकलने वाली पत्रिका 'स्वदेश' के 1924 के विजयांक में छपी थी जिसके अतिथि सम्पादक उग्र जी ही थे ।... ऐसा नहीं है कि उग्र जी ने रूस की बोल्शेविक क्रान्ति की तारीफ में अचानक ही यह नाटक लिखा । उन्होंने रुसी समाज, वहां की जनता और क्रांतिकारी प्रक्रिया को ध्यान में रखकर 1923-24 के बीच छह कहानियां लिखी थीं । ये कहानियां हैं पागल, निहलिस्ट, स्वदेश के लिए, कर्तव्य और प्रेम, वीर कन्या और भीषण असंतोष । ये कहानियाँ आज, स्वदेश, मतवाला और प्रताप में छपीं । इन कहानियों में एक ओर ज़ारशाही के जुल्म और दमन का चित्रण है तो दूसरी ओर जनता के आक्रोश और विद्रोह की व्यंजना भी है । इन कहानियों को पढ़कर लगता है कि उग्र जी ने पूरी तैयारी और जानकारी के बाद 'लाल क्रांति के पंजे में' एकांकी लिखा था ।"[207] मैनेजर पाण्डेय की यह बात सही जान पड़ती है । एकांकी कला के हिसाब से यह एकांकी नाटक भले ही कमजोर दिखे लेकिन विषय-वस्तु के रूप में रूस की बोल्शेविक क्रांति को ठीक से रेखंकित किया गया है । इस एकांकी में उग्र अपनी साम्राज्यवाद विरोधी चेतना और विचारधारा को भी स्पष्ट करते चलते है । उन्होंने ज़ार से कहलवाया है कि "क्रांति-क्रांति-क्रांति ! मुझे स्वप्न में भी ऐसी आशा नहीं थी कि मेरे साम्राज्य में क्रांति के भयंकर पैर पड़ेंगे । रूस की जनता की नज़रों में मैं सर्वशक्तिमान परमात्मा था, उससे

[207]मैनेजर पाण्डेय, 'आलोचना में सहमती असहमति', 2013, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 169

भी कुछ बड़ा था पर क्रांति के दर्शन करते ही मेरी सम्पूर्ण शक्तियाँ लुप्त हो गई ! क्रांतिकारियों ने बोल्डोगोई स्टेशन के आगे की लाइनें उखाड़ दीं। सम्राट का रथ रोक दिया गया ! किस सम्राट का ? जो अपनी भ्रू-भंगिमा मात्र से लाखों प्रजा की हत्या कर सकता था, जिसके इशारे से देश में प्रलय का दृश्य उपस्थित किया जा सकता था ! (कुछ ठहरकर) कल जिस समय यहाँ पर जनरल रस्की आया था उस समय मैंने स्वतन्त्रता की घोषणा लिखकर और उस पर राजकीय मुहर लगाकर रख दी थी-मैं प्रजा को पूरी स्वतन्त्रता देने को तैयार बैठा था पर जनरल ने कहा, "अब, सब व्यर्थ है, बहुत देर हो गई सम्राट ! क्रांतिकारी स्वतन्त्रता चाहते हैं पर मेरी दया से नहीं – अपने बल से !"[208] इस एकांकी में कुल नौ पात्र हैं। लेकिन मुख्य ज़ार निकोलस और महात्मा लेनिन हैं। नाटक में बल मुख्य रूप से जारशाही का अंत और लेनिन को जननायक के रूप में स्वीकृति है।

पाँचवाँ नाटक (बरबादिय हिन्द) भारत की गुलामी और इसके अतीत गौरव के ध्यान में रखकर लिखा गया है। इस नाटक में 1857 से पहले की भारतीय समृद्धि को दिखलाने की कोशिश की गई है । जिसके लिए एक तरफ मुग़ल साम्राज्य और शाहजहाँ, मीरजाफर, सिराजुदौला, नाना साहिब, तातिया टोपे और वाजिद अली शाह हैं तो दूसरे तरफ अंग्रेजी हुकूमत का अत्याचार है । इस नाटक का परिचय देते हुए नाटककार ने लिखा है कि "भारतवर्ष का सर्वनाश का इतिहास रक्त से लिखा हुआ है। इस पर जितने भी रक्त में आँसू बहाए जाएँ थोड़े हैं । कुछ समय हुआ मुझे अंग्रेजी में लिखी हुई कुछ ऐसी पुस्तकें पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिनमें यह बताया गया था कि भारतवर्ष के सर्वनाश का वास्तविक कारण उसके व्यापार का सर्वनाश है। इन पुस्तकों से यह पता चलता है कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के व्यापार

---

208 पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र 'लाल क्रांति के पंजे में', सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 'सितम की इन्तिहा क्या है ?: सातज़ब्तशुदा हिंदी नाटक', 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय. नई दिल्ली, पृष्ठ 357

का सर्वनाश करने के लिए हम पर क्या-क्या अत्याचार किए हैं ?"[209] इस बात को सत्यापित करने के लिए लेखक ने भारतीय जनता पर हो रहे अत्याचार और उनके उद्योग धंधों पर इसका असर को दिखलाने की कोशिश की गई है। कपड़ा बुननेवाला (नाटक में जुलाहे पात्र) अपने ऊपर हो रहे अत्याचार से तंग होकर कहता है

"जुलाहे: लूट लिया- अत्याचारियों ने सब लूट लिया अच्छा-
न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी।
न अंगूठे होंगे और न हम कपड़ा बनाएँगे और ना ही वह सितम ढावेंगे-
अंगूठों के ही दम से हम बलाएँ सिर पै लेते हैं।
लो अपने हाथ से अपने अँगूठे काट देते हैं।।"[210]

यहाँ अंगूठा कटना भारतीय परम्परा और प्रतिरोध को इंगित करता है। जब एकलव्य ने अपने एक अंगूठे को गुरु को अर्पित कर दिया था। लेकिन इस नाटक में कपड़ा बुननेवाले अपना एक कटा हुआ अंगूठा अपने नवाब को दिखा 1857 का संग्राम की तैयारी शुरू करवा देता है।

'रक्त-ध्वज' नाटक का लेखक अज्ञात है। यह नाटक मोटे तौर पर क्रांतिकारी आन्दोलन और भगत सिंह से सम्बंधित है। जिसमें एक तरफ किसानों की स्थिति है, तो दूसरी तरफ विद्यार्थियों की क्रांतिकारी चेतना है। किसान अपने बेटे और पत्नी को भूख से मरते देखता है, और भगवान की प्रार्थना में जुट जाता है। कृष्ण (पात्र, भागवान के रूपक के लिए) मदद के लिए उपस्थित तो होते हैं। लेकिन समस्याएं हल नहीं होती। इधर विद्यार्थी इन समस्याओं के समाधान और मार्गदर्शक की खोज करते हैं। नाटक में एक प्रसंग इस प्रकार है "जिस बात की आवश्यकता थी वह पूरी हो गई। उनसे बढ़कर हमें और कौन अच्छा सरदार मिलेगा ? बस

[209] गोबिंदराम 'बरबादिय हिन्द', सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 'सितम की इन्तिहा क्या है ?: सातज़ब्तशुदा हिंदी नाटक', 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय. नई दिल्ली, पृष्ठ 383

[210] गोबिंदराम 'बरबादिय हिन्द', सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 'सितम की इन्तिहा क्या है ?: सातज़ब्तशुदा हिंदी नाटक', 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय. नई दिल्ली, पृष्ठ 399

वही हमारे विद्यार्थी जीवन का सरदार, क्रांति जीवन का भी सरदार होगा। आओ, सब कोई सरदार के पास चलें :

मिटेंगे देश पै अपने यही दिल में आई है।
करें आज़ाद भारत को यही एक धुन समाई है।।
नहीं है ज्ञात क्या उनको कि भारत वीर-भूमि है।
करें बरबाद हम इनको कि जिनसे दुश्मनाई है।।
कटाएँगे गला बेशक मगर यह ध्यान में रखना।
मिटेंगे हम मिटा करके शपथ हमने यह खाई है।।
है क्या ये जेल औ फाँसी डराते हो हमें जिनसे।
करें आदर्श पर तिल तिल न वह भी दुखदायी है।।
करो जुल्मोसितम बेशक मगर यह भूल माता जाना।
नहीं अपमान सह सकते जो भारत के शौदाई हैं।।"[211]

बुद्धिनाथ झा कैरव का नाटक 'लवण-लीला' सत्याग्रह आन्दोलन पर केन्द्रित है। इन नाटकों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्षों में से एक पक्ष वैचारिक पक्ष है। विचारधारा इन नाटकों में सीधे आ रही है जैसे 'लवण-लीला' में नाटककार स्वयंसेवक से कहलवाता है कि:- "स्वयंसेवक : महात्माजी की गिरफ्तारी से आन्दोलन रुक नहीं सकता है। जनता में काफी जागृति है।अब अपने हानि-लाभ को समझने लगे हैं। एक सेनापति के स्थान पर दूसरा सेनापति आएगा। महात्मा जी के जेल चले जाने पर हम लोग आन्दोलन नहीं चला सके, तो यह देश की कमजोरी का द्योतक होगा। जर्मन युद्ध में सरकार का सेनापति लार्ड किचनर जब गायब कर दिया गया तो क्या अंग्रेजों को एक दिन के लिए भी खटका कि उसके बिना कैसे काम

---

[211] अज्ञात 'रक्त-ध्वज', वहीं, पृष्ठ 464

चलेगा?"[212] इसके आलावा 'जख्मी पंजाब' में भी महात्मा गाँधी आते हैं और शौकत अली से स्वतन्त्रता आन्दोलन पर बात करते हैं। अभी उग्र के नाटक में भी लेनिन (पात्र) जार का मरने का इंतजार करता है। जन नायकों की स्वतन्त्रता सम्बन्धी अपील और कुर्बानियों के साथ उनकी प्रताड़ना को देख देश की आम जनता की इच्छा शक्ति मजबूत हो गई थी। इसीलिए हम देखते हैं कि चाहे भगत सिंह की फाँसी हो या गाँधी को जेल हो जनता को अब दमन से डर नहीं लग रहा था। जनता केवल और केवल स्वतन्त्रता चाहती थी। जिसके लिए मर-मिटने को तैयार थी।

दूसरा महत्वपूर्ण विषय स्त्रियों का गुलामी में किया गया चौतरफा दमन है। जब शक्तिशाली सत्ता एक कमजोर सत्ता को अपने चंगुल में ले लेती है तो लैंगिक उत्पीड़न को अपनी बुनियादी शर्त मान लेती है। भारत में उपनिवेशवादी शासन के दौरन स्त्रियों पर किया गया अत्याचार उसका माकूल उदहारण है। 'कुली-प्रथा' नाटक में भी इंस्पेक्टर (पात्र) कुंती (पात्र) का यौन शोषण करना चाहता है। और जख्मी पंजाब में भी जलियांवालाबाग में लाशें गिराने के बाद दो फौजी महिला के यौन शोषण पर उतारू हो जाते हैं तब महिला का प्रतिकार "पहला : मौका, वक्त और आज़ादगी से लाभ उठाएँ, इस मकान की औरतों से छेड़खानी करके जी बहलायें। आज फौजी ताकत का राज़ है और एक पंथ दो काज है, हमारा दिल भी बहलेगा और अफसर भी खुश होगा।"[213] वहीं 'कुली-प्रथा' में कुंती इंस्पेक्टर की तमाम कोशिशों और लुभावन के बावजूद बलात्कार का प्रतिकार कर नदी में कूद कर मरने का चयन करती है। यह समय 1916 का है और हिंदी साहित्य के इतिहास का छायावाद युग शुरू भी नहीं हुआ था। इस तरह के विषय भारतीय सामाजिक इतिहास में नवजागरण की देन मालूम पड़ते हैं।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्षों में एक पक्ष प्रतिबंधित नाटकों या प्रतिबंधित पुस्तकों का यह है कि ब्रिटिश हुकूमत द्वारा भारतीय सम्पदा की लूट से लेखक आहत दिखते हैं। चाहें वह देउस्कर हों ,

[212]बुद्धिनाथ झा कैरव,'लवण-लीला', वहीं, पृष्ठ 505
[213]किशनचंद जेबा,'जख्मीपंजाब', वहीं, पृष्ठ 288

देवनारायण द्विवेदी हों या दूसरे रचनाकार, उस दौर की कविता-कहानी में भी इसकी अभिव्यक्ति मिल जाती है। 'जख्मी पंजाब' में भारत माता गाँधी से कहती है "तो हे आर्य्य पुत्र! क्या अब भी कुछ विलम्ब है, स्वाधीनता जो मेरा जन्म अधिकार है, अब भी मिलनी दुशवार है, क्या किसी की सेवा और मेहनत भी वृथा जा सकती है, आम की शाखा धतूरे का फल ला सकती है?

जो कुछ पास मेरे पूँजी इंग्लैण्ड पै वारा है।
अन्न के भंडार किये खाली बच्चों को भूखा मारा है ।।
गिन-गिन भेंट चढ़ाया हैं बच्चों से क्या कुछ प्यारा है।
एक एकजिग्र का टुकड़ा भी दे देना किसे गँवारा है।।"[214]

अंग्रेजी लूट से बच्चों की दयनीय दशा को प्रतिबंधित कविताओं में भी देखा जा सकता है। इसके अलावा इस लूट को किसानों के माध्यम से भी दिखाया गया है। रक्तध्वज में सूत्रधार नटी से कहता है- "क्यों प्रिये, तुमने इतना बड़ा लेक्चर तो दे डाला परन्तु यह नहीं बतलाया कि भारत में आज किसानों पर कैसा अत्याचार हो रहा है, अथवा भारतमाता की स्थिति क्यों शोकपूर्ण हो रही है ?"[215] साम्राज्यवाद जब अपने चरम पर होता है तो सबसे अधिक दमन मजदूर-किसान और स्त्रियों का करता है।

प्रतिबंधित हिंदी नाटकों और साहित्य की अन्य विधाओं में प्रवासन (विस्थापन) का दर्द समान रूप से देखने को मिलता है। मसलन कविता (बाबूरामपेंगोरिया- 'राष्ट्रीय आल्हा संग्रह में संकलित कविता भारत प्रवासी'- 1930) या कहानी (ऋषभचरण जैन 'और मेरे भी') में भी विस्थापन का दर्द उपस्थित मिलता है। प्रतिबंधित नाटकों में लक्ष्मण सिंह का नाटक 'कुली-प्रथा' इसकी मिसाल है। इसके साथ इस नाटक की भूमिका में साम्राज्यवाद के छल-छद्म का सुन्दर नमूना द्रष्टव्य है "सरोवर में पानी सूख गया है। मछली इत्यादि जलचर भूख प्यास से व्याकुल हैं। यह देख एक बूढ़े (अत्यंत चालाक) बगुले को स्वार्थी-दया आई। उसने उन अकाल पीड़ित प्राणियों से कहा, 'भाई, मुझे पास ही

[214]किशनचंदजेबा,'जख्मीपंजाब'वहीं, पृष्ठ 246
[215]अज्ञात,'रक्तध्वज', वहीं, पृष्ठ 438

में एक जलाशय पता है जिसमें अनन्त जल लहरा रहा है। वहाँ दुष्काल की तो वायु भी नहीं चल सकती।' सब प्राणियों ने उसका मुँह लोभ और उत्सुकता से ताका; परन्तु वहाँ तक स्वत: चलकर जाने में अपनी असमर्थता प्रकट की। बगुले ने कहा, 'मैं स्वयं बूढा हूँ तो भी, आपको दुःखमुक्त करने के लिए मैं अपनी पीठ पर चढ़ाकर आप में से एक-एक को वहाँ ले जा सकता हूँ।' यह सुनकर सब बहुत प्रसन्न हुए। अब वह बगुला एक-एक को पीठ पर चढाकर कहे हुए सरोवर की ओर ले आता है और दूसरे प्राणियों की दृष्टि के ओट में होते ही अपने सवार को झट से चट कर जाता है।"[216]लक्ष्मण सिंह ने यह नाटक फ़िजी द्वीप में जानलेवा मजदूरी हेतु ले गए बंधुआ मजदूरों को केंद्र में रखकर लिखा था। लेकिन इस उद्धरण से साम्राज्यवादी सिद्धांत को भी बतलाते चलते हैं। जिसका मूल आधार ही है समस्या उत्पन्न करो और अंतहीन समाधान का उपाय प्रस्तुत करो। इस दृष्टि से प्रेमचंद की कहानी 'शुद्रा' को भी देखी जा सकती है। एक तथ्य इस सन्दर्भ में और रखा है कि 19वीं सदी के उतरार्द्ध में भारत में 28 आकाल पड़े जिसमें 28.5 लाख लोगों की जान गई। इन नाटकों में साम्राज्यवाद और इंसानियत का द्वंद्व भी खल पात्रों के अन्दर जरूर चलता है। इन नाटककारों ने साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा पैदा किये गए संकट को भी खुले रूपों में प्रस्तुत किया है। मलसन साम्प्रदायिकता, 'कुली-प्रथा' में ही अब्बास को इंस्पेक्टर शंकर के पिता या कुंती के पति का हत्यारा सिद्ध करना चाहता है और कहलवाता है कि "डेम, इंस्पेक्टर क्यों मारेगा ? इसी मुसलमान ने मारा है और स्वयं तुम्हारे पास झूठी बात बनाता है।" [217]

इन नाटकों में प्रेस एक्ट और प्रतिबंधन के बारे में खुलकर लिखा गया। इन रचनाओं में दो तरफा दर्द निहित है पहला आम भारतीय जन का दर्द और दूसरा प्रतिबंधन का दर्द। जिसके कारण ये रचनाएँ अपने पाठक से दूर हो गईं। किशनचंद जेबा ने तिलक के मुख से कहलवाया कि "बल्कि उसकी मंशा है कि रौलट बिल से भारतवासियों की कलम और जबान छीन ली जाए, ताजी कुर्बानियों के सिले

[216]लक्ष्मण सिंह,'कुली-प्रथा', वहीं, पृष्ठ 151

[217]लक्ष्मण सिंह,'कुली-प्रथा', वहीं, पृष्ठ 151

में स्वराज के लिए जो प्रर्थना की जानेवाली है, उसको अभी से दबा दिया जाए, परन्तु स्वतंत्र विचार दबाए नहीं दबते।"[218] वहीं दूसरी तरफ 'कुली-प्रथा' सेठ (अंग्रेजी दलाल) कौंसिल में पेश करने हेतु रिजोलूसन रटता है "हूँ पेस करूँगा कि सरकार किरपा करके पिरेसएक्ट को अच्छी तहाँ से काम में लावे क्योंकि हम रायबहादुरों की लो बड़ी-बड़ी बुराइयें छापते हैं,... ।"[219] प्रेस एक्ट, जिसकी वजह से इन नाटकों और लेखकों को आज 72 साल बाद भी अपने पाठक की तलाश है। बात यहीं नहीं रूकती है, ये सात नाटक तो कम-से-कम आज अभिलेखागारों या पुस्तकालयों में मौजूद हैं। लेकिन बहुत से नाटक ऐसे भी हैं जो ज़ब्ती के डर से प्रकाशित ही नहीं हुए। भगवान् दास माहौर ने अपने शोध कार्य में इसके बारे में लिखा है कि "इस युग में ब्रिटिश राज के प्रति गहरी शत्रुता से भावित सत्तावनी क्रांति का ऐसा स्वाभाविक साहित्य भी बहुत प्राणित हुआ जिसमें जन-भावनाएँ निरावृत और निश्छल रूप में व्यक्त हुई परन्तु वह छप कर प्रकाशित नहीं हुआ, न हो ही सकता था।...झांसी के श्री लाड़ली प्रसाद श्रीवास्तव उस समय एक ऐसे ही उत्साही नवयुवक थे। उन्होंने श्री पारसनीस रानी लक्ष्मी रानी लिखित लक्ष्मीबाई की जीवनी के आधार पर एक नाटक 'झांसी की रानी' सन 1924 में लिखा, आगा हश्र के नाटकों के ढंग पर ! अपने ही जैसे कुछ अन्य उत्साही नौजवान के सहयोग से संगठित अपनी 'बुन्देल खंड नाट्य समिति' द्वारा उसे उन्होंने अभिनीत भी किया। बम्बई सरकार ने 1925 में प्रतिबन्ध लगा दिया। झाँसी और उत्तर-प्रदेश के अन्य और स्थानों में भी यह खेला गया तो यू. पी. सरकार ने भी सन 1931 में इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसके लेखक श्री लाड़ली प्रसाद सन 1931 के नमक सत्याग्रह में जेल गये थे और फिर 1942 के आन्दोलन में भी नज़रबंद किये गए थे। यह नाटक कभी छपा नहीं पाण्डुलिपि अभी भी लेखक के पास है।"[220]यह नाटक उपलब्ध प्रतिबंधित हिंदी नाटकों से अलग विषय वस्तु धारण किये हुए मालूम पड़ता है।

---

[218]किशनचंद जेबा,'जख्मी पंजाब', वहीं, पृष्ठ 253

[219]लक्ष्मण सिंह,'कुली-प्रथा', वहीं, पृष्ठ 173

[220]डॉ.भगवान् दस माहौर, '1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव', कॉनफ्लूएंस इंटरनेशनल, नई दिल्ली सं. 2008, पृष्ठ 133 और 248

प्रतिबंधित हिंदी नाटक कला और शिल्प के लिहाज से भले ही कमजोर है पर इतिहास बोध इन नाटकों का बहुत मजबूत पक्ष है। "मूल्यों तथा तथ्यों की परस्पर निर्भरता तथा क्रिया-प्रतिक्रिया के माध्यम से ही इतिहास में प्रगति की उपलब्धि की जाती है। वस्तुनिष्ठ इतिहासकार वह इतिहासकार है जो इस अन्योन्याश्रित प्रक्रिया में अत्यंत गहरे उतरता है।"[221]इन रचनाओं और रचनाकारों का अर्जित-सृजित मूल्यबोध इनकी तह में उतरकर ही समझा जा सकता है। रचनाकारों के खिलाफ दमनकारी कार्यवाहियाँ और रचनाओं को ज़ब्त करने की मुहिम, इस सच के निर्विवाद प्रमाण हैं कि प्रतिबंधित साहित्य में अपने समय और समाज के प्रति न सिर्फ सक्रिय चिंता थी बल्कि उनमें मुखालफत का वह साहस भी था जो मृत्यु को महज एक शब्द मानता है।

[221]. ई.एच. कार, इतिहास क्या है, अंग्रेजी से अनुवाद: अशोक चक्रधर, 2016, trinity publisher new delhi, पृष्ठ 112

कुली-प्रथा

‘कुली प्रथा’ नाटक 1916 में लक्ष्मण सिंह द्वारा लिखा गया। इस नाटक में विदेश ले जाये गए भारतीय मजदूरों की पीड़ा निहित है। लक्ष्मण सिंह प्रसिद्ध कवयित्री सुभद्रा कुमरी चौहान के शौहर थे। उन्होंने कुली-प्रथा के अलावा ‘गुलामी का नशा’ इत्यादि नाटक भी लिखें। लेकिन कुली-प्रथा नाटक को 1916 में ही अंग्रेजी सरकार ने जब्त कर लिया। इस नाटक में प्रवासी मजदूरों की व्यथा के साथ प्रवास में उनके ऊपर हो रहे अत्याचारों को भी उन्होंने दिखलाया है। ऐसा माना जाता है कि 1834-1920 के बीच एग्रीमेंट के तहत फिजी, गयाना, त्रिनिदाद, मारीशस, सूरीनाम और नेटाल ले जाये गए मजदूरों को गिरमिटया मजदूर कहा जाता है। इस प्रवास के दौरान गिरमिटिया मजदूरों पर जो अत्याचार हुआ। उससे देश और विदेश दोनों में हलचल पैदा हुई। इस प्रथा पर संकेत करते हुए महात्मा गाँधी ने लिखा है कि “मजदूरों को नेटाल हिन्दुस्तानियों ने किस तरह ठगा, कैसे उनके जाल में फंसकर ये लोग नेटाल पहुंचे, वहां पहुंचने पर उनकी आंखे कैसे खुलीं, आँख खुल जाने पर भी वे नेटाल में क्यों बने रहे, कैसे उनके पीछे दूसरे भी वहाँ पहुंचे, वहां पहुंचकर उन्होंने धर्म और नीति के सारे तोड़ फेंके अथवा ये बंधन खुद टूट गए, कैसे विवाहिता पत्नी और वेश्या के बीच का भेद तक नहीं रहा, इस सबकी कहानी तो इस छोटी-सी पुस्तक में लिखी ही नहीं जा सकती।

इन मजदूरों को नेटाल में एग्रीमेंट में गए हुए मजदूर कहते हैं। इससे ये अपने-आपको ‘गिरमिटिया’ कहने लगे। इसलिए आगे से हम ‘एग्रीमेंट’ को ‘गिरमिट’ और उसके अन्दर गए हुए मजदूरों को ‘गिरमिटिया’ कहेगें।”[222] कुली बना ले जाने की प्रथा से भारतीय समाज आतंकित था। जिसका चित्रण इस नाटक में भी मिलेगा। लेकिन इस भयावह समस्या को देखते हुए उस समय के प्रमुख रचनाकारों ने अपने लेखन में इस प्रथा की खामियों को उजागर किया। इसमें तोताराम सनाढ्य

[222] मोहनदास करमचंद गाँधी, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, श्री कालिका प्रसाद (अनुवादक), 2011, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 33

माखनलाल चतुर्वेदी और प्रेमचंद इत्यादि प्रमुख थे। प्रेमचंद ने लिखा कि “स्वराज्य हमारी बुद्धि को, हमारी विचार शक्ति को मुक्त कर देगा और संसार में फिर उनकी आवाज़ सुनाई देगी। हमारा महत्त्व बढ़ेगा, हमारी प्रतिभा बढ़ेगी और हम उन्नत और बलवान जातियों के सम्मुख बैठने के अधिकारी हो जाएंगे। हम संसार में एक नई सभ्यता, एक नए जीवन का प्रचार कर देंगे, संसार के वर्तमान धन प्रेम को अपने संतोषमय जीवन से लज्जित कर देंगे, स्पर्द्धा और प्रतिद्वन्द्विता को मिटाकर सहकारिता और प्रेम का सिक्का जमा देंगे। तब-संसार का द्वार हमारे लिए बंद न होगा हम अछूत, नीच, असभ्य, गँवार न समझे जाएँगे, तब कनाडा और आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और न्यूजीलैंड के लोग हमारी सूरत से घृणा न कर सकेंगे, तब फ़िजी और डमरा के मदान्ध सौदागर हमें कोड़े मारकर गुलाम न बना सकेंगे तब हमको कुचलने के लिए हमको ग़ुलाम बनाये रखने के लिए, तरह-तरह के कठोर पाशविक कानून न बनाए जा सकेंगे, क्योंकि तब हमारे हाथों में भी इन अत्याचारों का जवाब देने की शक्ति होगी, तब किसी को हमें नीच समझने का अधिकार न रहेगा, तब हमको जो जाति अपने देश में जाने से रोकेगी उसे हम भारत में पैर न रखने देंगे, उसके साथ व्यवसाय न करेंगे, उससे कोई सम्पर्क न रखेंगे। तब हमारे देश में आप ही धन-धान्य की इतनी बहुलता हो जाएगी कि हमारे भाइयों को कुलियों में भर्ती होने की जरुरत ही न रहेगी। अंग्रेजी उपनिवेशों में इस समय हमारे भाइयों की जो दुर्गति हो रही है, उसे देखकर किन आँखों से आँसू न निकल पड़ेंगे। जिन भारतीयों मजूरों ने अपना पसीना और रक्त बहाकर पूर्वीय अफ्रीका, नेटाल, ट्रांसवाल, फ़िजी को चमन बनाया, जंगलों को काटकर बसाया उन्हीं को अब वहां से निकाल देने के लिए मदांध, स्वार्थान्ध अंग्रेज, नाना प्रकार के क्रूर व्यवहार कर रहे हैं। स्वराज्य पाने के बाद फिर किसका मुँह है, जो हमसे ऐसा बुरा ऐसा पैशाचिक व्यवहार कर सके।”[223] गाँधी और प्रेमचंद दोनों ही इस प्रवासन के खिलाफ थे। महात्मा गाँधी जहाँ अफ्रीका में कुलियों या गिरमिटियों को दयनीय दशा से चिंतित थे वहीं प्रेमचंद गुलामी और भारत की आर्थिक बदहाली को गिरिमिट होने का प्रमुख वजह

[223] प्रेमचंद, ‘स्वराज्य के फायदे’, निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका(सम्पा.), प्रेमचंद रचना-संचयन,2012, साहित्यव् अकादेमी, नई दिल्ली, पृष्ठ 689

मानते थे। मोटेतौर पर यही कथा लक्ष्मण सिंह द्वारा लिखित नाटक की कथा वस्तु भी है। इसीलिए नाटक के मंगलाचरण (नाटक में प्रस्तावना नाम से है) में नट नटी सम्वाद में नटी कहती है "भारत के ऐतिहासिक चित्रपट का वह सिरा, जहाँ दिव्य पुरुषों के चरित्र चित्रित थे, भूत-काल के निविड़ अन्धकार में पड़ा है। आज उसके सम्भव की कल्पना को भी लोग हँसी समझते हैं। राजर्षि, उनके प्रसाद, वहाँ की सुनहरी और हीरक चमक-दमक, विलास इत्यादि, नशे में आई हुई किसी स्वप्न की स्मृति के समान हो गए हैं। प्रेम का आदर्श, बाल विवाह का उबटन हल्दी से मैला हो रहा है, और पतिव्रता तो बाल-विधवाओं के आंसुओं में डूबकर अपने प्राणों को ही छोड़ रहा है ! धर्म, मतमतान्तरों में विभक्त हो नष्टप्राय हो चुका है। आजकल की दशा भिन्न ही है। धीर रस की उत्तेजना और कड़खे जोश भरने की अपेक्षा भय उत्पन्न करते हैं। राजाओं और प्रसादों का समय गया, अब गरीबों और झोपड़ियों का समय आया है। दिव्यता के स्थान में पार्थिवता भी यहाँ नहीं पाई जाती। धर्म, अधर्म हो गया है। धर्म के लिए मरने वालों की संताने सच्चे धार्मिकों ही को मारने वाले हो गई है ! स्त्रियों के पतिव्रता की रक्षा करना तो दूर रहा, एक-एक भारतीय स्त्री के तीन-तीन पति बनाए जाते हैं, और भारतवासी इस अपूर्व न्यायविदित वेश्या-व्यापार को देखते नहीं लजाते ! ऐसी अवस्था में पहले हमें दशा सुझानी चाहिए, तभी इन पर शिक्षा का प्रभाव पड़ सकता है। नाथ, इसीलिए तो कहती हूँ, कि राजाओं और महलों को छोड़, अब ग़रीबों और झोपड़ियों के ही खेल खेलने होंगे।"[224] यह कथन एक तरह से नाटक का उद्देश्य है, और प्रतिबंधित साहित्य का भी यही उद्देश्य है। यहाँ एक बात ध्यान देने वाली है कि ऐसा माना जाता है कि 1936 के बाद साहित्य का बयार बदला। लेकिन यह नाटक 1916 में प्रकाशित हुआ। और इसका मजमून देखकर ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि प्रगतिशीलता की बयार इस नाटक के उद्देश्यों में नहीं है।

---

[224] लक्ष्मण सिंह 'कुली-प्रथा', सत्येन्द्र कुमार तनेजा, सितम की इन्तहा क्या है, 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 154

यह नाटक तीन अंकों में है। प्रथम अंक में कुंती, भोला और बृजलाल केन्द्रीय पात्र हैं। एक तरफ कुंती और भोला जो भगवान जगन्नाथ के दर्शन, और अपने पुत्र को मिलने की दुआ माँगने जाते हैं। जो मैट्रिक पास करके देश को सुशिक्षित और आज़ाद करने हेतु अमेरिका जाकर ज्ञान लेना चाहता था। उसे श्रमिक बनाकर उसे फिजी ले जाया जाता है। वहीं हाल उसके माँ और बाप के साथ होता है। जिसे बृजलाल और उसके आदमियों के द्वारा ठगा जाता है। इस ठगने की प्रक्रिया को लेखक ने धर्म और उसके अंधभक्तों का एक दृश्य पैदा किया है। बृजलाल सेठ और अंग्रजों का दलाल रहता है, और कहता है कि "गौरांग देव ने सैकड़ों रोगियों को दुखमुक्त कर दिया है। बाल-बच्चे जो कुछ जो कोई चाहता है, सबको एक दृष्टि से देखते हैं। प्राय: बिना चाहे भी देते हैं। सबको एक दृष्टि से देखते हैं। स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या बूढ़ा, जो दर्शन करने मंदिर में जाता है, वह फिर वहाँ से लौटना जानता ही नहीं। वहाँ बिना माँगे धन मिलता है, अन्न मिलता है और वस्त्र मिलते हैं। रहने के लिए घर भी मिलता है। वहाँ के सुख का वर्णन नहीं हो सकता। सुख और दुःख एक हो जाते हैं। शीत-उष्ण में अंतर नहीं रहता। अपना-पराया, ऊँच-नीच इत्यादि भेदभाव नष्ट हो जाते हैं, और प्राणी चिरयोग समाधि सहज ही में प्राप्त कर लेता है।"[225] इसमें लेखक रूपक के तौर पर अंग्रेजी राज में भारत की बदहाली को चित्रित करता है। उस सेठ दलाल को पता रहता है कि, भारत को अंग्रेजी हुकूमत खोखला कर रही है। जनता के पास कुछ नहीं है। वह दुःख के मारे तड़प रही है। जिसके लिए ऐसा प्रलोभन कारगर होगा। लेकिन यहाँ एक बात और भी ध्यान देना होगा कि जो उस सेठ द्वारा नियुक्त किये गए तीन ठग हैं। उसमें पहला ठग कहता है कि "हिन्दू लोग धर्म के लिए तो अंधे ही हो जाते हैं।"[226] मतलब कि धर्म भी भारतीय जनता को उतना ही खोखला कर रहा जितना की अंग्रेजी हुकूमत। इस अंक में आगे भोला और कुंती के ऊपर अत्याचार के साथ बृजलाल की मंशा का वर्णन है।

---

[225] वहीं, पृष्ठ :162

[226] वहीं पृष्ठ :159

दूसरे अंक में भोला और कुंती का बेटा शंकर के साथ उसके माँ बाप के ऊपर फिजी में हो रहे अत्याचारों का वर्णन है । शंकर बृजलाल को एक पत्र लिखता है । उस पत्र में वह लिखता है कि "बृजलाल,

तुमने मुझे जो धोखा दिया उसका फल तुन्हें भोगना पड़ेगा । इस नीचता का दंड परमेश्वर तुम्हें अवश्य देगा । तुमने मुझे अमेरिका भेजने के बदले फ़िजी भेजा । स्वतंत्र करने के बहाने मुझे परतंत्रता की जंजीर में जकड़ा । तुम भारत के घटक हो । उसके बच्चों को इस प्रकार बेंच-बेंचकर तुम ग़ुलाम बनाते हो । यह काम अमानुषिक है । यह मत सोचो कि ऐसे कार्य से तुम सुख पाओगे । नहीं, कभी नहीं ! अपने परिवार से बहकाये जाकर बिछुड़े हुओं की आहें तुम्हारे शरीर को झुलसा देंगी । अनाथ बालक और स्त्रियों के आँसू तुम्हारे पुण्य को गला देंगे । और इन हजारों की क्रंदनध्वनियों को सुनकर यमराज तुम्हारी आत्मा को नर्क-कुंड में डाल देंगे । तुम सोचो, भारतमाता के ही पुत्र हो, तिस पर भी अपने भाइयों पर अत्याचार करने से नहीं चूकते । धिक्कार है तुमको ।"[227] नाटक में आगे शंकर के इस पत्र से उसको पागल घोषित कर ख़ारिज करने की कोशिश बृजलाल करता है । बृजलाल को यह चिंता नहीं रहती की वहां गए भारतीय किस स्थिति में हैं । बल्कि उसकी चिंता रहती है की तीन पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या कम है । इसीलिए बृजलाल कहता है "अरे भाई, गांट साहब की कोठी में सौ आदमियों के बीच कुल पच्चीस स्त्रियाँ रह गई हैं । वहां अभी आठ और चाहिएँ । आज्ञा है कि कम-से-कम तीन पुरुषों के लिए एक स्त्री अवश्य हो ।"[228] इसके बाद उसका पहला दलाल कहता है "ठीक तो है, अधिक स्त्रियाँ के भेजने की क्या आवश्यकता है ? हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ कुछ मेम साहब तो हैं नहीं नाजुक पतली कमरवाली, कुछ काम की न धाम की । और इसमें स्त्रियों का बिगड़ता ही क्या है ?"[229] यहाँ एक बात ध्यान में रखनी चाहिए की अंग्रेजों की नीति में भारतीय स्त्रियों प्रति क्या रुख था । Elizabeth Kolsky अमेरिकी शोधार्थी हैं । उन्होंने Colonial Justice in British India विषय पर शोध किया । जिसमें भारत में

[227] वहीं, पृष्ठ :183

[228] वहीं, पृष्ठ :184

[229] वहीं, पृष्ठ: 184

अंग्रेजी शासकों की दिनचर्या का विश्लेषण किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक की प्रस्तुति के दौरान कहा कि 'नील की खेती और चाय बागानों में काम करने वाले भारतीयों से लेकर अंग्रेजी शासकों की रहन-सहन, जैसे वह क्या पहनते थे, क्या खाते-पीते, और कितने नौकर काम करते थे के साथ उन्होंने यह भी कहा है कि अंग्रेजों का मकसद भारतीय सम्पदा का दोहन के साथ भारतीय स्त्रियों से शादी या उनका यौन शोषण भी था।'[230]

वहीं दूसरे तरफ इसी भाग में शंकर फ़िजी में ले जाये गए भारतीय श्रमिकों और उनके ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ जंग छेड़ने की कोशिश करता है। इसके लिये वह एक अफ्रीकन दोस्त की सहायता लेता है। जिसका नाम निप्पो है। निप्पो महात्मा गाँधी से प्रभावित रहता है, और वह अहिंसक लड़ाई के लिए पैरोकारी करता है। इधर उसके माँ बाप को फ़िजी पहुँचाया जाता है। लेकिन इंस्पेक्टर कुंती का यौनशोषण करना चाहता है और भोला (पति) को मरवा देता है। जैसा की ऊपर लिखा गया है कि भोला की हत्या का दोष अब्बास के ऊपर मढ़ा जाता है। जिसको स्वीकार करने के लिए वह अब्बास को करने के लिए वह अब्बास को तमाम तरीके से लुभाता है। लेकिन अब्बास स्वीकार नहीं करता है। इधर अंग्रेज अधिकारी और उसकी पत्नी को भी काले लोगों से समस्याएं होती है। और वह कहती है " डियर ! मुझे पकड़े रहो, भय से कहीं गिर न पड़ूँ। आज अभी मैं चमेली की कुंज तक गई थी । तमाम कुंज नव-कुसुमित हो श्वेतता में छिपा हुआ-सा था, परन्तु आश्चर्य कि वहाँ पर सुवास नाम तक न था। खोज के पश्चात मैं समझी, वहीं पर चार काले आदमी काम कर रहे थे। उन्होंने दूर से ही झुककर मुझको सलाम किया। मैं बहुत डरी। मुझे विदित हो गया कि उनके मैले शरीरों की दुर्गन्धि ने ही चमेली-कुंज की सुगंधि मार दी होगी। आप कृपाकर अब से उन काले आदमियों को यह आज्ञा दे दीजिये कि जब मेम साहब उद्यान में जानेवाली हों तब वे सब बाहर चले जाया करें। ओफ! प्रिय एक काला आदमी तो इतना निकट था कि मैं कुछ कह नहीं सकतीं। लाइए, दर्पण तो देखूं, कहीं मेरे मुख पर झांई तो नहीं

[230] Access Date-26.12.2019 https://www.youtube.com/watch?v=YMjxrsHrpnU

जम गई।"[231] अपनी बीवी की सारी बातें सुन वह अधिकारी कहता है कि तुम चिंता मत करो कल एक तमाशा देखने तुम्हें ले चलूँगा। वह तमाशा भोला को रिक्ष से लड़ाने और मारने का था। लेकिन उसको इंस्पेक्टर पहले ही मार देता है। वहीं दूसरी तरफ कुंती को बच्चा होता है। जिसके वजह से वह काम पर नहीं जाती है। इससे अधिकारी गुस्साता है, और उसका बाल पकड़ कर काम पर ले जाता है। इधर भारत से प्रवासी श्रमिकों की स्थिति जाँचने के लिए एक दल जाता है। जिसमें बृजलाल अपने भतीजे को भेजता है। जो अपनी अधिकारी की नौकरी के लालच में गलत रिपोर्ट बनाता है।

तीसरे भाग में कुंती के ऊपर हो रहे अत्याचार का चित्रण है। कुंती अपने प्रसव पीड़ा की वजह से काम नहीं कर पाती है। इधर उसका यौन शोषण के लिए इंस्पेक्टर पीछा करता रहता है। कुंती भागती है, और नदी में कूद जाती है। निप्पो और शंकर उसे बचाते हैं। यहीं पर कुंती की मुलाकात शंकर से होती है, और तब शंकर को पता चलता है कि जो धोखा मेरे साथ हुआ है वही धोखा मेरे माँ बाप के साथ भी हुआ है। शंकर इंस्पेक्टर को जान से मारने की बात कहता है। लेकिन निप्पो कहता है कि "यदि मारना ही है तो दूसरे की सेवा में दूसरों के उन्नति कराने में क्यों नहीं मरते? भारत में जाकर सभाएं कराओ। यहाँ के वर्णन छापो। जगह-जगह व्याख्यान देकर यहाँ की असली दशा सुनाओ, आरकाटियों के फंदे से लोगों को बचाओं और सरकार से प्रार्थना करो।"[232] इधर कुंती पागल हो जाती है। अब्बास इंस्पेक्टर को मार देता है। उसके बाद किसी तरह पता करके शंकर और निप्पो के पास आता है। जो उसकी मदद करते हैं। निप्पो उसे कहता है की तुम जाओ और यह खबर फैलने से पहले अपने एग्रीमेंट का कागज लेकर आ जाओ वह जाता है, और कागज लेकर आ जाता है। शंकर और अब्बास दोनों जहाज पर वापस भारत आ जाते हैं।

[231] वहीं, पृष्ठ:188

[232] वहीं, पृष्ठ:217

पंजाब ट्रेजडी अर्थात ज़ख्मी पंजाब

‘ज़ख्मी पंजाब’ नाटक 1922 में लिखा गया था। इसके लेखक किशनचंद जेबा हैं। जेबा पारसी थियेटर से जुड़े हुए थे। जिसके बारे में सत्येन्द्र कुमार तनेजा ने लिखा है कि “पारसी थिएटर की एक बड़ी कमजोरी यह रही है कि वह मनोरंजन के नाम पर अश्लीलता का आश्रय लेता रहा है।”[233] आगे उन्होंने पारसी थिएटर का एक नकारात्मक छवि और किशनचंद जेबा को इससे निकालने का श्रेय दिया है। लेकिन इसके बारे में ही गिरीश रस्तोगी लिखती हैं कि “पारसी नाटक कंपनी ने हिंदी और उर्दू के नाटकों के प्रदर्शनों से रंगमंच की नियमित परम्परा डाली।”[234] इस उद्धरण में आगे उन्होंने आगा हश्र खां इत्यादि को पारसी थियेटर को आगे बढ़ाने का श्रेय और और इसके सांस्कृतिक, राजनीतिक महत्व को बतलाया है।

इस नाटक को मोटे तौर पर 1919 का नरसंहार यानि जलियाँवाला बाग़ नरसंहार पर केन्द्रित माना जा सकता है। लेकिन इस नाटक के मंगलाचरण में नाटककार ने नट नटी के सम्वाद के माध्यम से इसके उद्देश्य को बतलाने की कोशिश की है। नटी कहती है कि “मन की आज़ादी को गम की बेड़ियों से जकड़ने वाला, दुःख के फौलादी पंजे से अंतरात्मा को पकड़नेवाला वह ऐसा कौन-सा इतिहास है, जिसका नाम लेने से पहले ही आपकी सूरत उदास है ?”[235] नट उसका उत्तर देता है “वह इतिहास जिसने भारतवर्ष में दया-दृष्टि के बदले खून के छींटे उड़ाए हैं, जिसने योग्य पुरस्कार के बदले आकाश से आग के गोले बरसाए हैं।

जिसका है हर फिकरा खून से सींचा हुआ।
जिसका फोटो बे गुनाह ने मरके है खिंचा हुआ॥

---

233 सत्येन्द्र कुमार तनेजा, ‘सितम की इंतिहा क्या है’, 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 224

234 गिरीश रस्तोगी, ‘बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमच’,2004, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 29

235 किशनचंद जेबा, ‘ज़ख्मी पंजाब’, सत्येन्द्र कुमार तनेजा, सितम की इन्तहा क्या है, 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 241

जिसका महमूं से लहू की आ रही सौ बास है।

खून नाहक से जो एक गूँधा हुआ इतिहास है।।"[236]

फिर आगे अंग्रेजी सरकार से उत्पन्न समस्याओं को बताते हुए भारत की अतीत की समृद्धि को दिखलाने की कोशिश की गई है। इसके आलावा लेखक ने भूमिका में एक अनुरोध किया है और कहा है कि "मित्रगण ! ड्रामा लिखना कोई साधारण बात नहीं। बड़े-बड़े योग्य और विद्वान लेखकों ने इस कला में अपनी लेखनी चातुर्य्य दिखाया है, किन्तु दुर्भाग्यवश सफलता नहीं पा सके। तुकबंदी कर देना अथवा इधर-उधर से पद की खेंचतानी करके पद्य (नज्म) और गद्य का एक संग्रह पाठकों के सामने रख देना कोई नाटक रखना नहीं कहलाता। इस अथाह सागर में तैरनेवाले कवि को पद-पद पर गोते खाने पड़ते हैं। वह नाटक लेखन के विशेष नियमों के अनुसार नया रंग, नई चाल, नया चित्र और नए विचार ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करता है रंग, "थोड़ा और मीठा" यह नियम प्रतिक्षण उसके हृदय-नेत्र के सम्मुख रहता है।"[237] किशनचंद जेबा ने यहाँ अपने नाटक लिखने के पसोपेश की तरफ इशारा किया है। इसके बाद इस नाट्य संग्रह में एक और हिदायत दी जाती है कि "है यदि कोई महाशय इस नाटक को स्टेज पर खेलने का विचार करें, क्योंकि पहले तो हमने यह नाटक केवल प्रेमी जनों और देशप्रिय सज्जनों के पढ़ने के वास्ते ही तैयार किया है, और दूसरी बात यह है कि महात्मा तिलक, गाँधी और शौकत अली आदि जैसी महान आत्माओं की स्टेज पर नकल उतारना एक ऐसा पाप है जिसका प्रायश्चित्त होना ही असम्भव है। इस आवश्यक निवेदन को सम्पूर्ण मंडली नोट कर लें।"[238] इस तरह इस नाटक को खेलने और मंचित करने का भी दिशा निर्देश दिया गया है। क्योंकि इस नाटक के पात्र स्वतन्त्रता आन्दोलन के जननायक थे और नाटककार यह नहीं चाहता था कि, उनके जीवन आदर्शों को मंचन के दौरान मंचीय सुविधा के अनुसार ढालने की कोशिश की जाये।

---

[236] वहीं, पृष्ठ: 241

[237] भूमिका से, किशनचंद जेबा, 'ज़ख्मी पंजाब', सत्येन्द्र कुमार तनेजा, सितम की इन्तहा क्या है, 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 237

[238] प्रस्तावना से, वहीं

यह नाटक तीन अंको में हैं। इसके पहले अंक की शुरुआत गाँधी आश्रम से होती है। जिसके दौरान एक गान को प्रस्तुत किया जाता है। वहा गान इस प्रकार है

"जय जय बंदहूँ सकल सुखकारी।
जननी जन्म भूमि महतारी ।।
जय जय श्रीकृष्ण की माता, जय रघुबर की जन्म प्रदाता।
तोरी रज मस्तक पर धरूँ, तो पै तन मन धन बलिहारूं ।।
तू पदार्थ सब उत्पन्न करनी, गंगा जमना हिरदे धरनी ।।
जय जय ।।"[239]

गान में गाँधी को भारत माता की उपासना करते हुए दिखाया जाता है। इस गान के माध्यम से अंग्रेजी सरकार के वजह से उत्पन्न कुराज से सुराज की स्थापना के लिए प्रार्थना की गई है। जिसके लिए भारत के अतीत के साथ रामराज्य और राम को भी याद किया जाता है। इन पंक्तियों को पढ़ते हुए भक्तिकालीन कवि तुलसीदास को भी याद किया जा रहा है। इस अंक में आगे गाँधी और भारतमाता का सम्वाद है। जहाँ भारतमाता गाँधी को आशीर्वाद देती हैं कि तुम ही इस देश को आज़ाद करवा सकते हो। इधर गाँधी की उपासना खत्म होती है, और रोलेट बिल हाजिर होता है। यह वहीं रौलेट बिल है जिसे जलियाँवाला बाग़ हत्याकांड की पृष्ठ भूमि के रूप में भी देखा जाता है। जिसे 6 अप्रैल 1919 को पारित कर काला कानून का रूप दिया गया। इसी के विरुद्ध में गाँधी सत्याग्रह सभा में भाग लेने के लिए देश की गुलाम जनता से आवाहन करते हैं। उधर रौलेट बिल भारत माता को आज़ादी से रोकता है और कहता है कि "ठहरो ठहरो, अपने पवित्र आत्मा को कलुषित मत करो, इस गुलामी की धरती पर पैर मत धरो।

न अपना आप खो बैठो तबीयत की रवानी से।

[239] वहीं, पृष्ठ :245

कहीं अपमान हो जावे न यां नकाद्र्दानी से ।।

अभी कुछ और सदियों तक समुन्दर की हवा खाओ ।

कहीं इन बागियों से मिलके तुम बागी न हो जाओ ।।"[240]

इधर गाँधी रौलेट बिल से आज़ादी के लिए बहस करते हैं, और आज़ादी पर अपना अधिकार जताते हैं। लेकिन रौलेट बिल कहता है कि, इतना अधिकार तुम लोगों के लिए पर्याप्त है। आगे कहता है कि "अगर किसी दीवान, सीडी, सौदाई के हाथ में तलवार पकड़ा दी जाए, तो वह जरुर उस तलवार से अपना और दूसरे का गला काट देगा।

जो अय्याशी में डूबे हैं, जो गहरी निद्रा में सोये हैं।

जो कमजोरी के तागे हैं, अविद्या से पिरोये हैं ।।

अविद्या कायरी सुस्ती ही, जिन लोगों का हिस्सा है।

वह आज़ादी को क्यों समझें, यह हम लोगों का वर्सा है ।।"[241]

इस उद्धरण को सन्दर्भ में रखकर इतिहासकारों की आधुनिकता और अंग्रेजी हुकूमत वाली मान्यताओं को परखा जा सकता है। जब भारत में आधुनिकता का श्रेय पश्चिम को दिया जाता है। लेकिन यहाँ एक आधुनिकता की बुनियाद भी है। वह यह की क्या जो हुकूमत जनता की आज़ादी को कैद करके रखी हुई हो, और उसी जनता को यह अशिक्षित और अयोग्य जैसे शब्दों से अभिहित करें तो, उस हुकूमत की आधुनिकता की अवधारणा पर शक लाज़िमी है। जिसकी चर्चा आगे के अध्यायों में विस्तृत रूप से कि जाएँगी। इसी दृश्य में रिफार्म आता है जो रौलेट बिल के पक्ष को मजबूत करते हुए गाँधी से संवाद करता है। "हाँ मान जाओ, तुम तो बड़े भोले-भाले धर्मात्मा हो, मान जाओ, वृथा दुःख न उठाओ,

---

[240] वहीं, पृष्ठ :247

[241] वहीं, पृष्ठ: 248

आराम से जिंदगी के चार दिन बिताओ (रिफार्म को खिलौना देकर) लो इस रिफार्म स्कीम का आनन्द उठाओ, इसको ग्रहण करो, इससे आज़ादी का खारदार रास्ता साफ हो जायेगा, और शीघ्र ही तुम्हें मंजिले मक़सूद तक पहुंचाएगा।"[242] इसी बातचीत में नाटककार रौलेट बिल के बारे में समझाते हुए, गाँधी को इसके प्रति उदार करना चाहता है। लेकिन गाँधी इसको नकार देते हैं। आगे के दृश्यों में अन्य स्वतन्त्रता सेनानियों का सत्याग्रह सभा और गाँधी की अहिंसात्मक आन्दोलन के ऊपर बातचीत है। जिसके बारे में नाटककार तिलक से कहलवात है "अर्थात, असहयोग, नामिल वर्तन, अदम तआवन, नान-को-आपरेशन। अन्याय और असत्य से असहयोग करना शास्त्र का भी प्रमाण है, अनिष्ठाचार से मुकाबला करना असत्य से युद्ध करने के लिए हमारे पास यही अंतिम सामान है।

सेवक तजो कनिष्ठ स्वामी अन्याई।
तजो अधर्मी मित्र तजो निर्लज्ज लुगाई॥
तजो मुकद्दमेबाज़ और झगड़ालू भाई।
तजो पुत्र बदकार तजो खुदगर्ज सहाई॥
तजो राजसंबंध न हो जिसमें कुछ न्याय।
सुख चाहो गर मित्र यही है एक उपाय॥"[243]

यहाँ एक बात ध्यान देने वाली है कि यह बात नाटककार ने तिलक के मुख से कहलवाया है। जिन्हें अंग्रेज अधिकारी भारतीय 'अशांति के पिता' नाम से संबोधित करते थे। अकसर स्वतन्त्रता आन्दोलन से सम्बंधित इतिहास में तिलक को गाँधी के विचारधारा से एकदम विपरीत दर्शाने की कोशिश की गई। लेकिन प्रतिबंधित पुस्तकों के लेखकों ने विचारधारा के अंतर और जनता की स्वीकार्यता को बराबर एक समान रखा है।

[242] वहीं, पृष्ठ :250
[243] वहीं, पृष्ठ :254

आगे के अंकों में जलियाँवाला बाग़ स्थान होता है। इस दौरान ओडवायर की गोली चलवाने से पहले की मनोदशा का चित्रण है। "कैसा भयानक ख्वाब है; खून की धारा में हजारों शीस बहे जाते हैं; आत्माओं के भयंकर स्वरूप लहू से भीगी हुई लाल झंडियाँ लिए डराते हैं। बच्चों और औरतों की पुकार से कान बहरे हुए जा रहे हैं, बिना सिर, बिना धड़, बिना टाँग बेशुमार इन्सान मेरी तरफ दौड़े आ रहे हैं।

यह अजब करुणामयी इस ख्वाब की तासीर है।
चाहिए अब देखना क्या क्कबा की ताबीर है ।।
एक मैं और कितने दावेदार हैं चिमटे हुए।
कोई दामनगीर है कोई गरेबाँ गीर है ।।

लेकिन अभी तक मेरे एहदे हुकूमत में कोई ऐसी दुर्घटना नहीं हुई, क्या ऐसा समय भी आनेवाला है, नहीं कुछ भी नहीं। सियासत की पेचीदगियों में घीरा हुआ एक मुद्ब्बर का दिमाग थकावट के प्रभाव से अक्सर ऐसे ख्वाब देखा करता है, अगर इन बातों पर ध्यान दिया जाए तो हुकूमत करना कठिन हो जाए। कुछ भी हो; पंजाब का स्याह व् सफेद मेरे हाथ है; डायर जैसा दिलवार जनरल मेरे साथ है; पंजाब देखेगा और मैं दिखाऊंगा।

वह नमूना सख्तगीरी का दिखाऊंगा इसे।
अपनी मंशा अपनी मर्जी पर चलाऊंगा इसे ।।"[244]

यह सभी बातें ओडवायर स्वप्न में सोचता है। इस दौरान 'इंसाफ' नाम का एक चरित्र भी होता है। जो लगातार ओडवायर से पंजाब की जनता के बारे में बहस करता है। इधर गुलामी और गरीबी का तर्क देकर भारतीय और पंजाबी को मूर्ख बताता है। इधर इंसाफ कहता है कि तुम हुकूमत के नशा में चूर हो। दूसरी तरफ ओडवायर यह भी कहता है कि तुम्हारी ही कुछ जनता कह रही है कि 'पोलिटिकल रियायतें' पाकर संतुष्ट है।

[244] वहीं, पृष्ठ :261

अगले अंकों में जलियाँवाला बाग़ की क्रूरता को दिखलाने की कोशिश की गई है। इसी दर्द को बयान करता यह गीत

"उठो नजाकत में सोने वालों तुम्हें जमाना जगा रहा है।
तुम्हारी गफ़लत से कोई भारत का नाम तक भी मिटा रहा है।
तुम्हें तो पहुँचा रही है ठंडक ऋतु यह शिमले की वायुओं की
खबर है प्रजा को दुःख की अग्नि से कोई जालिम जला रहा हैं।
हजारो बच्चे अनाथ हैं और हजारों विधवाएँ रो रही हैं।"[245]

इस तरह की संगीत सुन चैम्सफोर्ड आकुल तो होता है। लेकिन ख़ुशी उसको सांत्वना देती है कि, इस आवाज के बारे में पता लगाता हूँ। उधर सेक्रेटरी भारतीय जनता की व्यथा चेम्सफोर्ड को जाकर सुनता है। फिर चेम्सफोर्ड भारतीय जनता की आवाज सुनता है। जो ओडवायर द्वारा किये हुए रक्तपात को सुनती है। फिर चैम्सफोर्ड कहता है "ठीक है, ऐसी घटना तो राज में हुआ ही करती हैं और जो कुछ ओडवायर ने किया होगा वह सोच समझकर किया होगा, अपने देश और जाति के हित का काम किया होगा।"[246] यहाँ देश और जाती का सन्दर्भ यह है कि अंग्रेज और उसकी हुकूमत। आगे इस रक्तपात पर गाँधी और अन्य स्वतन्त्रता सेनानियों का सम्वाद है।

इस तरह के नाटक कला के हिसाब से महत्व रखे या न रखे, लेकिन कथ्य और इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। खासकर तब और जब समाज क्रूरता के चपेट में हो, गुलामी की जंजीरों से मुक्त होने के लिए जद्दोजहद कर रहा हो।

---

[245] वहीं, पृष्ठ:307

[246] वहीं, पृष्ठ :310

शासन की पोल

शासन की पोल नाटक देवदत्त द्वारा लिखित है। यह नाटक 1922 में लिखा गया था। इसका लिखने का समय हिंदी नाट्य साहित्य के इतिहास में प्रसाद युग और हिंदी कविता के इतिहास में छायावाद युग के नाम से अभिहित किया जाता है । जब हिंदी नाटक एक अन्तराल के बाद से फिर से नए उर्जा के साथ उपस्थित हुआ था। जिसके बारे में बच्चन सिंह ने लिखा है कि "प्रसाद का अविर्भाव हिंदी नाट्य-साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ता है। उनके पहले के नाटककारों ने वर्ण्य वस्तु को न तो श्रमपूर्वक उपलब्ध किया और न उनकी पुनर्रचना की। उन्होंने मुख्यतः नाटकों को विचारों या भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम माना। फलस्वरूप नाटकों का साहित्यिक मूल्य नहीं बन पाया। नाटकीय तकनीक अधिकतर पुरानी ही रही। अपने रोमैंटिक दृष्टिकोण के कारण प्रसाद ने हिंदी नाटकों का नया विन्यास किया।"[247] प्रसाद ने अपने नाटकों के विषय वस्तु के लिए भारतीय अतीत को चुना। लेकिन उसके साथ वर्तमान स्थिति का भी समिश्रण किया। इसके सन्दर्भ में भी बच्चन सिंह ने लिखा है कि "जीवन के गहन द्रष्टा होने के कारण प्रसाद ने उसकी जटिल समस्याओं को आँकने में अधिक दिलचस्पी ली। जीवन के बिखराव को बिखरा हुआ नाट्य-विधान ही अभिव्यक्त कर सकता था। मूलतःरोमैंटिक होने के कारण बाह्योपचार की उपेक्षा करना स्वभाव के अनुकूल था पर भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट आस्था ने उनके रोमानी दृष्टि-कोण को एक सीमा तक नियंत्रित भी किया। इसलिए प्रसाद की नाट्य-कृतियों का आकलन करने के लिए किसी शास्त्रीय माप का प्रयोग गुनाहे बेलज्जत है।"[248] उनके प्राय: सभी नाटकों के विश्लेषण और संवाद को समझने के लिए उनके रोमैंटिक रुझानों को ध्यान में रखना आवश्यक होगा।

---

[247] बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक, 2008, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ:50

[248] वहीं, पृष्ठ: 51

'शासन की पोल' और प्रतिबंधित हिंदी नाटकों की तुलना प्रसाद के नाटकों में केवल चन्द्रगुप्त से की जा सकती है। क्योंकि इस नाटक में प्रसाद ने भारत की जनता और अंग्रेजी राज के संघर्षों को दिखलाने की कोशिश की है। जिसके बारे में गिरीश रस्तोगी लिखती हैं कि "प्रसाद की राष्ट्रीयता संकुचित राष्ट्रीयता नहीं है और न ही उग्र राष्ट्रवाद जैसा पश्चिम के कुछ देशों में देखने को मिला था। 'चन्द्रगुप्त' में न केवल मगध की स्वाधीनता के लिए युद्ध होता है वरन पुरु या पर्वतेश्वर के लिए भी सहायता की जाती है – वहीं पर्वतेश्वर जिसने नन्द का अपमान किया है। चाणक्य को कुछ नहीं महत्त्व दिया है। उसी को सिकंदर से युद्ध के समय चन्द्रगुप्त द्वारा सहायता मिलती है। इसी राष्ट्रीयता के कारण पर्वतेश्वर सिकंदर से एक नरपति का दूसरे नरपति के साथ व्यवहार करने की बात करता है और सिकंदर को हतप्रभ एवं विमुग्ध कर देता है। सिकंदर कहता है, "मैंने एक आलैकिक वीरता का स्वर्गीय दृश्य देखा है। होमर की कविता में पढ़ी हुई जिस कल्पना से मेरा हृदय भरा है, उसे यहाँ प्रत्यक्ष देखा।" इसी के कारण सिकंदर बार-बार नतमस्तक होता है, चाहे वह दण्डयायन के आश्रम में या मालव युद्ध में। अंत में जाते हुए इसी वीरता, इसी सांस्कृतिक उदात्तता के कारण वह कहता है, धन्य हैं आप, मैं तलवार खींचे हुए भारत आया था, हृदय देकर जाता हूँ। विस्मय, विमुग्ध हूँ। जिनसे खडग परीक्षा हुई थी युद्ध में जिनसे तलवारें मिली थीं, उनसे हाथ मिलाकर मैत्री के हाथ मिलाकर जाना चाहता हूँ। यही प्रसाद की राष्ट्रीयता का स्वर है जो विदेशी आक्रान्ता से प्रस्तिगान कराता है।"[249] प्रसाद के नाटकों में उपनिवेशवाद या भारत में अंग्रेजी राज के विरोध का यही स्वरूप दिखता है। देवदत्त का नाटक 'शासन की पोल' को एक तरह से नाटक नहीं भी कहा जा सकता और एकांकी भी नहीं , चुकी एकांकी एक अंक वाला होता है। जिसे अंग्रेजी में वन ऐक्ट प्ले कहा जाता है। लेकिन इस नाटक में भूमिका और एकांकी या नाटक को अलग नहीं किया गया है। इसके शुरुआत में देवदत्त लिखते हैं "आज 'सरोज नगरी' में एक नया ही रंग दिखाई दे रहा है। जिधर देखिए उधर ही अलग-अलग दलबन्दियाँ दिखाई दे रही हैं 'जिसकी ढपली उसकी राग' की कहावत चरितार्थ हो रही है एक देश और जाति में पक्ष है तो

[249] गिरीश रस्तोगी, हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष, 2017, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 38

दूसरा अपने भाइयों गर्दनों पर छुरी फेर रहा है।"[250] यह नाटक की पहली लाइन है। जिसके माध्यम से भारत के मौकापरस्त लोगों और अंग्रेजी राज के साथ समझौते करने वालों की आलोचना की गई है।

इस नाटक में नाटककार ने दो भाइयों के माध्यम से देश की आज़ादी में सहयोग करने के लिए बहस है। इसमें दो ही पात्र है। जिनका नाम मोहन और सोहन है। जिसके बारे में देवदत्त ने लिखा है कि "महीना ज्येष्ठ का है समय दोपहर का है भगवान भास्कर अपनी किरणों से संसार को तपा रहे हैं ऐसे समय में सोहन अपने बाग़ के विशाल भवन की दलान में बैठे प्रकृतिमाता के सौन्दर्य को निहार रहे थे एकाएक उनके दिल में अपने बड़े भाई मोहन सिंह की मूर्खता का खयाल आ गया जिससे उनसे रहा न गया और वे एकाएक क्रोधवेश हो कह उठे – जिसके ह्रदय में स्वत्माभिमान नहीं, वह नर नहीं पशु के सामान है। जिसे आत्मनिंदा सुन रोष नहीं आता, जिसे अपनी जाति पर लांछन लगते देख क्रोध नहीं आता, जिसे अपने देश की दुर्दशा देख आवेश नहीं आता, वह सदा जगत में पुरुषत्व, हीन, नीच, कायर, क्लीव, और मृतक के समान है। जो अपने जाति भाइयों से ईर्ष्या रख उनकी उन्नति देख, कुत्तों की तरह गुर्राते हैं।"[251] इस नाटक का मूल आधार भी यही है। जहाँ सोहन अंग्रेजी सरकार की मदद करता है, और मोहन उसका विरोध करता है। सोहन छोटा भाई रहता है और उसे असहयोग पर विश्वास नहीं रहता है। उसको लगता है कि इतना विशाल और मजबूत साम्राज्य का सामना असहयोग और भारत की कोई शक्ति नहीं कर सकती है।

नाटक में आगे दफा 144 की बात कही गई है। इसके माध्यम से यह दिखलाने की कोशिश की गई है कि अंग्रेजी हुकूमत सबकी आवाज को दबा रही है। वहीं सोहन यह लगातार प्रश्न किये जा रहा है कि कोई मजबूत विद्रोह या आवाज़ नहीं आ रही है। मोहन कहता है कि "जब सबल उनके मुँह पर 144 दफ़ा की ताली ठोककर उन्हें जबान तक न हिलाने का अवसर न दे उनकी सारी स्वतन्त्रता हरण

---

[250] देवदत्त, शासन की पोल, सितम की इंतिहा क्या है, सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 328

[251] वहीं, पृष्ठ: 329

कर लेंगे तब लाचार हो वह कर ही क्या सकेंगे।"[252] इसके बाद उसके भाई को अफ़सोस होता है। और अपने बड़े भाई द्वारा दिखाए रास्ते पर चलने को तैयार होता है। नाटक में अंग्रेजी अत्याचारों का इतिहास है। जिसे दर्ज करने के लिए बातचीत का सहारा लिया है। सोहन कहता है "अपने नेत्रों के सामने अपने देश पर, अपनी जाति पर, अपनी बहू-बेटियों पर अत्याचार हो और हम लोग हस्तक्षेप न करें, उदासीन हो देखा करें या मनुष्यत्व हीन कायर पुरुषों की बात है। जिनके हृदय में जरा भी स्वदेश प्रेम जागृत है, जिनके हृदय में जरा भी जातीयता की उच्चता का लवलेश है, वे कभी भी हाथ पर हाथ रक्खे बैठ नहीं रहते, अपने देश, जाति, धर्म और भू-बेटियों का सतीत्व की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग कर देते हैं। एक दुराचारी धूर्त विषयी, लम्पटी शासन जिसने अपनी जाति भाई में कस्बानी की जान कारागार में भूखों ही ले डाली, जिसने अपने निर्दोष देश आयरलैंड का खून किया, जिसने सैकड़ों हिन्दुस्तानी निहत्थी प्रजा पर जलियाँवाले बाग़ में मशीनगन की बौछार की जिसने नन्हें-नन्हें बालकों को भालों पर से उछालकर गेंद की तरह मारा, जिसने माँ-बहनों को नग्न कर उनके मुँह पर थूका, उनके सतीत्व को नष्ट किया, जिसने हमारे मुसलमान भाइयों के फतवे को जब्त कर उनके धर्म की तोहीनी की, और जिसने खिलाफत के मसले को खड़ा कर ...।"[253] यह सारी घटनाओं को दर्शाने का तात्पर्य एक तरफ इतिहास में दर्ज करना है तो दूसरी तरफ इन अत्याचारों की ताप को जनता के मन में बरकरार रखने की भी है।

इस नाटक का मूल उद्देश्य कोई कला रूपों से सुसज्जित नाट्य रचना करना नहीं है। बल्कि एक छोटे रूप भारत में हुए अथवा हो रहे अत्याचारों को प्रस्तुत करता है। वहीं दूसरी तरफ पारिवारिक संरचना में दो भाइयों के माध्यम से भारतीय आज़ादी का संघर्ष और पक्षधरता को भी दिखलाने की कोशिश की गई है।

[252] वहीं, पृष्ठ :330

[253] वहीं, पृष्ठ :331

लाल क्रांति के पंजे में

यह नाटक पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र द्वारा 1924 में लिखित है। पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की रचनाओं के बारे में यह कहा जाता है कि वह क्रांतिकारी विचारों से युक्त हैं। जो की सही भी है। प्रतिबंधित हिंदी कहानी अध्याय में भी इसका जिक्र है। 'लाल क्रांति के पंजे में' नाटक रूस की क्रांति पर केन्द्रित है। जिसके बारे में सत्येन्द्र कुमार तनेजा लिखते हैं कि "'लाल क्रांति के पंजे में' कहने भर के लिए एक लघु नाटक है परन्तु उसकी अंतर्वस्तु का फलक और चित्रांकन का संश्लिष्ट स्वरूप एक सम्पूर्ण नाटक का अनुभव देता है ! रूस की जन क्रांति और बोल्शेविकों की विजय अर्थात ज़ार निकोलस की हत्या अर्थात सम्राट एवम साम्राज्यवाद का विनाश और उसी के आश्रय में फल-फूल रहे पूंजीवाद की समाप्ति-ग़रीबों के राज्य की स्थापना जैसे बड़े-बड़े सवालों का निदान यहाँ किया गया है। यह सारा संग्राम महात्मा लेनिन के नेतृत्व में लड़ा गया और अंत में क्रांति और स्वतन्त्रता हासिल हुई। इस सुखांत कृति की विजय-श्री का हकदार महात्मा लेनिन है, जाहिर है, इस नाट्य कृति का नायक भी वही कहा जाएगा।"[254] पहली बात, इस नाटक में लेनिन को महात्मा के शब्दों से अभिहित किया गया है। जो अकसर नहीं देखा जाता है। इसका मुख्य कारण नाटकार ने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के नायक महात्मा गाँधी की जन स्वीकृति जिस तरह की थी। उसी तरह की स्वीकृति रूस में लेनिन की थी। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन रुसी क्रान्ति और लेनिन की रणनीतियों से बहुत हद तक प्रभावित थी। इसीलिए गांधी ने लिखा था कि "लेनिन जैसी महान आत्मा के त्याग से तपीभूत आदर्श व्यर्थ नहीं जा सकते, उनके त्याग के पुनीत उदाहरण सदा-सदा के लिए आलोकित रहेंगे और समय व्यतीत होने के साथ-साथ आदर्श को उज्ज्वल और शुद्ध करेंगे।"[255] इसके आलवा जवाहरलाल नेहरु ने लिखा

[254] सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 'सितम की इन्तहा क्या है', 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ : 347

[255] उद्धृत द्वारा, ई चेलिशेव, 'भारतीय साहित्य में लेनिन', प्रदीप सक्सेना (अतिथि सम्पादक,) अजेय कुमार (सम्पादक), उद्भावना, अंक: 138, अक्तूबर-दिसंबर 2019, गाज़ियाबाद, पृष्ठ : 111

कि “लेनिन न केवल स्वदेश रूस में ही शक्तिशाली परम्परा बन गये हैं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के स्पृहणीय अमर व्यक्ति में हो गए हैं... वह स्मारकों अथवा चित्रों में जीवित नहीं बल्कि अपने विशाल कार्य में और करोड़ों मेहनतकशों के हृदयों में जीवित हैं, जो उनके उदहारण से प्रेरणा लेते हैं और बेहतर दिन की आशा करते हैं।”[256] गाँधी और नेहरू दोनों ने लेनिन को गैर-बराबरी और संघर्ष का प्रतीक माना है। लेनिन रूस में लम्बे समय से चली आ रही ज़ारशाही पर प्रहार ही नहीं करते बल्कि जनता को उसके विरुद्ध आवाज बुलंद करने की हिम्मत भी देते हैं, और वहाँ से ज़ार को उखाड़ फेंक समाजवाद करने में सफल होते हैं। जो मार्क्सवादी सिद्धांतों पर आधारित शासन प्रणाली को आधार बनाया। जिसके बारे में जोसेफ स्टॉलिन ने लिखा कि “लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध किताबों ‘क्या करें’ और ‘एक कदम आगे, दो कदम पीछे’ में जो योजना विकसित की वह यह थी। पार्टी शक्तियों के संगठन-केंद्र के रूप में एक अखिल रुसी राजनीतिक अखबार कायम किया जाय, दृढ पार्टी काडरों को मुकामों में पार्टी के ‘नियमित दस्तों’ के रूप में संगठित किया जाए, अख़बार के माध्यम के जरिये उन काडरों को एक साथ जमा किया जाए और उन्हें संयुक्त करके एक अखिल रुसी लड़ाकू पार्टी बनायी जाए जिसकी साफ-साफ निर्धारित सीमा हो, जिसका स्पष्ट कार्यक्रम हो, दृढ कार्यनीति हो और एक ही इच्छा शक्ति हो। इस योजना की खूबी इस बात में थी कि यह रुसी वास्तविकताओं के पूरी तरह अनुकूल थी और यह कि सबसे अच्छे सक्रिय कार्यकर्ताओं के संगठनात्मक अनुभव का यह अपूर्व कुशलता से निकला हुआ सार थी। इस योजना के लिए लड़ाई में रुसी सक्रिय कार्यकर्ताओं की बहुसंख्या ने दृढ़ता के साथ लेनिन का साथ दिया और फूट के डर से पैर पीछे नहीं खींचा। इस योजना की विजय ने उस घनिष्ठ रूप से गठी और फौलाद बनी कम्युनिस्ट पार्टी की नींव डाली जिसकी दुनिया में कोई बराबरी नहीं है।”[257]

दुनिया की क्रांतियों में फ्रेंच क्रांति 1799 और रुसी क्रांति 1917 ऐसी क्रांतियाँ थीं। जो दुनिया के सामने संघर्ष और स्वतन्त्रता की नज़ीर पेश करती हैं। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का संघर्ष इन

---

[256] वहीं, पृष्ठ : 112

[257] जोसेफ स्टॉलिन, लेनिन-रुसी कम्युनिस्ट पार्टी के संगठनकर्ता और नेता, प्रदीप सक्सेना (अतिथि सम्पादक,) अजेय कुमार (सम्पादक), उद्भावना, अंक: 138, अक्तूबर-दिसंबर 2019, गाज़ियाबाद, पृष्ठ : 35

क्रांतियों से बहुत हद तक प्रेरणा ग्रहण किया और अंग्रेजी राज के विरुद्ध संघर्ष में अमल में लाया। रुसी क्रांति भारतीय साहित्यकारों और स्वतन्त्रता सेनानियों दोनों को खूब प्रभावित किया। "बोल्शेविक क्रांति को विषय बना कर संस्कृत के जिन रचनाकारों ने पद्य या गद्य के माध्यम से भावनात्मक या विचारात्मक अभिव्यक्ति दी उनमें तीन नाम विशेष स्मरणीय हैं—राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन तथा हरिदत्त पालीवाल 'निर्भय'। तीनों का जन्म पारम्परिक ब्राह्मण परिवार में हुआ, राहुल जी तथा नागार्जुन एक दूसरे के सम्पर्क में भी रहे, और दोनों की जीवन रेखाओं में भी कुछ समानताएं हैं। लगभग इसी पृष्ठभूमि से इनके समकालीन दो और संस्कृत के कवि – जानकीवल्लभ शास्त्री और रामनाथ पाठक 'प्रणयी' आते हैं। शास्त्री जी ने अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भिक दौर में संस्कृत में भावपूर्ण गीत लिखे। इन पर हिंदी की छायावाद की कविता का—विशेष रूप से निराला का प्रभाव था। बाद में शास्त्री जी ने कारागार में बंद एक क्रांतिकारी के जीवन को लेकर संस्कृत में 100 श्लोकों का एक मार्मिक खंडकाव्य बंदीजीवनम् के नाम से लिखा, जो बेला पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। पर इस खंड काव्य में सीधे-सीधे रुसी क्रांति का सन्दर्भ नहीं है, देश के लिए क्रांति और उत्सर्ग का भाव अवश्य है। इसी तरह रामनाथ पाठक 'प्रणयी' ने क्रांति और देशभक्ति को ले कर संस्कृत में बहुत मार्मिक गीत लिखे। पर रुस में बीसवीं सदी के पहले दो शतकों में हुई उथलपुथल पर सीधे कोई प्रतिक्रिया उनके गीतों में नहीं है।"[258] यह उद्धरण कई मायनों में जरुरी है। जैसा कि ऊपर रुसी क्रांति और भारतीय साहित्य का सन्दर्भ लिया गया। संस्कृत साहित्य को क्षेत्रीय भाषाओं के साथ भारतीय साहित्य और हिंदी साहित्य का मेरुदंड माना जाता है। लेकिन अध्ययन और शोध की अगम्भीरता ने यह साबित कर दिया की संस्कृत साहित्य में क्रांति की चिंता नहीं दिखाई पडती है। जिस तरह प्रतिबन्धित साहित्य को अध्ययन, अध्यापन और मूल्यांकन से दूर रखा गया है।

---

[258] राधावल्लभ त्रिपाठी, बोल्शेविक क्रांति और संस्कृत साहित्य, प्रदीप सक्सेना (अतिथि सम्पादक,) अजेय कुमार (सम्पादक), उद्भावना, अंक: 138, अक्तूबर-दिसंबर 2019, गाज़ियाबाद, पृष्ठ :118

उग्र का यह नाटक आठ दृश्यों में है। जिसमें कुल नौ पात्र हैं। पत्रों का परिचय इस प्रकार है। ज़ार निकोलस, महात्मा लेनिन, ट्रोज़िक और प्रिंस एलक्सिस -पुरुष पात्र, ज़ारीना, ओलगा, टेटियाना, मेरी निकोलायवना और एसन टेसिया -महिला पात्र हैं। इसके आलावा सुरेन्द्र वर्मा ने कुछ पंक्तियाँ नाटक के भूमिका के रूप में लिखीं हैं। जो इस प्रकार है

" बने एक ही मिट्टी के दो पुतले हैं भाई भाई।
हिन्दू-मुसलिम लड़ें देश पर विपद घनघटा घिर आई।
अरे, आज तो परम तपस्वी का सिंहासन डोल उठा।
पशुता के प्रांगण में वह यों सकरुण स्वर से बोल उठा।
जल पीकर ही रहूँ ईश आराधन व्रत मैं कर पाऊं।
सूने सिंहासन पर अपने मालिक को बिठला आऊँ।"[259]

इन पंक्तियों के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने 1911 से 1922 के बीच हुए दंगों और देश की स्वधीनता आन्दोलन में आ रही बाधा को रेखांकित करने की कोशिश करते हैं। जिसके बारे में नरेंद्र शुक्ल लिखते हैं कि "हिन्दू-मुसलिम एकता के तथाकथित स्वर्णकाल की इन अभिव्यक्तियों को यदि हम 1911 से 1922 के बीच हुए श्रृंखलाबद्ध दंगों और 1922 के बाद के साम्प्रदायिक विस्फोट के चश्मे से देखें तो गाँधी जी द्वारा ख़िलाफ़त के प्रश्न को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने के प्रयोग की सफलता-असफलता पर पुनर्विचार करना होगा।"[260] इन मुस्लिम हिन्दू तनाव के वजह से स्वतन्त्रता संघर्ष में बाधा उत्पन्न हो रही थी।

पहले दृश्य में बोल्डोगोई स्टेशन का दृश्य है। जहाँ ज़ार अपनी सत्ता और उसके विद्रोह के ऊपर विचार और पश्चताप कर रहा है। सोचता है "क्रान्ति-क्रान्ति ! मुझे स्वप्न में भी ऐसी आशा नहीं थी कि मेरे साम्राज्य में क्रान्ति के भयंकर पैर पड़ेंगे। रूस की जनता की नज़रों में मैं सर्वशक्तिमान परमात्मा था,

---

[259] पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, लाल क्रांति के पंजे में, संत्येंद्र कुमार तनेजा (सम्पा.), सितम की इन्तहा क्या है?, 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ : 355

[260] नरेंद्र शुक्ल, ब्रिटिश राज और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, 2017, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ:175

उससे भी कुछ बड़ा था पर क्रान्ति के दर्शन करते ही मेरी सम्पूर्ण शक्तियाँ लुप्त हो गईं ! क्रांतिकारियों ने बोल्डगोई स्टेशन के आगे की लाइनें उखाड़ दीं। सम्राट का रथ रोक दिया गया ! किस सम्राट का ? जो अपनी भ्रू-भंगिमा मात्र से लाखों प्रजा की हत्या कर सकता था, जिसके एक इशारे से देश में प्रलय का दृश्य उपस्थित किया जा सकता था ! (कुछ ठहरकर) कल जिस समय यहाँ पर जनरल रस्की आया था उस समय मैंने स्वतन्त्रता की घोषणा लिखकर और उस पर राजकीय मुहर लगाकर रख दी थी – मैं प्रजा को पूरी स्वतन्त्रता देने को तैयार बैठा था। पर जनरल ने कहा, "अब, सब व्यर्थ है, बहुत देर हो गई सम्राट !" क्रांतिकारी स्वतन्त्रता चाहते हैं पर मेरी दया से नहीं – अपने बल से ! (फिर कुछ ठहरकर) बहुत देर हो गई, अभी तक राजधानी से कोई सम्वाद नहीं आया।"[261] आगे ज़ार कुछ बड़बड़ाने लगता है। और अपने पहरेदार से कहता है कि 'क्रांतिकारी से बातचीत के लिए राडजैंको को भेजा है। वह अभी आया नहीं।'[262] लेकिन हकीकत में राजधानी के दो अधिकारी उससे सिफारिश करते हैं कि वह रूस का शासन छोड़ दे। जिसका जार प्रतिकार करता दिखता है। इस शासन को अपने प्रतिष्ठा और पुत्र से जोड़ते हुए पागलों की तरह फिर कुछ बड़बड़ाने लगता है। "हम सारे रूस के सम्राट, फिनलैंड के ग्रांड ड्यूक, पौलेंड के जार अपनी विश्वास पात्र प्रजा को सूचना देते हैं*** हमारा विचार अपने प्रिय पुत्र से जुदा होने का नहीं है इसलिए अपने भाई ग्रांडड्यूक माइकेल एलेग्जेंड्रोविच को अपनी शुभकामनाओं के साथ सिंहासनाधिकार देते हैं। *** ईश्वर रूस की रक्षा करें।"[263] उधर ज़ार के इस पागलपन का उदघोष करते हुए उसके ही अधिकारी उसी के सामने जनता को ज़ार की स्थिति दिखाते हैं। उनके इस दिखाने में दुनिया के सत्ताधारियों को संदेश देने का भाव शामिल होता है।

दूसरा दृश्य पेट्रोग्राड शहर का है जहाँ बोल्शेविक दल के दो गुप्तचर ज़ार के त्याग पत्र पर बात कर रहे हैं। लेकिन उससे पहले एक गान है।

---

[261] पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, लाल क्रांति के पंजे में, संत्येंद्र कुमार तनेजा (सम्पा.), सितम की इन्तहा क्या है?,2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ :357

[262] वहीं, पृष्ठ: 357

[263] वहीं, पृष्ठ: 358

जय बोले शिवम् ! जय बोल शिवम् !

नीचे, ऊपर की ओर चले

नर पशुओं के कट रहे गले

आते हैं सबके दिवस भले

जय बोल शिवम् ! जय बोल शिवम् !!

अत्याचार का भव्य भवन

ढह गया देखकर क्रांति-पवन

पीड़ित मन में हो गए मगन

जय बोल शिवम् ! जय बोल शिवम् !![264]

आगे जनता और सत्ता के स्वरूप को दिखलाने की कोशिश की गई है। जनता और उसके लोकमत के सामने सम्राट को एक पुतला कहा गया है। दूसरा गुप्तचर कहता है कि “हाँ, हाँ सचमुच। त्याग कैसे न देता, प्रबल लोकमत का सामान था। सम्राट क्या है। लोकमत का पुतला ही न। लोकमत के पुतले ने अपने को लोकमत का विधाता और संहर्ता समझ लिया था, यह सिंहासन त्याग उसी लोकमत के अपमान का साधारण दंड है।”[265] इसी सन्दर्भ में सोलहवें लुई और फ्रांस की राज्य क्रांति का उदाहरण दिया जाता है। इसके बाद ज़ार के सत्ता त्यागने के वक्त उसकी पत्नी ज़ारीना के दृश्य को भी दिखलाया गया है। इससे पहले ज़ारीना के अनुपस्थिति में ज़ार अपने त्यागपत्र दे देता है। इन्हीं घटनाक्रम के बीच ट्रोजकी गुप्त वेश में प्रवेश करता है। जो इस संघर्ष में लेनिन का दाहिना हाथ होता है। और कहता है कि “तुम लोग यहाँ क्या कर रहे हो ? अपने-अपने काम पर जाओ। वीरो ! अभी विश्राम लेने या गप्पे मारने का समय नहीं आया है। ज़ार के सिंहासन त्याग करने से क्या होता है। साँप गया तो साँप का भाई आया। हमें रूस की काया पलट करना है, गरीबों का राज्य स्थापित करना है। ग्रांडड्यूकया करंसकी गरीबों के समर्थक नहीं, धनियों के दास हैं। गरीबों का राज्य स्थापित करने के लिए पूंजीवाद का खून

---

[264] वहीं, पृष्ठ:359

[265] वहीं, पृष्ठ:359

करना होगा और फिर उसी रक्त गंगा में स्नान कर पवित्र होने के बाद उसी खून से गरीब- सम्राट महात्मा लेनिन का अभिषेक करना होगा। समझे ? अभी विश्राम का नाम भी न लो !"[266] लेनिन और रुसी क्रांति की आधारभूमि ही पूंजीवाद की जगह समाजवादी राज्य की स्थापना करना था। जिस व्यवस्था के केंद्र में सर्वहारा था। रूस ने इस व्यवस्था को अपने शासन व्यवस्था को अमल में लाया।

अगले दृश्य में ज़ार सत्ता जाने पर पश्चताप करता है। जारस्कोसीलो भवन में वह बैठे-बैठे सोचता है कि दुनिया उसके बारे में क्या सोचती होगी। वह सोचता है कि "कैसा मानसिक कष्ट है ! कितनी भीषण वेदना है ! मैं सम्राट हूँ, सम्राट पद ऐसा क्षणभंगुर होता है ? दुनिया इस समय जार के विषय में क्या सोचती होगी ? यही न कि अत्याचारी नरक की ओर धकेला जा रहा है। नरक ! यह नरक नहीं तो क्या है ? रूस के छोटे-छोटे जीव- सिपाही, पहरेदार तक इस समय ज़ार को अपना गुलाम समझते हैं ? किस ज़ार को? उसी को जो एक दिन किसी को यहाँ तक कि ईश्वर को भी, अपने सामने कुछ समझता नहीं था। सम्राट ज़ार इस समय क्षुद्र है, अकिंचन है, संसार के छोटे-से छोटे जीव की दया का भिखारी है। ईश्वर तुम्हारा दंड इतना भीषण होता है ? तुम्हारा न्याय ऐसा भयानक होता है ?"[267] आगे ज़ार के ही शासनकाल में जो अफसर थे उससे घृणा करने लगते हैं, और अपने आप को रुसी जनता का प्रतिनिधि मानने लगते हैं। इसके वह ज़ार की पिछले व्यवहारों का भी ब्यौरा प्रस्तुत करता है। इसके दलील में ज़ार फिर भी यह दोहराता रहता है कि रुसी जनता मेरे तरफ हाथ बढ़ाई थी। तभी मैं शासन में था। इधर उसके बच्चो पर हो रहे अत्याचारों का भी वर्णन है। नाटककार ने अपने नाटक एक दृश्य इस तरह का उपस्थित किया है। "मैं अपने मित्र के साथ खेल रहा था इसीलिए। उसने मुझे मारते हुए कहा – कैदखाना खेलने की जगह नहीं यह तेरे बाप की राजधानी नहीं है।"[268] इससे पहले रोता है। क्योंकि उसे पहरेदार ने एक थप्पड़ मारा है। इधर जार अपने बच्चे को समझाता है कि अब हम सम्राट नहीं हैं। अब हम कैदी हैं और कैदियों को अमोद प्रमोद वर्जित है। इसके आलावा फिर से निकोलस

[266] वहीं, पृष्ठ:360
[267] वहीं, पृष्ठ:361
[268] वहीं, पृष्ठ: 361

के बच्चे का उदाहरण देता है कि निकोलस के बच्चों को कुत्तो को खाने के लिए छोड़ दिया गया था। इधर बोल्शेविकों ने ज़ार को तलाशना करना शुरू करते हैं , और ज़ार के घर को कैदखाना तबदील किया जाता है।

चौथे दृश्य में ज़ार को अपना सारा कार्य खुद कार्य करता है। जिसे नाटककार ने एक गीत का सहारा लेकर दर्ज करता है।

"जो कल सम्राट था वह आज कैदी-सा दिखता है
दिवाकर आग बरसाकर के अस्ताचल को जाता है
जिसे कल देखकर सुरसैन्य थरथर कांप उठता था
उसे नरक्षुद्र का भय है, व डर से थरथराता है।
अँगुलियों से जो अपने मुजलिमों का काटता सर था।
वही अब काटने लकड़ी कुल्हाड़ा लेके जाता है।
जो कल तक चापलूसों की जमातों को खिलाता था।
वही अब चार दाने दूसरों से लेके खाता है।
हँसाता था हजारों को जो लाखों को रुलाता था
उसी पर हँस रही दुनिया फलक उसको रुलाता है।"[269]

उग्र ने गीत को दासी से गवाया है। जिसमें ज़ार का जीवन यात्रा है। ज़ार अपने दुःख से परेशान है। जो जनता अभी कुछ ही दिनों पहले तक जार के कहे के अनुसार चलती थी। अब वहीं जनता उसको अपमानित करती है। उसको अब कोई अपना रक्षक नजर नहीं आता है।

अगले अंको में ज़ार का एक विश्वासी ही उसकी और उसके परिवार को बुरी तरह मार-मार कर हत्या कर देता है। तब नाटककार लिखता है –

"जो नाशक था वह नष्ट हुआ,

[269] वहीं, पृष्ठ:363

जो शासक था वह भ्रष्ट हुआ।

जिससे स्वदेश को कष्ट हुआ।

वह आज समूल विनष्ट हुआ।"[270]

यह नाटक भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और उसके संघर्ष में आ रही बाधाओं को प्रोत्साहित करने के लिए लिखा गया जान पड़ता है। जिसके लिए रुसी जनता का संकट और शसक्त नेतृत्व के माध्यम से यह दिखलाने की कोशिश करता है कि रुसी जनता मजबूत जारशाही को अपने संघर्ष और दृढसंकल्प से उखाड़ देती है। तो हम क्यों नहीं इस अंग्रेजी हुकूमत को नकार सकते हैं । दूसरी तरफ रुसी साहित्य भारतीय साहित्य परम्परा को दृढ करता है।

[270] वहीं, पृष्ठ: 370

बरबादिय हिन्द

गोबिंद राम का नाटक 'बरबादिय हिन्द' 1927 में लिखित है। इस नाटक को इसके साहित्यिक मूल्य के लिए नहीं बल्कि ऐतिहासिक मूल्य के लिए अध्ययन करना चाहिए। इस नाटक की भूमिका में गोबिंद राम ने लिखा है कि "भारतवर्ष के सर्वनाश का इतिहास रक्त से लिखा हुआ है। इस पर जितने भी रक्त में आँसू बहाए जाएँ थोड़े हैं। कुछ समय हुआ मुझे अंग्रेजी में लिखी हुई कुछ ऐसी पुस्तकें पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिनमें यह बताया गया था कि भारतवर्ष के सर्वनाश का वास्तविक कारण उसके व्यापार का सर्वनाश है। इन पुस्तकों से यह पता चलता है कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के व्यापार का सर्वनाश करने के लिए हम पर क्या-क्या अत्याचार किए हैं ? वह घटनाएँ ऐसी ह्रदय बेधक हैं कि उनको पढ़कर मेरे ह्रदय पर बड़ा प्रभाव हुआ यह नाटक उस प्रभाव का परिणाम है।"[271] लेखक का यह वक्तव्य एक तरह से नाटक की पृष्ठभूमि तैयार करता है। यह नाटक साहित्यिक उद्देश्यों से बढ़कर भारतीय शोषितों की स्थिति के साथ नाट्य विधा इसके लिए मुफीद विधा है। जिसके बारे में गिरीश रस्तोगी लिखती भी हैं "हिंदी साहित्य की शताब्दी का आरम्भ ही नाट्य-साहित्य से, एक समग्र नाट्यांदोलन से होता है। हिंदी भाषा, हिंदी गद्य, सांस्कृतिक जागरण, सामाजिक उत्थान, ब्रिटिश दासता से मुक्ति, राष्ट्रीयता और आधुनिकता के प्रश्नों से गहरे जुड़ता हुआ नाटक साहित्य की केन्द्रीय विधा बना। अपने दृश्यात्मक वैशिष्ट्य और प्रत्यक्ष शक्ति एवं जीवंता के, लेकिन इसी दृश्य-पक्ष, रंगमच की सर्जनात्मकता के कारण साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में नाट्य साहित्य की विकास, स्थितियां, सन्दर्भ और चुनौतियाँ ज्यादा जटिल भी हो जाती है।"[272] उपर्युक्त उद्धरण में सर्जनात्मकता के साथ जटिलता को गिरीश रस्तोगी जोड़ती हैं। लेकिन बरबादिय हिन्द' (एक रक्त- शोषक राष्ट्रीय नाटक) में यह सर्जनात्मकता इतिहास से जुड़ा हुआ है। जिन आन्दोलनों और समाज सुधार से गिरीश रस्तोगी

[271]गोविन्द राम, 'बरबादिय हिन्द', सितम की इन्तहा क्या है? सात जब्तशुदा हिंदी नाटक, सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सम्पा.), 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ: 383

[272] गिरीश रस्तोगी, 'बीसवीं शताब्दी का हिंदी नाटक और रंगमंच', 2004, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ: 82

नाट्य आन्दोलन को जोड़ती हैं। आन्दोलन के क्रम में प्रखरता के साथ गोविन्दराम जन-जन तक पहुँचाने का कार्य करते हैं।

इतिहास और साहित्य का शिल्प अलग होता है। लेकिन जब समय और समाज दोनों संघर्ष के दौर से गुजरता है तो साहित्य भी इतिहास का कार्य करने लगता है। जिसका पुख्ता प्रमाण यह नाटक भी है। मसलन इस नाटक में नाटककार ने अपनी भूमिका में बार-बार इतिहास के तरफ ध्यान आकर्षित किया है। वह लिखता है कि "यह नाटक ईस्ट इंडिया कंपनी के अत्याचारों का हृदय बेधक वर्णन है। और ईस्ट इंडिया कंपनी तो केवल एक व्यापारिक कंपनी ही थी। उसकी किसी कार्यवाही को बुरा या भला कहना वर्तमान ब्रिटिश सरकार पर कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकता। इसके अतिरिक्त इन नाटक में ऐसी ऐतिहासिक घटनाएँ लिखी गई हैं, जो साधारण ऐतिहासिक पुस्तकों में पाई जाती हैं और जिनकी सत्यता में किसी को संदेह नहीं हो सकता और जिन्हें प्रमाणित करने के लिए सहस्त्रों लेख बद्ध प्रमाण मिलते हैं। इसलिए मुझे पूर्ण विश्वास है कि वर्तमान सरकार ऐसे हानि न पहुँचाने वाले नाटक को ज़ब्त करने व छीनने की भूल न करेगी। और यदि करेगी तो उसका प्रभाव यह होगा कि वर्तमान सरकार अपने आपको ईस्ट इंडिया कंपनी के किए हुए अत्याचारों का उत्तरदाता ठहराती है और वास्तव में वह अत्याचार ईस्ट इंडिया कंपनी ने नहीं प्रत्युत सरकार ने स्वयं किये थे।"[273] कथन में अंग्रेजी राज द्वारा हुए अत्याचारों के माध्यम से इतिहास को पुष्ट करने की कोशिश किया जा रहा है। लेखक को पता है कि अंग्रेजी राज में किस तरह से उसके विरुद्ध या उसके करतूतों को जनता तक पहुँचाने से कैसे रोकती थी। नाटककार को यह चिंता भी है कि हमारे समाज की स्थिति को ज्यादा से ज्यादा जन तक पहुंचाएं। लेकिन ब्रिटिश हुकूमत द्वारा बनाये कानूनों ने उसे बाधित कर रखा है।

"जिसे थे खाना-ए-ऐश समझे

कि जो थी दार उलकरार दुनिया

---

[273] गोविन्द राम, 'बरबादिय हिन्द', सितम की इन्तहा क्या है? सात जब्तशुदा हिंदी नाटक, सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सम्पा.), 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ: 354

जो चश्म बीना खुली तो देखो

यह है रजों उलफ़त का दार दुनिया।"[274]

यह पंक्ति गोविन्द राम ने शाहजहाँ के लिए लिखी है। क्रिस हरमन ने दुनिया के साम्राज्यों के सन्दर्भ में एशिया और भारत पर विचार करते हुए लिखा है कि "पर इस बीच यूरोपेत्तर संसार रुका हुआ नहीं था। मैक्सिको और पेरू के साम्राज्य अवश्य तत्काल यूरोप के उपनिवेशकों के सामने ध्वस्त हो गए थे। पर यही बात शेष अमरीका में सत्रहवीं सदी तक बस पूर्वी पट्टी पर उपनिवेश कायम हो सके थे। एशिया और अफ्रीका में बस कुछ व्यवसायिक केंद्र ही स्थापित हो पाए थे। हालैंड के उपनिवेशक दक्षिण अफ्रीका में हाटेनटाट और बुशमन जैसी जनजातियों को जीत सके थे। पर उत्तर में बढ़ना 200 वर्षों बाद ही सम्भव हो पाया। पुर्तगालियों ने गोवा अवश्य जीत लिया था। भारत के पश्चिम तट पर, और वहां सोलहवीं सदी में एक नगर बसा लिया था। वह तत्कालीन यूरोप के स्तर से प्रभावशाली था। उन्होंने चीन के तट पर मकाओ नामक व्यवसायिक केंद्र भी स्थापित कर लिया था। पर निकट के राज्यों साम्राज्यों की तुलना में ये मामूली प्रयास था। दक्षिण भारत के चार राज्यों में से एक विजय नगर पहुँच पहले पुर्तगाली ने 1522 में लिखा कि वह रोम जितना बड़ा था। जिसमें 100000 घर थे और संसार में उससे अच्छी आपूर्ति व्यवस्था कहीं नहीं होगी। उसके भग्नावशेष आज भी बताते हैं कि नगर का क्षेत्रफल उस समय के किसी भी यूरोपीय नगर से बड़ा रहा होगा। उसके उत्तर में मुगलों ने जिन्होंने भारत, विजय 1525 में शुरू किया, लाहौर, दिल्ली और आगरा जैसे नगर निर्मित या पुनर्निर्मित किये इसका यूरोप में कोई मुकाबला नहीं था।"[275] यहाँ क्रिस हरमन मुगलों की बसायी सभ्यता की बात करते हैं ? और दूसरे इतिहासकारों, साहित्य और संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा की बात करते हैं। लेकिन शाहजहां का जो रूप इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है। वह इतिहासकारों की पकड़ से बाहर है।

---

[274] वहीं, पृष्ठ: 385

[275] क्रिस हरमन, 'विश्व का जन इतिहास', लाल बहादुर वर्मा(अनु.), 2009, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ: 203

यह नाटक तीन अंकों में विभक्त है। पहले अंक में बादशाह शाहजहाँ की बेटी की तबीयत खराब होती है। जिसके उपचार में तमाम देशी वैद्य, हाकिम असफल हो जाते हैं। तब एक अंग्रेज डॉक्टर आता है। जब अंग्रेज डॉक्टर आता है, तब एक गान दरबार में गाया जाता है। जो इस प्रकार है

"आई बदरिया सावन की आई बदरिया...।
सावन की, मन भावन की, आई बदरिया...।
झूम-झूम कर डालियाँ हैं बजाती तालियाँ
पंछी बोले बोली मन भावन की आई बदरिया ...।"[276]

यह गान शाहजहाँ की बेटी को ठीक होने की आशा में दरबार में गाया जाता है। इसके बाद दरबार का एक मंत्री रानी को सूचित करता है कि, इसी तरह बदरिया गाती रहे, और बादशाह की जीवन में शान बनी रहे। दूसरे तरफ बादशाह की बेटी को अंग्रेज डॉक्टर ठीक कर देता है। उसके बाद बादशाह खुशी से झूम उठता है, और परमात्मा की दुहाई देने लगता है। इसके बाद शाहजहाँ डॉक्टर से पूछता है कि तुम्हें उपहार स्वरूप क्या चाहिए। उसका अंदाज इस प्रकार होता है।

"डॉक्टर साहब! हमें आपने खुश किया है। कहिये-
कौन-सी लिखदें ज़मी व कितना चाहिये मलोजरा
किस जगह बना दें तुझको एक आलिशान घर।।
और क्या चाहिए राहत के सामां डॉक्टर।
जो कहोगे दम में ही हो जायेगा पेशे नज़र।।
इक इशारा से ही हो जाओगे मालामाल तुम।
कि रहोगे उम्र सारी शाद और खुशहाल तुम।।"[277]

[276] गोविन्द राम, 'बरबादिय हिन्द', सितम की इन्तहा क्या है? सात जब्तशुदा हिंदी नाटक, सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सम्पा.), 2010, राष्ट्रिय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ: 354

[277] वहीं, पृष्ठ :389

इस मेहरबानी के लिए अंग्रेज डॉक्टर बादशाह का शुक्रिया अदा करता है। और कहता है कि 'मेरे जीवन का अर्थ ही है मेरी कौम की खुशहाली।' वह चीज़ मुझे दीजिये, जिसमें मेरी कौम को ख़ुशी हो। उसका मतलब पूछता है तो कहता है कि "मतलब ! यह कि खुली आज्ञा कीजिए कि अंग्रेज बिना किसी कर के दिए आप के राज्य में स्वतन्त्रता पूर्वक व्यापार कर सकें। हिन्दोस्तान की असीम धन संपत्ति से लाभ उठा सकें। इंग्लैंड भारतवर्ष से लाभ उठावे और हिंदुस्तान इंग्लैंड की चीज़ों से मजा उठाए-

हिन्द की चीजें बिकें बाज़ार इन्गलस्तान में
और चीजें उस जगह की आएं हिंदुस्तान में
हिन्द का इंग्लैंड से इक रिश्ता इतहाद हो
दोनों को आपस में भाई-भाई मदाद हो।"[278]

बादशाह शाहजहाँ फिर भी नहीं समझ पाता है कि अंग्रेज डॉक्टर भारत में खुला व्यापार करने की इज़ाज़त चाहता है। इसके साथ वह यह भी चाहता है कि, हिन्दुस्तान का कच्चा माल इंग्लैंड ले जाया जाए। जहाँ उससे वस्तुएं तैयार कर पूरी दुनिया और भारत में भी दोगुना कर के साथ बेचा जायेगा। इसलिए वह बार-बार अपनी कौम की उन्नति की बात करता है। कार्ल मार्क्स ने 12 जुलाई 1853 में एक 'देशी रियासते' नाम से भारत पर लेख लिखा है। जिसमें उन्होंने लिखा है कि "ईस्ट इंडिया रिफोर्म एसोसिएशन, (ईस्ट इंडिया सुधार समिति- अनु.) द्वारा प्रकाशित पुस्तिकाओं को पढ़ जाइये, आपको कुछ ऐसा ही लगेगा, जैसे नेपोलियन बोनापार्ट के खिलाफ राजवंश के समर्थकों, ओलिर्यंस के ड्यूक के हिमायतियों, नीले और लाल प्रजातंत्रवादियों, और यहाँ तक कि निराश बोनापार्टवादियों ने मिलकर कोई पंचमेल अभियोग-पत्र तैयार किया है और आप उसको सुन रहे हैं अभी तक उन्हें केवल इसी बात का श्रेय है कि आमतौर पर उन्होंने हिंदुस्तान के मामलों की ओर जनता का ध्यान खींचा और 'कही की ईट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनबा जोड़ा' वाली मसला पर चलते हुए वे जिस ढंग से आजकल

[278] वहीं, पृष्ठ : 390

सरकार का विरोध करते हैं, उसमें वे इसके आगे नहीं जा सकते। उदहारण के लिए, वे हिंदुस्तान में अंग्रेज सामंतों की हरकतों की तो निंदा करते हैं, पर हिन्दुस्तानी सामंतों को देशी राजाओं और नवाबों को मिटाने का वे विरोध करते हैं।"[279] कार्ल मार्क्स इसी तरह के सामंतों और बादशाहों की बात करते हैं। इसीलिए भारत के सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि भारत में साम्राज्यवाद सामंतवाद के कंधों पर सवार होकर आया।

नाटक में आगे बादशाह आदेश देता है कि, अंग्रेजी कौम खुला व्यापार के लिए भारतीय वस्तुओं पर कोई कर और कोई रोक नहीं। जिसकी खबर मुनादी वाला (डुग्गी बजाकर दी जानेवाली सूचना) जन-जन तक पहुंचाता है। वह कहता है कि मुग़ल राज्य में अंग्रेजी कौम को व्यापार करने की खुली आज्ञा है। जिसे छोटे-बड़े व्यापारी सुन हैरान रह जाते हैं , और अंग्रेजी लूट का अंदाज़ा लगाने लगते हैं। इस अंग्रेजी लूट से भारत में आने वाली गरीबी और दुर्बलताओं से वे घबराते भी हैं। इस तरह के संवाद इस अंक के दो पात्र के बीच चलता रहता है। जिनके नाम अमीर अली और करोड़ी मल है। करोड़ी मल कहता है कि "शाह जी ऐसा जरूर होगा। याद रखिए हिंदुस्तान की आने वाली दुर्बलता व गरीबी की नींव आज रख दी गई है –

बड़ा नुकसान होगा हिन्द को ऐसी तिजारत से
कि उड़ जाएगी सब दौलत हमारे देश भारत से
फिर हालत मुल्क की इक रोज हैबतनाक ही होगी
कि यह सोने की चिड़िया देख लेना खाक की होगी।"[280]

इसके बाद अमीर अली इसका प्रतिवाद करता है। उसके लिए यह सौदा भारत और इंग्लैंड दोनों के लिए लाभदायक करार देता है। लेकिन करोड़ी मल इसका फिर दलील पेश करता है, और कहता है

---

[279] कार्ल मार्क्स, 'भारत के सन्दर्भ में', अनिल कुमार (अनु.),2012, सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ: 62

[280] गोविन्द राम, 'बरबादिय हिन्द', सितम की इन्तहा क्या है? सात जब्तशुदा हिंदी नाटक, सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सम्पा.), 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ: 391

कि “आप भूलते हैं। इंग्लैंड में रखा ही क्या है? कोयला और तेल ! यदि हिंदुस्तान से अनाज और रुई न जाए तो बेचारे इंग्लैंड वाले यूं ही मर जाएँ। कोयला खाना पड़े। इसलिए तो यह व्यापार का ढंग बनाया है। यह दोस्ती का ढोंग रचाया है। अपना उल्लू सीधा करते हैं –

दाना दाना खींच कर यह हिन्द से ले जायेंगे।

इसके बदले फ़कत फाका मुफलसी दे जायेंगे।”[281]

लेकिन अमीर अली फिर भी उसकी बातों पर भरोसा नहीं करता है और इसके बदले खिलौने का समान आने की उम्मीद करता है। नाटककार ने भी यहाँ खिलौने को एक रूपक की तरह इस्तेमाल किया है। जिसका प्रतिवाद करोड़ी मल से खिलौने बेचने और भारत की बदहाली को आमने-सामने रखकर दिखलाया है।

द्वितीय अंक में प्लासी की लड़ाई (1757) और भारतीय राजाओं की हार और अंग्रेजों के साथ संधि पर संवाद है। इस अंक में जहाँ एक तरफ सिराजुद्दौला (1757, बंगाल का नवाब) वहीं दूसरे तरफ मीरजाफर के बीच सत्ता को लेकर कशमकश दिखलाया गया है। इस लड़ाई के बारे में शेखर बन्द्योपध्याय लिखते हैं कि “यह व्यक्ति उन जगत सेठों का चहेता था, जिनके समर्थन के बीना तख्तापलट लगभग असम्भव होता। क्या मुर्शिदाबाद दरबार में पहले ही एक षडयंत्र रचा जा चुका था और इसका लाभ अंग्रेजों ने उठाया या फिर षडयंत्र अंग्रेजों ने रचा, यह प्रश्न जिस पर इतिहासकारों ने अपने व्यर्थ के वाकयुद्ध लडे हैं, कम महत्वपूर्ण है। महत्वपूर्ण है तो यह तथ्य है कि एक गठजोड़ था, जिसका परिणाम प्लासी की लड़ाई (जून 1757) था, जिसमें क्लाइव ने आखिरकार सिराज को हरा दिया। यह एक झड़प से अधिक शायद ही कुछ रहा होगा, क्योंकि नवाबी सेना का सबसे बड़ा भाग मीर जाफर की कमान निष्क्रिय रहा। लेकिन इसका गहरा राजनीतिक प्रभाव पड़ा, क्योंकि भगोड़े सिराज को जल्द ही गिरफ्तार करके मौत की सज़ा दे दी गई, और नया नवाब मीर जाफर अंग्रेजों के हाथों की कठपुतली बन गया। इस तरह पलासी की लड़ाई (1757) भारत में अंग्रेजों के ईस्ट इंडिया कंपनी के

[281] वहीं, पृष्ठ : 391

राजनीतिक वर्चस्व का आरम्भ बिंदु था।"[282] इसी बात को नाटक में लेखक ने व्यंग्यात्मक लहजे में दर्ज किया है। उमाचंद्र के मुख से वह कहलवाता है कि 'सिराजुद्दौला का सर्वनाश हो गया और मेरी तो चाँदी ही चाँदी है। मीरजाफर अंग्रेजों से मिल गया। मुझे तो खेल में लाख रुपये मिल ही गए।' इधर मीरजाफ़र खुशियाँ मना रहा है। उसका सेनापती उसे कहता है कि सिराजुद्दौला को अंग्रजों ने हरा दिया। तब मीरजाफ़र उसे लाख की थैली पकड़ा कर कहता है कि जाओ अब अपना राज है। इधर सिराजुद्दौला मीरजाफ़र से प्रार्थना कर रहा है कि भाई की प्रतिष्ठा दाव पर न लगने दो। मेरी रक्षा न कर सकते तो अपने धर्म और जाति को बचाओ। उसे भरोसा दिलाकर मुर्शिदाबाद भेज देता है। जहाँ अंग्रेज उसे मार देते हैं।

अगले दृश्य में मीरजाफ़र का मुंशी मीरजाफ़र और ईस्ट इंडिया कंपनी की शर्तें जनता को सुनाता है। "उपस्थित सज्जनों ! आज का दिन सबकी प्रसन्नता और आनन्द का दिन है। दोनों ओर वालों को लाभ हुआ है। निम्नलिखित शर्तें अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी और नवाब मीरजाफ़र में निश्चित हुई है !

1. मीरजाफ़र बंगाल का नवाब बनाया जाए।
2. मीरजाफ़र निम्न शर्तें पूरी करें-
    1. 2 करोड़ रुपया इंडिया कंपनी को दे।
    2. 2 लाख 10 हजार रुपया मि. ड्रेक गवर्नर को दे।
    3. 18 लाख रूपया मि. कलाइयों को दे।
    4. मि. बेकर को 2 लाख 40 हजार रुपया दे।
    5. मि. वाइस को 10 लाख रुपया दें।

[282] शेखर बन्द्योपाध्याय, 'पलासी से विभाजन तक और उसके बाद : आधुनिक भारत का इतिहास', नरेश 'नदीम',2015, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, पृष्ठ: 48

3. इसके अतरिक्त 24 परगना की जमींदारी के अधिकार ईस्ट इंडिया कंपनी को दिए जाएँ।"[283]

इतना सुनते ही उमाचंद्र पूछता है कि उसकी हिस्सेदारी कहाँ है। तब मीर मुंशी उसे जवाब देते हुए कहता है कि इसमें तुम्हारा नाम दर्ज नहीं है। उमाचंद्र बहुत पश्चताप करता है, और दुनिया से सीख और शिक्षा की बात करता है।

नाटक में आगे व्यापारियों और कामगारों पर हो रहे अत्याचार को दिखलाने की कोशिश की जाती है। इसके लिए जुलाहा समुदाय को चुना गया है। जुलाहे परेशान हैं। इधर अंग्रेज उनके कारखानों में मौजूद महंगी और अच्छे कपड़े बिना पैसा दिए उठा ले जाते हैं। कपडे नहीं देने पर वह कपड़ों और दुकान को क्षति तो पहुंचाते ही हैं। उसके साथ दुकानदार को मारते भी हैं। इसके आलावा दुकान को लूट लेते हैं। कुछ सामान अपने पास रखते हैं कुछ सिपाहियों को छूट देकर लूटवाते हैं। एक जुलाहा का दर्द इस प्रकार बयान होता है "लूट अत्याचारियों ने सब लिया अच्छा-

न नौ मन तेल होगा न राधा ही नाचेगी।
न अंगूठे होंगे और न हम कपड़ा बनाएंगे
और ना ही वह सितम ढावेंगे-
अंगूठों के दम से हम बालाएं सर पै लेते हैं।
लो अपने हाथ से अपने अंगूठे काट देते हैं।।"[284]

सभी जुलाहें अपने-अपने अंगूठे काट देते हैं। इधर 1929 में भारत के जुलाहें अपने अंगूठे काटते हैं। उधर 1948 के आसपास अफ्रीका के मजदूरों ने भी अपनी अंगुलियां काटी थी। जो मूर्तिकला, संगमरमर के बूट तराशने और विचारों का रूपांतरण करने का कार्य करती थीं। यह सारी उँगलियाँ सेम्बेन की 'फिन्गर्स' कविता में कटती और दर्ज होती है।

[283] गोविन्द राम, 'बरबादिय हिन्द', सितम की इन्तहा क्या है? सात जब्तशुदा हिंदी नाटक, सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सम्पा.), 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ: 396

[284] वहीं, पृष्ठ: 397

मीरजाफ़र के दरबार में जुलाहों का अफसर पहुंचता है। उससे गुहार लगता है, और अंग्रेजों के अत्याचार का वृतांत सुनाता है। उसके साथ जुलाहा भी जाता। जिससे मीरजाफ़र अंगुली कटने की बात पूछता है। तब जुलाहा कहता है कि

"हैं डाकू चोर राहजन कंपनी वाले।
हमारा खून पीने को यह जालिम नाग हैं काले।
चलाते हैं सितम ईजाद हम पै तेग और भाले।
उन्हीं के खौफ से हमने अंगूठे हैं काट डाले॥
उन्हीं के जुल्म की दरबार में फरियाद लाए हैं।
तबक्को आपसे इमदाद की हम करने आये हैं।"[285]

इस तरह के और भी उत्पीडित जनता मीरजाफ़र की दरबार में अंग्रेजों की शिकायत लेकर पहुंचती है। इससे व्यथित होकर मीरजाफ़र घोषणा करवाता है कि, अंग्रेजों से बदला तलवार और लड़ाई के मैदान में लिया जायेगा। लड़ाई होती है, और उसमें मीरजाफ़र की हार होती है।

अगले अंक में दिल्ली का दृश्य है। जिसमें नाना साहिब को केंद्र में रखा गया है। उधर तातिया टोपे धोबी के वेश में नाना साहिब के पास पहुंचता है। जिससे अंग्रेजी हुकूमत के बारे में बात करते हैं। तातिया (धोबी के वेश में) कहता है कि अंग्रेजों का शासन एकदम न्यायपूर्ण तरीके से चल रहा है। जिसका नाना साहिब विरोध करता है। लेकिन तातिया नाना साहिब से बदले वेश में उसका परीक्षा लेता है। जब वह सुनिश्चित हो जाता है कि, नाना साहिब अंग्रेजी शासन से नफरत करता है। तब वह अपने असल वेश में आता है। और अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध छेड़ने के लिए मसौदा बनता है। इसके साथ अन्य बादशाहों से भी अपील किया जाता है कि अपने छोटे-बड़े झगड़े को छोड़कर अपने जाति धर्म और जनता के लिए लड़ें। इसके लिए झाँसी की रानी से भी अनुरोध करते हैं। वह जब यह सुनती हैं, तो कहती हैं कि "क्रोध ! और एक स्त्री का क्रोध ! एक बिजली जो शत्रुओं के जीवन पर गिर कर भस्मात कर देती है, आह!

[285] वहीं, पृष्ठ: 401

अंग्रेज कंपनी ने मुझे धोखा दिया।"[286] आगे युद्ध की रणनीति तय की जाती है, और यहीं से 1857 की भूमिका तैयार होती है।

यह नाटक शाहजहाँ (1627-58) से 1857 तक के भारतीय इतिहास की परतों को उकेरने का कार्य करता है। जो इतिहासकारों के लिए महज एक तथ्य भर रह जाता है। लेकिन जनता का दर्द और मनोविज्ञान इतिहासकारों की पहुँच से बाहर है।

---

[286] वहीं, पृष्ठ: 417

रक्तध्वज

यह नाटक 1931 में लिखा गया था। इसके लेखक का नाम ज्ञात नहीं है। यह नाटक एक अंक में ही समाहित है। इसलिए इसे एकांकी भी कहा जा सकता है। इसके प्रमुख पुरुष पात्र- रवि, केदार, शेर, मदन, गौरी, बाबाजी, सरदार, किसान श्याम गोपालदास, त्रिमूर्ति और बलराम हैं। वहीं महिला पात्र- तारा और गंगा हैं। इस नाटक में मूलतः 'रक्तध्वज' मतलब खून से लाल झंडे के नीचे भारतीय जनता की अंग्रेज हुकूमत द्वारा किया गया अत्याचार को केन्द्रिय बिंदु बनाया गया है। इसलिए 'एक गुलाम' नाम से लिखित इस नाटक की भूमिका में नाटककार लिखता है कि "उसी प्रकार देखते हैं कि आज अपनी खोई हुई आज़ादी के प्रेम में उन्मत कितने ही भारतीय युवक हँसते-हँसते फांसी पर लटक रहे हैं। धन्य है उनका जीवन ! क्या मादरे हिन्द के सभी लोगों में प्रेम के ऐसे ही उन्मत भाव उत्पन्न होंगे ? क्या मादरे हिन्द के सभी लोगों में प्रेम के ऐसे ही उन्मत्त भाव उत्पन्न होंगे ? क्या देह के सभी युवक फरहाद की तरह आज़ादी के लिए दीवाने होकर देश-प्रेम की स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर हँसते-हँसते अपने प्राणों की आहुति चढ़ाएंगे ? क्या हमारे देश के नवयुवकों में भी परवाने की तरह आज़ादी के लिए मर मिटने की शक्ति उत्पन्न होगी ? यदि यह सम्भव है तो क्या यह सम्भव नहीं कि आज़ादी भी शीरीं की तरह अपने लिए मरने वाले में आलिंगन करने को दौड़े। संसार में असम्भव कुछ भी नहीं है ! हमारे युवकों के ह्रदय में इन भावों का संचार तो हो, फिर वह दिन दूर नहीं होगा जब हम आज़ादी को अपना दरवाजा खटखटाते हुए देखेंगे।[287]" यह बात लेखक नाटक की भूमिका के अंत में कहता है उससे पहले वह अंग्रेजी शासन द्वारा भारतीयों के ऊपर किए गए अत्याचार और बहाए गए रक्त की बात करता है। लेकिन उसको यह भी याद रहता है कि 1930 के आसपास का भारत 1857 और 1919 का भारत नहीं है। जैसा कि ऊपर लिखा भी गया है कि यह नाटक 1931 में लिखित है। यानि भगत सिंह की फांसी के आस-पास। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि भगत सिंह की फांसी का प्रभाव भारतीय जनता

[287] अज्ञात, 'रक्तध्वज', सितम की इंतिहा क्या है ?, संत्येंद्र कुमार तनेजा (सम्पा.), 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली. पृष्ठ : 435 (भूमिका से)

पर कैसा पड़ा था। उसी तरह का प्रभाव प्रतिबंधित साहित्य पर भी पड़ा। जिसके परिणाम स्वरूप 'रक्तध्वज' जैसा नाटक इत्यादि रचनाएँ हमारे सामने उपस्थित है। इस नाटक के मंगलाचरण में नटी और सूत्रधार का संवाद है। नटी कहती है कि "प्राणनाथ यह स्वाधीनता का युग है। आज हजारों नवयुवक अपनी-अपनी रस-लीला को छोड़कर आज़ादी को प्राप्त करने की चेष्टा में अपने प्राणों की आहुति चढ़ा रहे हैं, इतना जानते हुए भी ये नवयुवक इस विलास में निमग्न होकर किसी रसपूर्ण नाटक को देखने की आशा से यहाँ आये होंगे। परन्तु नहीं इनका हृदय अंधकार से परिपूर्ण है। माता की करुणा दशा को ये लोग नहीं देख सकते। अथवा इनके आमोद-प्रिय हृदय को इनकी मधुभीनी आँखों को इतना अवसर ही नहीं मिलता कि ये अपने देश की दयनीय दशा की ओर दृष्टिपात कर सकें। अतएव इनके विलास-प्रिय हृदय में वीरत्व का संचार करने के लिए, इनके मुर्दादिल में जिन्दादिली का बीज बोने के लिए देश-भक्ति पूर्ण नाटक दिखलाइये।"[288] नाटक लाल झंडा यानि झंडा पूजन से शुरू होता है। बालक झंडा गीत गाता है। जिसमें भारतीयों पर हो रहे अत्याचारों का विवरण होता है। उसके बाद सूत्रधार नटी से कहता है कि आज रंगशाला में अपार जनसमूह एकत्रित होगा और नटी उसे उपर्युक्त सलाह देती है। लेकिन सूत्रधार नटी का दर्द तो समझ जाता है। परन्तु वह अत्याचारों के प्रारूप को समझाने के लिए नटी को कहता है। इसपर नटी अफसोस व्यक्त करती है। भारतीय युवकों की निंदा करे हुए सूत्रधार से पूछती है कि भारतीय जनता इन अत्याचारों से अंजान क्यों है। सूत्रधार इसका कारण साहित्य की कमी बताता है। "वह कारण है साहित्य की कमी। आज हमें आधुनिक समय का उपयुक्त साहित्य नहीं मिलता जिससे हमारे विचार बदलें और हमारे हृदय में भी देश-प्रेम की सरिता प्रवाहित हो। इस स्वधीनता के युग में भी हमारे लेखक प्रेमी और प्रेमिका के पत्र-व्यवहारों में ही अपने समय और लेखन शक्ति को नष्ट कर रहे हैं। अरे, इन धुरंधर लेखकों और कवि सम्राटों की लेखानियाँ किस दिन काम आएँगी। प्रिये, जब वह साहित्य ही नहीं है तो फिर हम क्या दिखाकर इन नवयुवकों के हृदय में देशभक्ति की गंगा प्रवाहित करें। क्या तुम जानती हो प्रिये, तुम्हारे मनोनुकूल कोई नाटक प्रस्तुत हुआ

[288] वहीं, पृष्ठ: 438

है।"[289] इस बात को केंद्र में रखकर हिंदी साहित्य और विश्व साहित्य को देखें तो, साहित्य और कला में हो रहे बदलावों को एरिक हॉब्सबाम ने ऐतिहासिक क्रम में दर्ज करते हुए लिखा है कि "बुर्जुआ समाज की विजय जितनी विज्ञान के अनुकूल थी, उतनी कला के लिए नहीं रहीं। सृजनात्मक कलाओं के क्षेत्र में आकलन अधिकतर समयपरक और व्यक्तिपरक होता है, मगर इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि द्वैत क्रांति (1789-1848) के दौर ने शानदार और प्रतिभावान स्त्री और पुरुषों की अद्भुत सफलताओं को उजागर करने का गौरव प्राप्त किया। उन्नीसवीं शताब्दी का दूसरा दौर, इस तरह के प्रभावशाली दृश्य, नहीं गढ़ता है, सिवाय कुछ पिछड़े देशों में उद्भूत हुए उदाहरणों के, जिनमें से रूस एक था। कहने का तात्पर्य यह कतई नहीं, कि इस दौर की सफलताएँ औसत थी। साथ ही जब हम 1848 से 1870 के लोगों का आकलन करते हैं, तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वे सारे व्यक्ति तब तक परिपक्व हो चुके थे और 1848 के पहले कई प्रभावशाली कृतित्व समाज के समक्ष प्रस्तुत कर चुके थे। यदि हम उस दौर के तीन महान व्यक्तियों के बारे में बात करें तो चार्ल्स डिकेंस (1812-70) अपने सम्पूर्ण कृतित्व के संग्रहों का आधे से अधिक का सफर पार कर चुका था। 1830 की क्रांति के बाद से ही होनोरे डोमियर (1808-79) सक्रिय लेखाचित्र बनाने वाला कलाकार था, रिचर्ड वैगनर (1813-83) ने कई ऑपेरा बनाये और लोडेनग्रिया 1851 में सामने आया। इसमें दो राय नहीं कि, गद्य-लेखन, खासतौर से उपन्यास बहुत प्रभुता से प्रकाश में आया। इसकी वजह ब्रितानी और फ्रांसीसी शौर्य गाथाओं का होना था। रुसी शौर्य का उत्सव भी इसमें शामिल हो गया। चित्रकला के इतिहास में यह दौर उल्लेखनीय रहा, जिसके लिए फ्रांसीसी उत्तरदायी रहे। संगीत के क्षेत्र में वैगनर और ब्रह्मों अपने क्षेत्र के अगुआ मोजार्ट, बीथोवन तथा शूबर्ट से थोड़े ही पीछे कहे जायेंगे।[290]" एरिक हॉब्सबाम यहाँ क्रांति के समय में विज्ञान, साहित्य और कला की बात कर रहे हैं। इन क्रांतियों के साथ खास बात यह भी थी कि, भारत की स्वतन्त्रता आन्दोलन और आन्दोलन कर्मी इन्हीं क्रांतियों से प्रेरणा लेते थे। चाहें

[289] वहीं, पृष्ठ: 439

[290] एरिक हॉब्सबाम, 'पूँजी का युग', वन्दना राग (अनु.), 2009, संवाद प्रकाशन , मेरठ, पृष्ठ: 347

वह फ्रांस की क्रांति हो या रूस की क्रांति। जिसका उदाहरण इस अध्याय के साथ अन्य अध्यायों में भी देखा जा सकता है।

नाटक के अगले दृश्यों में किसानों की स्थिति को बयाँ किया गया है। एक किसान कहता है कि "हाँ, इस कुसमय में क्या करूँ ? किसे बुलाऊँ ? किसे पुकारूँ कौन मेरी सहायता करेगा ? दीनबन्धों ! इस करुणाजनक स्थिति में बिना आपके कौन मेरी सहायता करेगा? कौन इस अभागे के दुःखपूर्ण आर्तनाद से द्रवित ? ऐसी दारुण स्थिति में डालने के बदले मेरी इस जीवन-लीला ही को समाप्त कर दो, इस पतित जीवन से क्या लाभ ? हाँ ! कौन ऐसा पिता होगा जो अपनी एकमात्र सन्तान को मरते देखकर इस दारुण, असहाय दुःख को सह सकेगा। आह, मेरा एकमात्र पुत्र, मेरा जीवन-आधार, मेरा प्राण-प्यारा श्याम आज भूखों मर रहा है। क्षुधा से पीड़ित होकर वह भोजन-भोजन चिल्ला रहा है। आज दो दिन हुए उसे भोजन नहीं मिला है, उसका गुलाब –सा चेहरा सूख गया है। शरीर पीला पड़ गया है। क्षुधा से मृतक तुल्य होकर, शक्तिहीन होकर वह वहाँ उस कोने में पड़ा है। प्रभो बचाओ, मेरे उस लाडले को बचाओं। इस दारुण विपत्ति से हमारा उद्धार करो।"[291] किसान की स्थिति पर बात करने से पहले हिंदी साहित्य में आये किसानों की स्थिति पर गौर किया जाये तो, स्पष्ट दिखेगा कि हिंदी साहित्य में किसानों के ऊपर जितना लिखा गया है। वह एक आयोजन की तरह दिखता है। इसके लिए न ही पर्याप्त शोध हुआ और न ही पर्याप्त तैयारी की गई है। जैसे कि इस नाटक का छपने और जब्त होने का वर्ष 1931 है। जिसे ऊपर भी दर्ज किया गया है। परन्तु जब इस समय के पहले के विद्रोह पर गौर करें और भारत में किसानों की स्थिति को जाहिर करें तो एक मुकम्मल स्थिति दिखाई देती है। जिसके बारे में सुभाष चन्द्र कुशवाहा इस तरह लिखते है "डुमरी खुर्द में गेहूं, जौ, धान, अरहर और गन्ना की मुख्य पैदवार होती थी। गेहूं और जौ को एक साथ 'धनगोजई' नाम से बोने की प्रथा प्रचलन में थी। व्यवसाय के रूप में यहाँ 1917 के आसपास 14 लोहे और दो लकड़ी के कोल्हू मौजूद थे। 1891 की जनगणना में

[291] अज्ञात, 'रक्तध्वज', सितम की इंतिहा क्या है ?, संत्येंद्र कुमार तनेजा (सम्पा.), 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली. पृष्ठ : 441

गाँव की कुल आबादी 796 थी जिनमें से सबसे ज्यादा चमार जाति की आबादी 233 थी। 1921 में गाँव की कुल आबादी 1,280 हो गई जिनमें से चमार जाति की आबादी 371 थी। गाँव की कुल जमीन से चमार जाति की जिसमें से 151.2 एकड़ जमीन केवल सैंथावार जाति के पास थी। कुल 35 सैंथवार परिवार के पास औसतन 4.32 एकड़ जमीन थी जबकि 1885 की गणना के अनुसार 30 चमार परिवारों के पास औसतन 2 एकड़ जामीन थी। मुसलमानों की संख्या कुल आबादी की 7 प्रतिशत थी और उनके पास औसतन 4.57 एकड़ जमीन थी जो सैंथवारों की औसत से भी ज्यादा थी। चमड़े के व्यापार में भी उन्हीं का वर्चस्व था। इसलिए आर्थिक रूप से डुमरी खुर्द के मुसलमान, सैथवार से मजबूत स्थिति में थे। मेरे शिकारी, प्रति एकड़, प्रति वर्ष चार से पाँच डुमरी के जागीरदार से डुमरी खुर्द के मुसलमानों के बेहतर सम्बन्ध थे। डुमरी खुर्द का आखाड़ा, मुसलमान गुरु द्वारा संचालित था। पानी पीने के लिए मुसलमानों का अपना कुआं था जिसमें चमारों को पानी भरने की सुविधा उपलब्ध थी।"[292] पहली बात इस उद्धरण के साथ जो सीधे तौर पर जुड़ा है, वह यह कि यह उद्धरण चौरी-चौरा विद्रोह के सम्बन्ध में है। जो डुमरी गाँव से शुरू 1922 में हुआ था। और दूसरी बात उस गाँव के किसानों व्यापारियों की स्थिति को 1891 की जनगणना के माध्यम से दर्शाया गया है। भारतीय किसानों की बदहाली कितनी तीव्रता से हो रही थी। इस आँकड़ा से अनुमान लगाया जा सकता है। जब 1931 में किसानों की स्थिति को इस तरह से दर्शाया जा रहा है। इस दृश्य में दूसरे किसानों की स्थिति को भी दिखलाया गया है। जहाँ उसके पुत्र तो जीवित है। लेकिन उसको जीवित रखने के लिए उस किसान के पास कोई संसाधन नहीं है। जैसे खाने के लिए सोने के लिए भी कुछ नहीं है। सारे जेवर और जमीन निरंकुश नौकरशाही ने ले लिया है। इस स्थिति में अपने पुत्र को देख किसान संताप कर रहा है।

अगले दृश्य में रवि. केदार, मदन और शेर जैसे युवा पात्र के माध्यम से देश और उसकी बदहाली को दूर करने के लिए नाटककार ने देश की बदहाली पर एक बहस के माध्यम से दिखलाया है कि, इस देश के युवा कितनी निराशा में जीवित हैं। जब अंग्रेजी हुकूमत चारों तरफ अत्याचार कर रही है।

[292] सुभाषचन्द्र कुशवाहा, 'चौरी चौरा', 2014, पेंगइन बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ: 80

जिसका प्रतिकार करने पर देशद्रोही का तमगा लग जाता है। दूसरे तरफ देश के सामंत लोग अपने जीवन में खुशहाल हैं। उन्हें देश में हो रहे पाश्विक अत्याचार से कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। केदार कहता है कि "यदि किसी राज्य की प्रजा अधोगति को प्राप्त होकर दुराचारी हो जाये, यदि वह पतन निम्नतम श्रेणी पर पहुँच जाये तो उसके इस पतन का उत्तरदायी वह प्रजा नहीं होगी बल्कि होगा वह राजा जिसकी ये प्रजा है। इसी प्रकार शिष्य के पतन का उत्तरदायी वह गुरु होगा जिसका वह शिष्य है, पुत्र के पतन का उत्तरदायी उसका पिता होगा।"[293] केदार देश के प्रांतीय या क्षेत्रीय राजाओं की स्थिति का बयान कर रहा है। वह आगे यह भी कहता है कि आज देश के राजाओं का कर्तव्य अपनी जनता के प्रति उदासीन है। इसके साथ अंग्रेजी हुकूमत जो अत्याचार कर रही वह सहन करने लायक नहीं है। इसके आलावा वह कहता है "हाँ, मैं मनाता हूँ कि कर्म ही हमारा धर्म है परन्तु धर्म की आड़ में जान-बूझकर कुत्सित कार्यों का सम्पादन घोर पाप है। अधर्म है, अन्याय है। और है दुराचार,

यह सत्य है आदेश-पालन ही हमरा धर्म है।
पर साथ ही अन्याय करना भी महा दुष्कर्म है।।
यदि धर्म की खातिर हमें करने पड़े दुष्कर्म हा।
तो फूंक दो उस धर्म को वह धर्म पाप अधर्म है।"[294]

हिंदी क्षेत्र में न्याय, राजा और प्रजा के सम्बन्धों की जब भी बात आती है , तो गोस्वामी तुलसीदास और रामराज्य की बात होती है। परन्तु मध्यकाल में राम जैसे राजा थे। जो कुराज की जगह सुराज की स्थापना के साथ अपने साम्राज्य को आगे बढ़ा रहे थे। परन्तु भारत के आधुनिक काल में एक तरफ अंग्रेजी राज्य था, और उससे पहले देशी राजाओं का राज्य था। इन दोनों ने अपने समय में जनता को बदहाली की अवस्था में ले जाकर छोड़ दिया। उसके आगे राजा के प्रति प्रजा को धर्म का पाठ पढाया गया, और उसका मुँह बंद कर दिया गया। अंग्रेजी हुकूमत के बारे में कार्ल मार्क्स ने लिखा

[293] अज्ञात, 'रक्तध्वज', सितम की इंतिहा क्या है ?, संत्येंद्र कुमार तनेजा (सम्पा.), 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली. पृष्ठ : 443
[294] वहीं, पृष्ठ : 444

है कि "जब ब्रिटिश आक्रमणकारियों ने एक बार हिंदुस्तान में अपने पैर जमा लिए और उसने अपने कब्जे में रखने का फैसला कर लिया, तो फिर उनके सामने इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं रह गया कि देशी राजाओं- महाराजाओं की ताकत को दल से या बल से नष्ट कर दें। देशी राजाओं के विषय में उनकी वैसी ही स्थिति थी, जैसी प्राचीन रोमनों की अपनी सहायकों के विषय में थी और अंग्रजों ने रोमनों की ही नीति को अपनाया। एक अंग्रेज लेखक के शब्दों में ! 'यह नीति अपने सहायकों को मोटा करने की नीति थी, उसी तरह जैसे हम बैलों को मोटा करते हैं और मोटे हो जाने पर उन्हें खा जाते हैं।' प्राचीन रोमनों की तरह, पहले ईस्ट इंडिया कंपनी देशी राजे-महाराजों को अपना मित्र बनाती थी, फिर बड़े आधुनिक ढंग से उन्हें फांसी पर चढ़ा देती थी। कंपनी के साथ देशी राजे-नवाब जो समझौते कर लेते थे और उनके द्वारा जो जिम्मेदारियां अपने ऊपर ले लेते थे, उन्हें पूरा करने के लिए उन्हें बड़े ऊँचे सूद पर अंग्रेजों से बड़ी-बड़ी रकमें उधार लेनी पड़ती थीं और जब कर्ज बहुत बढ़ जाता था, तो महाजन यकायक बड़ा कठोर बन जाता था। 'सख्ती से पेश आना' शुरू कर देता था और तब देशी राजाओं-नवाबों को या तो सौप देना पड़ता था या लड़ाई छेड़नी पड़ती थी। उनके सामने दो ही रास्ते रह जाते थे – या तो अपना राज्य छीनने वालों के आश्रित बनकर रहें या गद्दार करार दिए जाकर, गद्दी से उतार दिए जाएँ।"[295] कार्ल मार्क्स यहाँ साम्राज्यवादी तौर तरीकों की बात कर रहे हैं। जिसमें प्रजा की स्थिति को साम्राज्य में उत्पन्न अत्याचार के माध्यम से समझा जा सकता है। यह नाटक भी इसी तरह की स्थितियों को बयां करता है। जहाँ महिला, बच्चे, किसान सब अत्याचार से पीड़ित हैं।

समय और समाज जब संकट और अत्याचार के दौर से गुजरता है, तब सभी की उम्मीदें युवाओं से होती है। लेकिन इतने अत्याचार के बाद भी भारतीय युवा सचेत संकल्पित नजर नहीं आते। एक पात्र का इसके प्रति बयान इस प्रकार है "वाह, वाह ! आज तो आप खूब लेक्चर झाड़ रहे हैं 'पर उपकार कुशल बहुतेरे' का राग आलाप रहे हैं। क्या आप इतना जानते हुए भी देश के लिए अपना कोई स्वार्थ बलिदान कर रहे हैं। निर्बल भाइयों की, समाज पीड़ित बहिनों की और भूखों मरते हुए किसानों की रक्षा

[295] कार्ल मार्क्स भारत के सन्दर्भ में, अनिल कुमार (अनु.),2012, सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ 62

करने की क्या आपने कभी कोशिश की है ? क्या निर्बल हो गए हो ? क्या तुम्हारे ह्रदय में साहस नहीं है। क्या तुम्हारे भुजाओं में शक्ति नहीं रह गई है ? क्या तुम्हारे रगों में पूर्वजों का खून उबाल नहीं मार रहा है ? क्या तुम अब भी वहीं हो जो पहले थे ? क्या तुम निरंकुश नौकरशाही के विरुद्ध लोहा लेने में हिचकते हो ? क्या तुम युवक नहीं हो?"[296] इतनी बातों को सुनते ही युवकों में उबाल आता है। और युवकों का एक ग्रुप सौगंध लेता है कि जब तक हमारे देश से अत्याचार खत्म नहीं हो जाता, तब तक हम लड़ेंगे। लेकिन उनके पास इस लड़ाई को लड़ने के लिए कोई दिशा निर्देश नहीं होता है। ये सभी युवक मिल अपने नेता की तलाश करते हैं। जिसके बाद एक क्रांतिकारी दल का गठन करते हैं इधर इन क्रांतिकारियों की कार्यवाही से नौकरशाही हिल उठती है। पुलिस इंस्पेक्टर गोपाल का बयान इस प्रकार है "नाकों दम हो गया है इन पाजी क्रांतिकारियों के मार। जब से उस मरदूद को गिरफ्तार किया है। तब से शैतान बेतरह पीछे पड़े हुए हैं। और हमारी बहादुरी गवर्नमेंट को भी तो देखो, जिस वक्त उसको पकड़ना था उस वक्त तो खूब बढ़ावा दिया, खूब इनाम देने का लालच दिया।... बाबा बुरा हो इन बदमाशों का मेरी बीबी के दिमाग में इन पाजियों को न जाने कौन-सा फितूर घुसा दिया कि घर पर ठहरने ही नहीं देती, बिगड़ैल सांड़ की तरह काटने दौड़ती है। कहती है कि जब इतना ही डर था तब काहे को सी. आई डी हुए ? क्यों नहीं क्रांतिकारियों से मिलकर देश का कुछ उपाकर किया ?"[297] इस बात को इस अध्याय में पहले दर्ज किया जा चुका है कि, भारतीय जनता में भगत सिंह के विचारों की पहुँच किस तरह की थी। जिससे नौकरशाही में कितना डर था। इंस्पेक्टर की पत्नी इसके अलावा इंस्पेक्टर से देश में हो रहे अत्याचारों का ब्यौरा भी मांगती है। जिसे वह नहीं बता पता तो, वह बच्चों की स्थिति, महिलाओं की स्थिति और किसानों की स्थिति को सामने रखती है। जब एक किसान अपनी व्यथा सुनाता है तो , उसका ह्रदय परिवर्तन हो जाता है।

---

[296] अज्ञात, 'रक्तध्वज', सितम की इंतिहा क्या है ?, संत्येंद्र कुमार तनेजा (सम्पा.), 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली. पृष्ठ : 448

[297] वहीं, पृष्ठ : 452

अगले अंक में भारत माता अपने आपको गुलाम देख और जनता पर हो रहे अत्याचारों को देख व्यथित होती हैं। इधर क्रांतिकारी दल के सदस्य केदार को एक बच्चा मिलता है। जो भूख से तड़प रहा है। जिसे भारत माता उस बच्चे को उद्धार के लिए भेजती हैं। एक किसान कहता है कि "नहीं, भाई मैं एक बहुत दुःखी किसान हूँ। भूख से व्याकुल होकर पुत्र मर गया। पुत्र-शोक से व्याकुल होकर मेरी स्त्री भी इस संसार से चल बसी। उन दोनों के शोक से व्याकुल होकर मैं भी आत्महत्या करने जा रहा था , कि भगवान श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर मुझे वैसा करने से रोका और कहा की उद्यान के पास देशोद्धार के लिए कुछ व्याकुल-युवक बातचीत कर रहे हैं, जाकर उनका साथ दो। तुम्हारा कल्याण होगा। इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ और आप लोगों से कहता हूँ कि भाइयों इसका बदला अवश्य लेना होगा:

आज कल शौके शहादत इस कदर की है मुझे।
शमअ लेकर ढूंढता फिरता हूँ घर जल्लाद का।।"[298]

इस दुखपूर्ण स्थिति को देख देश का हर तबका बदला लेने के इंतजार में है। इधर भगवान श्रीकृष्ण भी क्रांति के उपदेश देते नज़र आते हैं।

नाटक में आगे युवक भारत माता की सौगंध लेते हैं, और अपने-अपने कार्यों में लग जाते हैं। इसके लिए उन्होंने भगत सिंह को अपना आदर्श बनाया है। एक संवाद इस प्रकार है –

"गोरी- और हम प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि ऐसा न कर सके तो पृथ्वी माता की गोद में सो जायेंगे।

सरदार- प्रतिज्ञा करों कि प्राण चले जाएँ तिस पर भी अपने दल का भेद किसी से न कहेंगे।"[299]

इन्हीं सब प्रतिज्ञाओं के साथ स्त्री, पुरुष, बच्चा, किसान, मजदूर सभी देश की आज़ादी के लिए यत्न करने लगते हैं

---

[298] वहीं, पृष्ठ : 462
[299] वहीं, पृष्ट: 469

लवण-लीला

लवण-लीला नाटक 1931 में लिखा गया था। जिसके लेखक बुद्धि नाथ झा कैरव हैं। यह नाटक एक तरह से महात्मा गाँधी और उनके द्वारा किये गये दांडी मार्च पर केन्द्रित है। यह मार्च 1930 में साबरमती आश्रम से दांडी नामक गाँव तक हुआ था। जिसका उद्देश नमक कानून को खत्म करना था। जिसे 1835 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीयों के ऊपर लगाया था। इस नाटक का समर्पण कुछ इस प्रकार है।

मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए, नमक-सत्याग्रह के

सिलसिले में, पाषण-हृदय पुलिस और मिलिटरी के

घातक प्रहारों से अपनी जीवन-लीला समाप्त करनेवाले

अहिंसाव्रती वीर सत्याग्रहियों की पवित्र स्मृति में उनके

कौतुक का पह तुच्छ संस्मरण सादर समर्पित है।[300]

रचना समर्पण में इस तरह के शब्द लिखना स्वाधीनता आन्दोलन की तीव्र पक्षधरता को उजागर करना होता है। प्रतिबंधित हिंदी रचनाकार कला के घटाटोप के बजाय अपनी बात सीधे-सीधे कहने में विश्वास रखते थे। इसका प्रमुख वजह यह था कि उनको अपनी बात ज्यादा-से-ज्यादा लोगों के बीच पहुंचानी होती थी। बुद्धिनाथ झा कैरव ने अपने भूमिका में लिखा है कि "मैं न कोई साहित्यविद हूँ, न साहित्य के स्वर्णसिंहासन पर बैठने के लिए यह पुस्तक रची गई है। नाटक रचना जैसा ही दुरूह काम है, मेरी विद्या-बुद्धि अल्पज्ञता के उतने ही विशेषण से विभूषित है। एक घटना-मूलक भावात्मक विषय होने के

[300] बुद्धिनाथ झा कैरव, लवण-लीला, सितम की इंतिहा क्या है, सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 483

कारण प्रस्तुत नाटक में न कोई प्रत्यक्ष नायक है, न वृति, भाषा और अंकों के अनुक्रम और सैष्ठव का सम्यक निर्वाह है।"[301] नाटककार ने आगे नाट्य कला के निर्वाह के बिना नाटक लिखने की वजहों पर बात किया है। जिसके लिए प्रत्यक्ष रूप से नमक सत्याग्रह को कारण मानता है, और परोक्ष रूप से स्वाधीनता आन्दोलन को। दूसरी बात जो ऊपर स्वर्णसिंहासन की है। वह बात शायद हिंदी साहित्य लेखन की राजनीति की तरफ इंगित है। 1931 तक हिंदी साहित्य में राजनीतिकरण बहुत हद तक कायम हो चुका था। वह छपने-छापने का भी था, और लिखने-लिखाने का भी। लेकिन प्रतिबंधित रचनाकारों ने अपने आप को देश के स्वधीनता संघर्ष से ही जोड़े रखा। एक तरफ कला का आडम्बर था, तो प्रतिबंधित रचनाकरों के पास अंग्रेजी हुकूमत द्वारा जनता पर किये जा रहे अत्याचार का दर्द था। जिसे वे लिपिबद्ध किया करते थे। इसी को वे अपनी आस्था का प्रश्न लेखन की प्रतिबद्धता से जोड़ते थे। टेरी इगल्टन ने लिखा है कि "सन 1934 के सोवियत लेखकों के सम्मेलन में यह सब पूरी तरह उभरकर सामने आ गया जब स्तालिन और गोर्की ने मिलकर, स्तालिन के सांस्कृतिक ठग 'ज़दनोव' के माध्यम से 'समाजवादी यथार्थवाद' का सिद्धांत प्रस्तुत किया। इस सिद्धांत के अनुसार एक लेखक का दायित्व था कि 'वह यथार्थ का, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, क्रान्तिकारी विकास के निश्चित चरण में सही-सही चित्रण करे', और इस बात का ध्यान रखे कि 'विचारधारा का रूपांतरण किया जाना है एवं कामगारों को समाजवाद की युगचेतना में शिक्षित किया जाना है।' साहित्य को पक्षधर होना ही चाहिए, और ये पक्षधरता पार्टी के लिए होनी चाहिए। उसे आशावादी एवं नायकत्व से भरा होना चाहिए एवं उसमें सोवियत नायकों की रूमानी क्रांतिकरिता परिलक्षित होनी चाहिए, जो हमें भविष्य का पता दे।"[302] रुसी क्रांति के बाद रूस में साहित्य की पक्षधरता को लेकर हो रहे संवाद पर इगल्टन ने यह टिप्पणी की थी। यह टिप्पणी भारत और हिंदी साहित्य के लिए उतना ही जायज है जितना की रूस और रुसी साहित्य के लिए। पहली चीज़ की भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन अपने संघर्ष हेतु बहुत चीजें रूस से

---

[301] वहीं पृष्ठ: 485

[302] टेरी इगल्टन और फ्रेडरिक जेम्सन, लेखक और प्रतिबद्धता, संतोष चौबे(अनुवादक), 2008, मेधा बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ :58

ग्रहण करता था। हिंदी और भारतीय साहित्य के लेखकों पर रुसी साहित्य और साहित्यकारों का अच्छा प्रभाव था। प्रतिबंधित हिंदी लेखकों ने तो सीधे-सीधे अपनी रचनाओं का आधार रुसी क्रांति और जनता को बनाया है। दूसरी चीज़ टेरी इगल्टन ने अपनी टिप्पणी में यह भी संकेत किया है कि साहित्य को समाज के संघर्ष का ऐतिहासिक विकास क्रम के साथ आशावादी होना चाहिये। इसी आशावाद और नायकत्व की वजह से तमाम खतरों के बीच प्रतिबंधित हिंदी लेखक लिख रहे थे। जिसका परिणाम लवण-लीला नाटक है।

नाटक और अंग्रेजी हुकूमत के संबंधों के बारे में पहले चर्चा की जा चुकी है। लेकिन मैनेजर पाण्डेय ने जनता और नाटक के सन्दर्भ में लिखा है कि "हम सब जानते हैं कि रंगमंच के माध्यम से जनता के सामने उसका जीवन एक दूसरे रूप में उपस्थित किया जाता है। हम जिस संसार में जी रहे हैं उस संसार को, अपने आसपास की दुनिया के जीवन और यथार्थ को, जब हम रंगमंच पर देखते हैं तो एक नए तरह के अनुभव से गुजरते हैं। अपने जीवन-यथार्थ को अपने से अलग रंगमंच पर घटित होते हुए देखकर हम उसे अधिक गहराई से समझते हैं। नाटक और रंगमच में जनता से संवाद स्थापित करने की शक्ति और सम्भावना बहुत अधिक होती है। सम्प्रेषण की जीतनी व्यापक क्षमता और सम्भावना नाटक तथा रंगमंच में होती है उतनी दूसरी कलाओं में नहीं होती है। नाटक और रंगमंच के माध्यम से शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरह की जनता से संवाद स्थापित करना सम्भव होता है, इसलिए व्यापक जनवादी सांस्कृतिक आन्दोलन के विकास में नाटक और रंगमंच की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।"[303] इस बात को प्रतिबंधित नाटकार बखूबी जानते थे। उनके लेखन का निहतार्थ शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरह की जनता है। इन दोनों के सामने वे अंग्रेजी हुकूमत के दमन को हू-बहू रखने की कोशिश करते थे। और गाते थे

"सत्य-अहिंसा के दुर्गम पथ के सब दिन हम राही हैं।
सत्याग्रह-सेना के निर्भय बाँके वीर सिपाही हैं।।

[303] मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, 2017, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ :167

तोपों के मुँह पर हम अविचल आगे बढ़ते जायेंगे।
आवेगी तो हँस-हँस रिपु-दल की गोली हम खायेंगे।।
मर जायेंगे पर प्रतिहिंसा का लेंगे हम नाम नहीं।
जब तक देश स्वतंत्र न होगा चैन नहीं, आराम नहीं।।
आज देश की है पुकार हम समर-क्षेत्र में जाते हैं।
जय जननी भारत हम तुमको सादर शीश नवाते हैं।।"[304]

जिस आशा, नायकत्व और पार्टी की पक्षधरता की बात टेरी इगल्टन ने किया है। उसी को नाटककार ने यहाँ मूर्त किया है। यहाँ पार्टी की पक्षधरता का सम्बन्ध विचारों की पक्षधरता से है। और बुद्धिनाथ झा कैरव के लिए महात्मा गाँधी के विचार साहित्य के लिए स्वीकार्य थे। हिंदी साहित्य और महात्मा गाँधी के सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा भी है कि "भारतीय साहित्य और साहित्यकार पर गाँधी के प्रभाव को उनके व्यक्तिगत विचार और व्यवहार के स्वीकार तक सीमित करना सही नहीं है। गाँधी और उनके बाद के अस्वीकार में भी एक तरह का सम्बन्ध व्यक्त हुआ है। गाँधी और उनके विचारों से लेखकों के तीन प्रकार के सम्बन्ध दिखाई देते हैं : एकता, विरोध और संदेह के सम्बन्ध। कहीं-कहीं एक ही लेखक में ये तीनों मिल सकते हैं, जैसे कि प्रेमचंद के यहाँ। लेकिन इसके साथ ही यह भी ध्यान देने लायक बात है कि ये तीनों सम्बन्ध वहीं रचनात्मक साबित हुए हैं, जहाँ वे द्वंदात्मक रूप में हैं यानि कि जहाँ एकता के साथ अंतर का बोध है, विरोध के बावजूद विरोधी को समझने की तत्परता है और संदेह के संग एकता की तलाश है, अन्यथा कोरी एकता में समर्पण है, निपट विरोध में निषेध और केवल संदेह में भ्रमों की भरमार, जो रचनाशीलता के स्वभाव के प्रतिकूल है।"[305] प्रतिबंधित रचनाकार स्वाधीनता आन्दोलन के लिए समर्पित थे। और उनकी रचनाओं में महात्मा गाँधी और भगत सिंह दोनों ही देश के प्रति समर्पित नज़र आते हैं। जहाँ गाँधी चरखा से देश को आर्थिक मजबूती देते थे। वहीं भगत सिंह

---

[304] बुद्धिनाथ झा कैरव, लवण-लीला, सितम की इंतिहा क्या है, सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 2010राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 487

[305] मैनेजर पाण्डेय, भारतीय समाज में प्रतिरोध की परम्परा, 2013, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 150

क्रांतिकारी आन्दोलन के माध्यम से देश को अंग्रेजी हुकूमत से मुक्त कराने की कोशिश करते थे। इसीलिए नाटककार का नायक आह्वान करता है कि “वीरो, देश में स्वतन्त्रता का संग्राम छिड़ गया। सेना-नायक ने कूच का डंका बजा दिया। रण-भेरी बज चुकी। विश्व के इतिहास में हमारा यह संग्राम- शांति –अशांति का यह परस्पर संघर्ष- चिरस्मरणीय रहेगा कि एक ओर बन्दूक, तोप और हवाई जहाज आदि भयंकर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित शक्तिशाली सरकार और दूसरी ओर आत्मबल, अहिंसा और कष्टसहन के व्रती दुर्बल-देह सत्याग्रहियों की कतार ; एक तरफ कवायद और परेड के जाननेवाले वर्दी और हथियारों से लैस युद्ध-विद्या-निपुण सिपाहीगण और दूसरी तरफ सीधे-सादे शांत और निहत्थे स्वयंसेवकों का जत्था, एक ओर धन-जन का भंडार और दूसरी ओर भरपेट खाने का हाहाकार है। कैसा अस्वभाविक मुकाबला होने वाला है।”[306] यहाँ स्वाधीनता का बिगुल महात्मा गाँधी ने नमक कर के खिलाफ साबरमती आश्रम से दांडी नामक गाँव में हाथ में नमक लेकर शुरू किया था। और जनता को संदेश दिया था कि, नमक को मशीन के बिना बनाना सम्भव है। नायक नामक बनाने की प्रक्रिया को बतलाता है। “तरीका महज सीधा है। किसी बर्तन के पेंदे में छेद करके उसमें तीन चौथाई लोनी मिट्टी और ऊपर से पानी भर दीजिये। पानी को चू कर गिरने के लिए बर्तन को किसी तिपाई पर रख कर नीचे दूसरा बर्तन रखिए। पहला पानी कुछ गंदा होगा। उसे पुनः उसी बर्तन में डाल दीजिए। दूसरी बार एक-एक बूँद करके जो साफ पानी गिरे उसी को आग पर खौलाइए। जब थोड़ा पानी बच जाए उसको उतार कर ठंडा होने दीजिए, नमक उसी में बैठ जायेगा।”[307] यह नमक बनाने का घरेलु उपाय था। इसके जरिये यूरोप के औद्योगीकरण के प्रोजेक्ट को रचनाकार नकारता है। इस प्रोजेक्ट के माध्यम से पूंजीवाद और मशीनीकरण को बढ़ावा देना, अंग्रेजी हुकुमत की चाल को प्रतिबंधित हिंदी रचनाकार समझ रहे थे। इसलिए नमक को स्वधीनता आन्दोलन के साथ जोड़ा गया। जो हर घर में प्रतिदिन काम में लाया जाता है। लेखक लिखता है “यही तो समझने की बात है। सुनिए, नीति-विहीन कानून के प्रति अनादर होने

[306] बुद्धिनाथ झा कैरव, लवण-लीला, सितम की इंतिहा क्या है, सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ :488

[307] वहीं, पृष्ठ :490

से जन-सधारण में आत्म-सम्मान का भाव फैलेगा। नमक एक ऐसी चीज है जो प्रतिदिन महल से झोपड़ी तक जाता है। नमक कानून की अवज्ञा से देश भर में जागृति होगी, जाग्रति होने ही से राजनीतिक जिज्ञासा बढ़ेगी, राजनीतिक ज्ञान से लोगों को आत्मबोध होगा और वे स्वतन्त्रता के पुजारी बनेंगे।"[308] राजनीतिक जागरण किसी भी समाज और देश की मुक्ति के लिए जरुरी होता है। इस बात को प्रतिबंधित नाटककार बखूबी जानते थे। इसीलिए वे लगातार ऐसी रचनाओं को प्रकाशित करते थे। जिसमे अंग्रेजी हुकूमत की करतूतों का पर्दाफाश हो और साथ ही उनके द्वारा भारतीय समाज और जनता हो रहे अत्याचारों को भी सबके सामने रखते थे। जिसके लिए उनके पुस्तकों या रचनाओं को सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया जाता था। जिसके बारे में नाटककार लिखता है कि "यही तो प्रश्न है कि जब रोटी के अन्न के लिए कोई कानून नहीं तो रोटी के लिए नमक पर बाधा कैसी? परन्तु इस विदेशी सरकार की दुनिया ही निराली है, जहाँ 'सर' तो आसानी से मिल जाता। किन्तु सर पर ताज रखते बड़े घर की हवा खानी पड़ती है।"[309] बड़े घर की हवा या जेल और कानून को साम्राज्यवादी ताकतें हथियार के रूप में इस्तेमाल करती हैं। जिसके बारे में लेनिन लिखते हैं कि "यदि साम्राज्यवाद की यथासम्भव संक्षिप्तम परिभाषा करनी हो, तो हम कहेंगे कि पूंजीवाद की इजारेदाराना अवस्था साम्राज्यवाद है। इस प्रकार की परिभाषा में सबसे महत्वपूर्ण बातों का समावेश हो जायेगा, क्योंकि एक ओर, वित्त पूँजी उद्योगपतियों के इजारेदार संघों की पूँजी के साथ मिली हुई थोड़े-से बहुत बड़े-बड़े इजारेदार बैंकों की बैंक पूँजी है और दूसरी ओर, दुनिया का विभाजन किसी भी पूंजीवादी ताक़त द्वारा अनाधिकृत प्रदेशों में निर्बाध रूप में प्रसारित औपनिवेशिक नीति से दुनिया के पूर्णत: बंटे हुए इलाके पर इजारेदाराना स्वामित्व की औपनिवेशिक नीति में संक्रमण है।"[310] कर और इजारेदारी के माध्यम से अंग्रेजी हुकूमत ने भारतीय आर्थिक और जनता की स्थिति को बदहाल कर दिया था। उसी कर का हिस्सा नमक टैक्स भी था।

[308] वहीं पृष्ठ 490

[309] वहीं, पृष्ठ 489

[310] व्ला. इ. लेनिन, साम्राज्यवाद पूंजीवाद की चरम अवस्था, व्ला. इ. लेनिन संकलित रचनाएँ, 1982, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृष्ठ : 310

गाँधी के नेतृत्व में भारतीय जनता नमक कर हटाने के लिए संकल्पित थी। लेकिन जैसा की ऊपर कहा जा चुका है कि भारतीय जन नायक और जनता दोनों ही नमक आन्दोलन को स्वतन्त्रता संग्राम के साथ जोड़ कर देख रही थी। इससे सम्बन्धित एक गान इस प्रकार है-

"यह जीवन हमको कुछ दुनिया में कर जाना है।
जीना है तो स्वतंत्र होकर या जीते मर जाना है॥
पड़े गुलामी के बंधन में अब न यहाँ रह सकते हैं।
अन्यायी शासन का अब हम रोब नहीं सह सकते हैं॥
पशुबल के संग आत्म-शक्ति से लड़ने को तैयार हैं हम।
पूर्ण अहिंसा के आयुध की जगमग करती धार हैं हम॥
न्यायहीन कानून धुल में अभी मिलाने जाते हैं।
नमक-हलाली करते हैं हम नमक बनाकर खाते हैं॥
दमन और भीषण प्रहार का भय हम नहीं बिचारेंगे।
जन्मभूमि जननी की खातिर तन मन धन सब बारेंगे॥
बोलो स्वतंत्र भारत की जय।"[311]

आगे स्वतंत्र भारत की जयजयकार के लिए भारतीय कौमों से प्रार्थना की जा रही है कि, अब तुम तैयार हो जाओ। तुम्हें ही सभी काम करने पड़ेंगे। चाहे सितमगर की लाठी खानी पड़े चाहे जेल जाना पड़े। लेकिन शर्त नमक कर की होगी। जिसे मुक्त करना हमारा संकल्प है। अब भारतीय जनता ने आज़ादी के नशे को अपने दिल से लगा लिया है। दूसरी तरफ नमक बनाने वालों के ऊपर जुर्म का चित्रण है। एक जन सेवक और अंग्रेजी नौकरशाह का संवाद इस प्रकार है –

"हाकिम – आप लोगों ने सरकारी कानून तोड़ कर नमक बनाया है, यह ठीक है ?

[311] बुद्धिनाथ झा कैरव, लवण-लीला, सितम की इंतिहा क्या है, सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 2010, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 491

स्वयंसेवक – हाँ, एकदम ठीक है।

हाकिम – जानते हैं, ऐसा करना कानून के खिलाफ है ?

एक स्वयंसेवक – अत्याचारी कानून को तोड़ना महज इनसाफ है।

हाकिम- ऐसे कामों में व्यर्थ अपनी शक्ति को क्यों आप लोग बरबाद करते हैं? परोपकार और लोक कल्याण के सैकड़ों काम पड़े हुए हैं, उनकी ओर आप लोग अपना ध्यान क्यों नहीं ले जाते ?

स्वयंसेवक – न्यायहीन शासन का अंत ही परोपकार और लोक-कल्याण का सर्वश्रेष्ट काम है।"[312]

न्यायलय में इस सुनवाई के बाद जन सेवकों को जेल भेज दिया जाता है। इसके बाद जन सैलाब सड़कों, मैदानों और सार्वजनिक स्थलों पर नमक बनाना शुरू कर देता था। उधर दमन भी बहुत तीव्र होता है। पुरुषों को पकड़ लिया जाता या उनके ऊपर घोड़े दौड़ा दिए जाते है। यह सब देख आन्दोलन में स्त्रियाँ भी भाग लेनी शुरू करती हैं। एक स्त्री सरदार कहती है "अंग्रेजी सल्तनत में भारतीय स्त्रियों की इज्जत कैसी? जालियांवाला कांड के बाद पंजाब में स्त्रियों की जो दुर्दशा हुई, वह तुम्हारे मुँह को सदा काला रखेगी। अभी कल वीरम-गाँव की स्त्रियों पर घोड़े दौड़ाकर इस समय इज्जत की बातें करते तुम्हें शर्म नहीं होती।"[313] इस और अन्य अध्यायों में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में स्त्रियों के योगदान पर चर्चा की गई है। लेकिन इस उद्धरण में जलियाँवाला बाग़ और वीरम गाँव में स्त्रियों के ऊपर घोड़े दौड़ाने से अंग्रेजी हुकूमत के दमन का अंदाजा लगाया जा सकता है। इन सेनानियों के ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ हो रहे विद्रोहों से सरकार मामूली चोट का जिक्र कर अपने दमन को छिपाने की कोशिश करती है। लेकिन विरोधों के बाद जब घायलों को अस्पताल में ले जाया जाता है तो, किसी को गोली लगी है किसी का हाथ पैर टूटा हुआ है, और किसी की मृत्यु हो गई है। लेकिन अंग्रेजी हुकुमत इसके लिए खुद को जिम्मेवार नहीं मानती है। उसकी दलील होती है कि, इस अहिंसात्मक आन्दोलन में लोग

[312] वहीं, पृष्ठ :496
[313] वहीं, पृष्ठ :517

हथियार लेकर आये, गोलीबारी किये। नाटक एक और अंग्रेजी क्रूरता के उदाहरण से खत्म हो जाता है।

यह नाटक महात्मा गाँधी के आदर्शों और उनके आन्दोलन की रणनीति पर आधारित है। नाटक में नाट्यकला के बजाय अंग्रेजी हुकूमत के दमन को तरजीह दी गई है। घटनाओं को हु-ब-हू रखने से नाटकीयता प्रभावित हुई है।

अध्याय:5

प्रतिबंधित साहित्येतर लेखन

प्रतिबंधित साहित्येत्तर लेखन के अंतर्गत वे पुस्तकें रखी जाएँगी जो कविता, कहानी उपन्यास और नाटक से इतर हैं, यानि इतिहास सम्बन्धी पुस्तकें। इन पुस्तकों में सखाराम गणेश देउस्कर की 1904 में लिखित पुस्तक ‘देश की बात’, विनायक दामोदर सावरकर की 1909 में छपी पुस्तक ‘1857 का स्वातन्त्र्य समर’ 1909 में ही महात्मा गाँधी की पुस्तक ‘हिन्द स्वराज्य’ छपी थी। इसके आलावा 1928-29 में देवनारायण द्विवेदी की पुस्तक ‘देश की बात’, 1934 में मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव की पुस्तक ‘पराधीनों की विजय-यात्रा : छत्तीस पराधीन देशों के स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास’, और सुन्दरलाल की पुस्तक ‘भारत में अंगरेजी राज’ दो भाग में 1929 में छपी थी। इन सभी पुस्तकों को छपने के एक-दो सालों या महीनों बाद या प्रकाशित होने के पहले ही प्रतिबंधित का दिया गया था।

ये सभी पुस्तकें इतिहास से सम्बंधित है। भारत में इतिहास को लेकर कई नजरिये मौजूद हैं, और विकसित भी किये जा रहे हैं। लेकिन इतिहास की तटस्थ अवलोकन अभी नहीं के बराबर हुआ है। जिसके कारण प्रतिबंधित पुस्तकों में मौजूद भारतीय उपनिवेशवाद की परतें अभी तक पूर्णत: खुल नहीं पाई हैं। जिसके लिए पंडित सुन्दरलाल लिखते भी हैं “जो कठिनाइयाँ मनुष्य को अपने समय का इतिहास लिखने में होती है; उससे कहीं अधिक पुराने समय के इतिहास को लिखने में होती हैं। पिछले समय का इतिहास लिखने वाले को भी इन्हीं पक्षपात से रंगे हुए उल्लेखों के आधार पर अपनी रचना करनी पड़ती है। काल और हालात की दूरी के कारण उसे और अधिक अँधेरे में टटोलना पड़ता है। भारत का और खासकर अंगरेजी काल के भारत का इतिहास लिखने वाले के लिए ये कठिनाइयाँ कई गुनी अधिक बढ़ जाती हैं। ब्रिटिश भारत का इतिहास लिखने वाले को अधिकतर अंगरेजों के लिखे ग्रन्थों का सहारा लेना पड़ता है। भारतवासियों के हाथ का लिखा कोई सिलसिलेवार इतिहास उस समय का नहीं मिलता। जो अधूरे वृतांत किसी-किसी भारतवासी के हाथ के लिखे मिलते हैं, उनमें से भी अनेक लेखक अंगरेजों के ज़रख़रीद थे, यह बात उन्हीं के लेखों से साबित होती है।”[314] सुन्दरलाल ने यह बात मूलत: भारत में उपनिवेशवादी इतिहास और लेखन की कठिनाइयों की तरफ इशारा करके लिखी है। उन्होंने इतिहास के सन्दर्भ में ‘पक्षपात’ की बात की है। जिसका इशारा खासकर ब्रिटिश

[314] सुन्दरलाल, ‘भारत में अंगरेजी राज’, प्रथम खंड, 2016 पंचम संस्करण, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ : 02

या अंग्रेजी इतिहास से प्रभावित होकर लिखा गया है। लेकिन स्वतन्त्रता के बाद भी जो इतिहास लेखन हुआ। वह भी बहुत हद तक अंग्रेजी इतिहास से प्रभावित रहा। पार्थ चटर्जी से रामविलास शर्मा इन्हीं मुद्दों के तरफ संकेत करते हुए सवाल करते हैं, और लिखते हैं "पूरे देश में आन्दोलन क्यों चलाया जाए ? क्या देश कोई वास्तविक इकाई है ? क्या यहाँ हिन्दू-मुसलिम अलग-अलग नहीं हैं ? द्विज और शुद्र अलग-अलग नहीं है ? आर्य, द्रविड़ और बहुत से आदिवासी समुदाय सब अलग-अलग नहीं हैं ? क्या इन्हें एक साथ रखने में केन्द्रीय राज्यसत्ता बलप्रयोग से काम नहीं लिया ? अंग्रेजों से पहले मुग़ल राज्यसत्ता थी, उसने देश के बहुत बड़े भाग को अपने अधीन रखा। उसके बाद अंग्रेज आए, उन्होंने भारत पर अपनी राज्यसत्ता स्थापित की। उनके जाने के बाद कांग्रेस ने उत्तराधिकार में उसी राज्यसत्ता का उपयोग किया। यदि यह राज्यसत्ता हटा दी जाए तो भारत का असली स्वरूप दिखाई देने लगेगा वह टुकड़ों-टुकड़ों में बटाँ हुआ है। केवल बलपूर्वक इन टुकड़ों को एक साथ रखा गया है। राष्ट्र के बारे में जो हमारी समझ होती है, वह हमारी इतिहास की समझ पर निर्भर होती है। राष्ट्र हो या जाति, ऐतिहासिक परम्पराओं के बोध से इनकी पहचान निश्चित होती है। बहुत से लोग जो भारत राष्ट्र की बात करते हैं, क्या उनके दिमाग में आर्यवाद या हिन्दू संस्कृति का नक्शा नहीं है ? अंग्रेजी राज से पहले यहाँ जिस तरह की शासन-व्यवस्था थी, क्या उसका सम्बन्ध इस्लामिक संस्कृति से नहीं है ? ... (पार्थ चटर्जी की पुस्तक राष्ट्र और उसके टुकड़े (द नेशन एंड इट्स फ्रैगमेंट का हवाला) यह पुस्तक सन 1994 में ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी से प्रकाशित हुई थी। अभी जिन प्रश्नों का उल्लेख किया गया है , वे प्राय: सब इस पुस्तक में आए हैं। जो लोग राष्ट्र का स्वरूप बदलना चाहते हैं , उन्हें इन प्रश्नों का उत्तर देना होगा ?"[315] लेकिन रामविलास शर्मा खुद इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए सखाराम गणेश देउस्कर की पुस्तक 'देश की बात' का अत्यधिक सहारा लेते हैं। वह 1998 में प्रकाशित पुस्तक 'भारतीय संस्कृति और हिंदी- प्रदेश' में यह सवाल करते हैं। उन्होंने इससे पहले देउस्कर और महावीर प्रसाद द्विवेदी के बनिस्बत महावीर प्रसाद द्विवेदी को ज्यादा तरज़ीह दिया था। जिसके बारे में प्रणय कृष्ण लिखते हैं, "डॉ. रामविलास शर्मा ने 'सम्पतिशास्त्र' के महत्व के प्रसंग में लिखा है, 'भारत के सन्दर्भ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की वैसी आलोचना उस समय तक अंग्रेजी में भी प्रकाशित नहीं हुई थी।' अंग्रेजी में भले ही वैसी आलोचना प्रकाशित नहीं हुई हो लेकिन सखाराम गणेश देउस्कर की देशेर कथा में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आलोचना 'सम्पतिशास्त्र' से अधिक व्यापक, गहरी और प्रभावशाली है। प्रभाव और लोकप्रियता की दृष्टि से देशेर कथा जैसी क्रांतिकारी किताब शायद ही

[315] रामविलास शर्मा, 'भारतीय संस्कृति और हिन्दी-प्रदेश,' भाग दो, 2012, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ: 292

किसी भारतीय भाषा में स्वधीनता आन्दोलन के दौरान लिखी गई हो इसलिए सम्पतिशास्त्र के महत्व की वास्तविकता ठीक ढंग से समझने के लिए उसे 1940 में छपी रजनी पामदत्त की किताब 'आज का भारत' से नहीं बल्कि 1904 में छपी सखाराम गणेश देउस्कर की 'देशेर कथा' के साथ मिलाकर पढ़ना उचित होगा।"[316] यहाँ ध्यान रहे सम्पतिशास्त्र 1908 में छपी थी। सुन्दरलाल ने जिस पक्षधरता की बात कही थी। उसको जोड़कर देखने से तय हो जायेगा। इसके बाद इतिहास का क्रमिकता को भी दर्शाता है। आर. जी कॉलिंगवुड ने इतिहास को लेकर कहा है कि "What history is, what it is about, how it proceed, and what it is for, are question which to some extent different people would answer in different ways. But in spite of different there is a large measure of agreement between the answer. And this agreement becomes closer if the answer are subjected to scrutiny with a view to discarding those which proceed from unqualified witnesses. History, like theology or natural science, is a special from of thought. If that is so, questions about the nature, object, method, and value of this from of thought must be answered by persons having two qualifications."[317] कॉलिंगवुड ने इतिहास के बारे में यहाँ सार्वभौमिक बात कही है। लेकिन इतिहास किसके लिए और उसे आगे कैसे बढ़ाना है ? जैसी बात उपनिवेशवादी युग के इतिहास में महत्वपूर्ण सवाल है ! जिसे प्रतिबंधित इतिहासकार और गैर प्रतिबंधित, और उपनिवेशवाद के बाद का इतिहास पुस्तकों को लेकर देखने पर गहरा अंतर्विरोध दिखाई पड़ता है। एक तरफ प्रतिबंधित इतिहासकार समाज के हर एक अंग को ब्रिटिश हुकूमत से प्रभावित मानते हैं। वहीं दूसरी तरफ दूसरे तरह के लेखकों के सामने केवल अस्थाई ढांचा ही महत्वपूर्ण है। इसीलिए अशिस नंदी ने लिखा है, "उपनिवेशवाद में कुछ संहिताएँ अंतर्निहित हैं जिनमें शासक और शासित दोनों ही साझीदार होते हैं। ये संहिताएँ मुख्य तौर पर पाले के दोनों तरफ बदल डालने की भूमिका निभाते हुए औपनिवेशिक संस्कृति के दायरे में उन उपसंस्कृतियों को केंद्रस्थ कर देती हैं जिनका किरदार एक-दूसरे का सामना कर रही संस्कृतियों

[316] प्रणय कृष्ण 'उपनिवेशवाद के तीन कीर्तिमान (सखाराम गणेश देउस्कर, महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधवराव सप्रे)' समालोचन ब्लॉग से, Access date- 01.11.2020, https://samalochan.blogspot.com/2012/09/blog-post_23.html

[317] R. G Collingwood, 'The Idea of History', 2016, Oxford University Press, P.:07

के तहत अप्रभावी या मातहत किस्म का था।"[318] एक तरफ भारत को संस्कृति विहीन सिद्ध करने वाले थे। वहीं दूसरे तरफ अंग्रेजों की मंशा पर सवाल उठा रहे थे।

1857 के बाद भारत में सत्ता परिवर्तन हुआ। 1858 में 'ईस्ट इंडिया कंपनी' से सत्ता महारानी विक्टोरिया के हाथों में आ गई थी। लेकिन 1857 की क्रान्ति ने भारत में मुक्ति के बीज को अंकुरित होने का मौका दिया। इससे पहले भी अनके संघर्ष हुए जिसमें मुक्ति की छटपटाहट देखी जा सकती थी। लेकिन 1857 की क्रांति ने भारत के बड़े भूभाग को अपने कब्जे में लिया हुआ था। इसी क्रांति के बाद भारत में नवजागरण और आधुनिकता की बहस तेज हुई। जिसके बारे में विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी प्रतिबंधित पुस्तक में लिखा, "सन 1857 में हिन्दुस्थान का मन स्वतंत्रता के प्रकाश से दिव्य हो गया, इसलिए सन 1857 में हिन्दुस्थान के भविष्य कथन में अतिमहत्वपूर्ण और 1857 के इतिहास पर उसके कितने ही पृष्ठों पर मुद्रांकित हुआ वह भविष्य यह था कि कंपनी का राज ठीक सौ साल में समाप्त हो जायेगा। प्लासी की लड़ाई को सन 1857 में सौ वर्ष पूरे हो रहे थे। अंत: इस वर्ष जनवरी से एक विलक्षण आशा और एक विलक्षण चेतना पूरे देश के कण-कण में संचार कर रही थी। इस एक भविष्य कथन ने देखते-ही देखते राष्ट्र में ऐसी आशा उछाल दी कि अंग्रेजी राज डूब जाएगा। इस भविष्य काल को वर्तमान काल में बदलने के लिए हर कोई सज्जित होने लगा।"[319] असल बात यहीं है कि इस वर्तमान काल में सज्जित होने की है। जो यहाँ पर मुक्ति से जुड़ जाती है, और यहीं से भारतीयों की चेतना को प्रश्नांकित करना शुरू किया जाता है। लेकिन इसी प्रश्न के जवाब के लिए सखाराम गणेश देउस्कर ने टामस मनरो को उद्धृत किया है। "हम (अंग्रेज) मुंह से भारतवासियों की उन्नति की बात करते हैं, पर काम में ऐसे उपाय लाते हैं जो इस इच्छा के सफल होने के एकदम विरुद्ध हैं। जो मूल तत्व उन्नति की जान है, उन्नितवाद के पक्षपाती शायद उससे अच्छी तरह परिचित नहीं हैं। प्रजा के साथ न तो इनकी सहानुभूति है, न उन पर विश्वास है, फिर भी उन्नति की इच्छा से जनसाधारण में ज्ञान फ़ैलाने के लिए ये लोग व्यस्त रहते हैं।

अति असभ्यता के युग में भी इससे बढ़कर अजीब और युक्तिविरुद्ध मत कभी किसी ने कहीं सुना नहीं था। कारण, धन, यश, क्षमता और उच्च पद पाने की आशा के बिना क्या कभी किसी देश के लोगों में ज्ञान उपार्जन करने की प्रवृति उत्पन्न हुई है ?... केवल अंग्रेजी किताब पढ़ने से कुछ भी फायदा नहीं होगा। केवल नीरस साहित्य की चर्चा

---

[318] आशिस नंदी, 'जिगरी दुश्मन : उपनिवेशवाद के साये में आत्म-क्षय और आत्मोद्धार' अभय कुमार दुबे (अनु.), 2019 (प्र. सं.), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ: 19

[319] विनायक दामोदर सावरकर, '1857 का स्वातन्त्र्य समर', 2013, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 89

कर किसी जाति के चरित्र की उन्नति नहीं हुई है। समाज का चरित्र-बल बढ़ाना चाहते हो तो, धन, मान और बड़े-बड़े राजकार्य पाने के रास्ते साफ कर दो। इस प्रकार बिना पुरस्कार पाने की आशा के ज्ञान-विज्ञान की बहुत चर्चा होने पर भी किसी जाति के चरित्र की उन्नति नहीं हो सकती। सब देशों के समान भारतवर्ष के लिए यही नियम लगे हैं।"[320] इसी बिना पर भारत में आधुनिकता का पैमाना तय हो रहा था। और कहा जा रहा था कि फंला नहीं आए गए होते तो भारत में आधुनिकता नहीं आई गई होती ! लेकिन इस आधुनिकता का थर्मामीटर आधुनिक बनने वाला समाज का हिस्सा नहीं था। वह केवल अनुमान रहा था कि भारत ये नहीं है, वो नहीं है ! देउस्कर ने इसका भी जवाब पेश किया। शिक्षा को लेकर देउस्कर लिखते हैं कि, "सन 1901 के बाद उच्चपदस्थ गोरों की संख्या कितनी बढ़ी है, यह बात जानने के लिए उन्होंने लाट सभा में प्रश्न भी किया था, पर राजपुरषों ने इसका जवाब देने से साफ इनकार किया। जो हो,... सन 1897 के बाद शिक्षा-विभाग में एक हजार से अधिक रुपये मासिक वेतन के जो दस नए स्थान बनाए गए हैं, उनमें से केवल एक हिन्दुस्तानी को दिया गया है और नौ गोरों को ! पूर्त विभाग और सरकारी रेल विभाग में बारह सौ रुपये से अधिक मासिक वेतन के कुल 16 पद नए बनाए गए हैं; पर इनमें एक भी हिन्दू या मुसलमानों को नहीं दिया गया केवल दो पद फिरंगी अर्थात अधगोरों को दिए गए हैं। बाकि चौबीस स्थान गोरों को अर्पण किए गए। स्मरण रखना चाहिए कि अन्यान्य विभागों में जितने हिन्दू या मुसलमान 12 सौ से अधिक रुपये वेतन पाते हैं, उनकी संख्या एक सौ से भी कम हैं। अर्थात समूचे भारतवर्ष में बारह सौ रुपये से अधिक मासिक वेतन के सरकारी कामों पर एक सौ से भी कम हिन्दू या मुसलमान काम कर रहे हैं ! क्या ये दृश्य हृदयविदारक नहीं है ?"[321] कुल मिलाकर भारत की सत्ता और जन-अधिकारों को अपने हाथों और मिटाकर आधुनिकता की तलाश उपनिवेशवादियों को उपनिवेश कायम रखने का कारगर हथियार था।

नवजागरण और आधुनिकता का प्रथम चरण शिक्षा का व्यापक प्रसार है। जो माना जाता है कि भारत में सुव्यवस्थित और शुरूआती शिक्षा अंग्रेजी हुकूमत के दौर में शुरू हुआ। उससे पहले की शिक्षा कर्मकांड आधारित और मध्ययुगीन संस्कारों को लिए हुआ था। इस सन्दर्भ में हमें देउस्कर की धारणा को सामने रख अंग्रेजी शिक्षा नीति के मर्म को समझने की कोशिश करनी चाहिए। उन्होंने लिखा कि, "प्रजा का कर नाना प्रकार से बढ़ाकर जो धन जमा

[320] सखाराम गणेश देउस्कर, 'देश की बात', बाबूराव विष्णु पराड़कर (अनु.), मैनेजर पाण्डेय (सं.), 2006, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृष्ठ :50

[321] वहीं, पृष्ठ:42

होता है, उसके 70 हिस्से का 1 हिस्सा अथवा समूचे राजस्व के 120 हिस्से का 1 हिस्सा 30 करोड़ प्रजा में ज्ञान प्रचारार्थ हमारी उदार सरकार खर्च किया करती है। सन 1890 से 1900 ई. तक के दस वर्षों में भारत साम्राज्य में शिक्षा के प्रचारार्थ सरकार ने वार्षिक 91 लाख रुपये खर्च किये हैं।... सन 1899 से राजकोष में वार्षिक 7 करोड़ रुपये राजस्व बढ़ जाया करता है। सन 1904-05 में शिक्षा विभाग में 4,8165 रुपये और उसके पहले पाँच वर्षों में 384 करोड़ रुपये खर्च किये गए हैं। वह भी सब रुपये राजकोष से नहीं दिए गए थे।... इसके सिवाय ब्रिटिश बलूचिस्तान में शिक्षा-प्रचारार्थ 1900-01 में 23,072 रुपये और 1904-05 में 28,866 रुपये खर्च हुए थे।...विद्यालय में जाने लायक बालकों की संख्या ब्रिटिश भारत में तीन करोड़ है। सुसभ्य अंग्रेजों की कृपा से लोगों की चेष्टा से इनमें प्राय: 51 लाख बालक लिखने-पढ़ने का सुभीता पाते हैं। इनमें बंगाल के (बंग, बिहार, उड़ीसा) छात्रों की संख्या प्राय: 18.5 लाख है।... इस प्रदेश (वासभूमि के सन्दर्भ में) में डेढ़ सौ वर्ष अंग्रेजी राज्य के बाद पढ़े लिखे आदमियों की संख्या 15 प्रतिशत हुई है। समूचे भारत वर्ष में कुल पढ़े-लिखे पुरुषों की संख्या 11 प्रतिशत और स्त्रियों की संख्या प्रति हजार 9 है।... प्राय: डेढ़ सौ वर्ष व्यापी अंग्रेजी शासन के बाद भी भारत में 88 प्रतिशत आदमी निरक्षर है, इससे बढ़कर सुसभ्य शासकों के लिए कलंक की बात और क्या हो सकती है ? पृथ्वी के किसी भी सभ्य देश में निरक्षरों की संख्या इससे अधिक नहीं है।"[322] देउस्कर ने अंग्रेजी हुकूमत की शिक्षा नीति का पड़ताल उसके तह में जाकर किया। अब फिर प्रश्न है कि भारत में हम जिस आधुनिकता और मुक्ति की बात करते हैं, और बराबर अंग्रेजी हुकूमत का शुक्रगुजार होते हैं। उसके डेढ़ सौ सालों के शासन में 88 प्रतिशत जनता निरक्षर है।

एक बात जो भारतीय सन्दर्भ में उठानी जरुरी है। वह यह कि भारत में किसी भी विभीषिका को ईश्वर प्रदत्त मानकर नजरंदाज कर दिया जाता है। इसी प्रकार की विभीषिका को हम 'आकाल' और 'प्लेग' आदि के नाम से जानते हैं। ये विभीषिका उसी दौर की है जब भारत में मुक्ति के नाम पर हुकूमत लूट और दमन का अंजाम दे रही थी। देउस्कर ने इस प्रश्न को भी गहराई से उद्धृत किया, और लिखा कि "अंग्रेजों के लिखे इतिहास से जाना जाता है कि आठरहवी सदी में भारत वर्ष अँधेरे नगर ही रहा था। पर उन सौ वर्षों में भारत में चार बार से अधिक अकाल नहीं पड़ा था। सिवाय वे आकाल होते भी थे एक ही प्रदेश में। उन्नीसवी शताब्दी में इस देश में धीरे-धीरे अंग्रेजों का राज्य फैला। दुर्भाग्यवश उसी समय अकाल राक्षस ने भी यहाँ अपना अधिकार जमा लिया। गत शताब्दी के पहले पचीस वर्षों में

[322] वहीं, पृष्ठ:194

अर्थात सन 1801 से 1823 तक भारतवर्ष में दस लाख आदमी अकाल के कारण भूख से मर गए। दूसरे पचीस वर्षो में और भी पाँच लाख अभागे उक्त राक्षस की बलि पड़े। उसी शताब्दी के तीसरे चरण में सिपाही युद्ध हुआ। उसका परिणाम यह हुआ कि सारे भारतवर्ष में अंग्रेजों का राज्य जम गया। उन्हीं पचीस वर्षों में अकाल ने भी यहाँ अपना शासन मजबूती के साथ जमा लिया। सरकारी रिपोर्ट से मालूम होता है कि सन 1850 से 1875 तक ब्रिटिश भारत में छह बार अकाल पड़ा। उससे पचास लाख भारतवासी पेट की ज्वाला से काल के कवल हुए।"[323] याद रहे कि भारतीय इतिहास में 1943-44 का बंगाल का अकाल का जिक्र खूब होता है। जिसमें 30 लाख लोग मरे थे। लेकिन उससे पहले भारत में अकाल और प्लेग का जिक्र भी नहीं मिलता। देउस्कर ने इन सभी अकालों और प्लेगों को अंग्रेजी हुकूमत की लूट का वजह बताया है।

विनायक दामोदर सवारकर ने अपनी पुस्तक में 1857 से सम्बन्धित घटनाओं के विवरण के साथ उस संघर्ष की रणनीति को केंद्र में रखा है। इस संघर्ष में सभी महत्वपूर्ण सेनानियों के साथ जिन क्षेत्र में संघर्ष की आंच अधिक थी। उन क्षेत्रों की सामाजिक स्थिति को उजागर किया है। जिसके कारण बताते हुए वे लिखते हैं "स्वधर्म एवं स्वराज्य इन दो देवताओं का अधिष्ठान रखकर सन 1857 में प्रारम्भ हुए इस रण- यज्ञ का संकल्प कब लिया गया ? अंग्रेज इतिहासकारों के अनुसार इस रण-यज्ञ का संकल्प डलहौजी साहब के कार्यकाल में लिया गया था। उनकी यह धारणा भ्रमपूर्ण है। जिस क्षण हिन्दुस्थान के तट पर परतन्त्रता ने पहला कदम रखा तभी। बेचारा डलहौजी ! उसने अधिक बुरा ही क्या ? हिन्दुस्थान की जन्मजात स्वतंत्रता का हरण कर उसके बदले गुलामी और स्वधर्म के स्थान पर ईसाइयत लादने का पातकी विचार जब पहले-पहले अंग्रेज व्यापरियों के मन में आया, तभी से हिन्द भूमि के ह्रदय में क्रांति-चेतना का संचार हुआ है। सन 1857 के क्रांतियुद्ध का कारण अंग्रेजों के 'अच्छे शासन' या 'बुरे शासन' में न होकर केवल 'शासन' में है। अच्छा या बुरा का प्रश्न गौण है; मुख्य प्रश्न 'शासन' है। जिस देश को हिमालय ने उत्तर और समुद्र देवता ने 'दक्षिण' की ओर से सुरक्षित किया हुआ है उस निसर्गता बलिष्ठ एवं निसर्गप्रिय हिन्दुस्थान पर अंग्रेजों की सत्ता चलने देना है या नहीं, यह मुख्य प्रश्न सन 1857 के समर-तट पर हल किया जा रहा था, यह यदि सत्य है तो फिर इस समर की मूल उत्पति तभी हुई होगी जब यह प्रश्न पहले-पहल सामने आया।"[324] सावरकर ने 1857 को वर्चस्वादी तरीके से भारत का शासन अंग्रेजों द्वारा अपने हाथों में ले लेना कहा। जिसके लिए भारत का प्रत्येक तबका

[323] वहीं, पृष्ठ : 20

[324] विनायक दामोदर सावरकर, '1857 का स्वातन्त्र्य समर', 2013, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 44

और प्रत्येक प्रान्त प्रतिरोध कर रहा था। सावरकर ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 1857 को सिपाही विद्रोह के जगह स्वतन्त्रता की पहली लड़ाई बताया था। लेकिन इनकी इतिहास दृष्टि एकांगी और हिंदूवादी विचारों से प्रेरित थी। इन पर बाद में अंग्रेजों से माफ़ी मांगने का भी आरोप लगा।

1909 में महात्मा गाँधी ने 'हिन्द स्वराज्य' लिखी। जिसको 1938 तक अंग्रेजी सरकार ने प्रतिबंधित रखा। यह पुस्तिका एक यात्रा के दौरान लिखी गई थी। जिस प्रकार देउस्कर और देवनारायण द्विवेदी और सुंदरलाल आदि ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता को अंग्रेजी लूट और दमन के बनिस्बत तरज़ीह दी। उसी प्रकार गाँधी ने भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अपने इस पुस्तिका के केंद्र में रखा और लिखा "मेरा तो कहना है कि सभ्यता के कष्टों की बनिस्बत इन सबको सह लेना कहीं आसान है। आपने जिन अत्याचारों की बात कही है, सभी जानते हैं कि, पाखंड हैं; धर्म से उनका कोई लगाव नहीं। इसलिए उस पाखंड में फसे हुए मनुष्यों की मृत्यु के साथ ही उस पाखंड की समाप्ति हो जाती है। यों तो जहाँ भोले, अज्ञानी लोग होंगे वहां ऐसा होता ही रहेगा। पर उसका असर सदा के लिए बुरा नहीं रहता। सभ्यता की आग में जल मरने वालों के बिपत का तो अंत ही नहीं होता। मजा तो यह है कि लोग उस आग को हितकर समझकर उसमें कूदते हैं। वे दीन के रहते हैं न दुनिया के। असलियत को वे बिल्कुल ही भूल जाते हैं। सभ्यता तो चूहे की तरह हमें कुतर-कुतरकर खाती है और हमें गुदगुदी का सुख मिलता है। इसके असर का पता जब हमें लगेगा तो पिछले ज़माने का अन्धविश्वास उसकी तुलना में अच्छा जान पड़ेगा। मैं यह नहीं कहता कि ये अन्धविश्वास या वहम हमें बनाये रखने चाहिए। उनसे तो हमें भिड़ना ही होगा, पर यह लड़ाई धर्म को भूलकर नहीं लड़ी जा सकती, बल्कि सच्चे अर्थ में धर्म का सम्पादन करके ही लड़ी जा सकती है।"[325] महात्मा गाँधी की यहाँ चिंता अंग्रेजी हुकूमत से उत्पन्न भारतीय समाज, संस्कृति और सभ्यता का संकट है। जहाँ एक तरफ गुलामी की जंजीरें भारत की उद्योग-धंधे, एकता और विरासत को चौपट करने पर तुली हुई थीं। वहीं दूसरे तरफ धार्मिक उन्माद का माहौल भी तेज था। यही बात सखाराम गणेश देउस्कर और देवनारायण द्विवेदी भी कहते दिखते हैं। धार्मिक उन्माद हमारी सभ्यता और संस्कृति दोनों के लिए हानिकारक था। जिसे वे अंग्रेजों की देन मानते थे। वीरेंद्र कुमार बरनवाल ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि "हिन्द स्वराज्य में गाँधी का सभ्यता-विमर्श जिसका मूल स्वर पश्चिम की आधुनिक सभ्यता का प्रतिरोध और उसकी तीखी आलोचना है, अपनी आत्मा में ठेठ हिन्दुस्तानी होते हुए भी पश्चिम में उभरे 'दूसरे पश्चिम' से गहरे प्रभावित और

[325] मोहनदास करमचंद गाँधी, 'हिन्द-स्वराज्य', कलिका प्रसाद (अनु.), 2009, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ:35

प्रेरित था। इस 'दूसरे पश्चिम' से ही गाँधी ने इस 'शैतानी सभ्यता' की आलोचना और उसको आजीवन प्रतिरोध के औजार ग्रहण किए थे। शाकाहार के विरुद्ध मित्रों, शुभचिंतकों के लाख तर्क के बावजूद उन्नीस वर्षीय गाँधी का उस पर अडिग रहना दरअसल एक रूपक है जो अगले छह दशकों के दौरान उनके अनूठे जीवन के मुहावरे का अकाट्य हिस्सा रहा।"[326] जैसा कि देउस्कर ने भी पश्चिम के कुछ लेखकों को भारत में साम्राज्यवाद विरोधी स्वर के लिए स्वागत के साथ अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है। वैसे ही गाँधी ने पश्चिम में भी दूसरे पश्चिम को खोज लिया था।

रेल को आधुनिकता का प्रतीक माना गया। लेकिन देउस्कर, गाँधी और द्विवेदी तीनों ही लेखकों ने इस रेल को भारत की लूट का प्रतीक माना। देउस्कर और द्विवेदी ने रेल की जगह नहर और नदियों को सुदृढ़ करने पर जोर दिया। गाँधी ने लिखा, "इतना तो आप समझ ही सकते हैं कि रेलें न हों तो हिंदुस्तान पर अंग्रेजों का जितना काबू आज है उतना न रहेगा। रेलों ने ही यहाँ प्लेग की महामारी फैलाई। रेलें न हों तो लोगों का एक से दूसरे जगह जाना बहुत कम हो जाए और धूर्तवाली बीमारियाँ सारे देश में न फैलें। हम पहले स्वाभाविक रूप में 'सेग्रीगेशन' (सूतक) मानते थे। रेलों से अकाल का पड़ना बढ़ा है, क्योंकि रेल की सुभीता पाकर लोग अपना अनाज बेच डालते हैं। जहाँ महँगी अधिक हो वहां अनाज खिंच जाता है। लोग लापरवाह हो जाते हैं और इससे अकाल का दुःख बढ़ता है। रेलों से दुष्टता भी बढ़ रही है, बुरे आदमी अपनी बुराई अब ज्यादा तेजी से फैला सकते हैं। हिंदुस्तान के पवित्र स्थान अपवित्र हो गए हैं। पहले लोग बड़े कष्ट कठिनाइयाँ उठाकर वहां पहुँच पाते थे, इसलिए सच्चे भक्ति-भाववाले ही भगवद-भजन के लिए वहां जाते थे। अब तो ठगों की टोली अपनी ठग-विद्या दिखाने के लिए ही वहां जाती है।"[327] प्रतिबंधित पुस्तकों में जिसे आज हम आधुनिकता का प्रतीक मानते है। उन्हें हुकूमत के नजरिये के विरुद्ध देखने की कोशिश की गई है।

इस पृथ्वी का अधिकांश हिस्सा ऐसा रहा है। जो किसी न किसी तरह गुलामी की जंजीरों से बंधा हुआ था। इन जंजीरों को टूटने और तोड़ने वालों का इतिहास मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव ने लिखा है। इसी तरह का एक प्रसंग इटली के सन्दर्भ में नवजादिक लाल श्रीवास्तव ने दिया है। "एक जमाना था, जब रोमन सभ्यता का प्रभाव प्राय: समस्त यूरोप, अफ्रीका और मध्य एशिया तक फैला हुआ था। उस समय यूरोप की समस्त जातियों को रोमन साम्राज्य के सामने सिर झुकाना पड़ा था। यहाँ तक कि पश्चिम एशिया को अपने विजय-दुदुंभी से मुखरित कर रोमन वीर

---

[326] वीरेंद्र कुमार बरनवाल, 'हिन्द स्वराज : नव सभ्यता-विमर्श', 2012, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 46

[327] मोहनदास करमचंद गाँधी, 'हिन्द-स्वराज्य', कलिका प्रसाद (अनु.), 2009, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ:38

भारतवर्ष के द्वार तक पहुँच गए थे। और कुछ दिनों के लिए शिल्प, कला, इतिहास, साहित्य और व्यवहार-शास्त्र में इटली ने जो उन्नति प्राप्त की थी, उसकी समता करने का गौरव अभी तक किसी भी आधुनिक जाति को प्राप्त नहीं है।"[328] लेकिन उसके बाद इटली में फासीवाद का चरम के बारे में सब जानते होंगे। हिंदी में जब 1934 में यह पुस्तक लिखी गई, तब दुनिया की मुक्ति का इतिहास हिंदी पाठकों के सामने न होगा। इस पुस्तक की नवजागरण से सम्बंधित अध्ययन के लिए उपयोगिता है। इसमें छत्तीस पराधीन देशों के स्वतन्त्रता आन्दोलन की कहानी समाहित है।

'भारत में अंगरेजी राज' पुस्तक के प्रथम खंड में भारत पर हुए सभी विदेशी हमले को ऐतिहासिक क्रम में विवेचित किया गया है। वहीं दूसरे भाग में भारत में सत्ता संघर्ष या युद्धों का विवरण है। इस पुस्तक के बारे में एक प्रसंग में सुन्दरलाल लिखते हैं कि, "इस जब्ती के होते हुए महात्मा गाँधी ने मुझे आज्ञा दी कि मैं पुस्तक का एक सेट कहीं से उन्हें लाकर दूं।"[329]

इस प्रकार नवजागरण और आधुनिकता दोनों ही 'मुक्ति' और 'ज्ञान' से सम्बंधित है। जिसे "हेबरमास मुक्ति की अवधारणा को संवाद और संप्रेषण की स्थिति से जोड़ते हैं। वे कहते हैं कि यह सच है कि आधुनिकता औद्योगिक समाज में उपयोगिता मूलक तर्क पद्धति का वैयक्तिक जीवन पर नियंत्रण बढ़ता गया है , फिर भी एक जीवन जगत (life world) है, जो चेतना और सम्प्रेषण की कार्यवाई का इलाका है। हेबरमास के पूर्ववर्ती कार्य का एक बड़ा हिस्सा इसी 'जीवन जगत' के ढांचे को व्याख्यायित करने से जुड़ा हुआ है। इसमें वे भाषा, सम्प्रेषण की कार्रवाई और नैतिक चेतना के आपसी सम्बन्धों को तलाशते हैं। वे कहते हैं कि समस्त जीवन जगत मुक्ति के सरोकारों से जुड़ा हुआ है। केवल एक कुतर्क से भरी विकृत भाषा ही इसे समझने में व्यवधान खड़ा करती है। हेबरमास का आदर्श वाक्य है 'सारे सामाजिक जीवन का मूल आधार मुक्ति की कामाना है।"[330] हेबरमास का सम्प्रेषण और संवाद ही प्रतिबन्धित इतिहासकारों का संवाद है। जो वे हुकूमत से करते है मुक्ति के लिए।

---

[328] मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव, 'परधीनों की विजय-यात्रा', मैनेजर पाण्डेय (सं.), 2014, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली. पृष्ठ : 62
[329] भूमिका से, सुन्दरलाल, 'भारत में अंगरेजी राज', द्वितीय खंड, 2016 पंचम संस्करण, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ : 02

[330] विजय कुमार, अँधेरे समय में विचार, 2010, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ : 68

देश की बात: सखाराम गणेश देउस्कर

'देश की बात' पुस्तक सखाराम गणेश देउस्कर द्वारा मूल बांग्ला भाषा में लिखित है। जिसका प्रथम संस्करण 1904 और द्वितीय संस्करण1907 में प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक को ब्रितानी हुकूमत ने 1910 में प्रतिबन्धित कर दिया था। यहाँ इस पुस्तक के सन्दर्भ में प्रतिबन्ध का नाम आते ही, इसके प्रतिबंधित होने के कारणों पर ध्यान जाना लाज़मी है। इसके सन्दर्भ में इसके तत्कालीन प्रकाशक माधव प्रसाद मिश्र ने लिखा कि "जिस समय यह पुस्तक बांग्ला में लिखी गई थी उस समय बंगाल के टुकड़े नहीं हुए थे, स्वदेशी आन्दोलन का विचार भी लोगों के जी में नहीं आया था। लार्ड कर्जन के कुचक्रपूर्ण शासन से लोग शंकित हो चुके थे, पर उनकी मोहमयी निद्रा तब तक भी टूटने नहीं पाई थी। बंगाल के शिक्षित लोग आमोद-प्रमोद में लगे रहे थे और कितने ही सौन्दर्योपासक 'मूकाभिनय' का अपूर्व कौतुक कर कृत्रिम रमणीयता का बाजार खोल रहे थे। उपन्यास और नाटकों में श्रृंगार रस की प्रधानता हो रही थी। यह किसी को ध्यान भी न था कि उनके देश की कैसी शोच्य दशा हो रही है और परिवर्तन होनेवाला है।"[331] इस बात को समझने के लिए देश की बात पुस्तक के अध्यायों पर विचार करने पर और अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है। इस पुस्तक में कुल सोलह अध्याय (परिशिष्ट को सम्मिलित कर) हैं। ये अध्याय कुछ इस प्रकार हैं – हमारा देश, अंग्रेजी शासन के गुण और दोष, देश की अवस्था, मानसिक अवनति, किसानों का सर्वनाश, रेल और नहर, कारीगरों का सर्वनाश, देशी कारीगरी का नाश, स्वदेशी आन्दोलन, आय और व्यय, पादरियों की युक्ति, प्रतिकार का उपाय, सम्मोहन: चित्त-विजय, बट्टे से हानि, बंग-विभाग, सन 1901 की आदम सुमारी (परिशिष्ट)। इन अनुक्रमों से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि, यह पुस्तक ब्रितानी हुकूमत के राज में भारतीय समाज के हर क्षेत्र का लेखा जोखा प्रस्तुत करती है। इसलिय मैनेजर पाण्डेय ने लिखा और उद्धृत किया कि "सखाराम गणेश देउस्कर भारतीय नवजागरण के अन्य निर्माताओं की तरह एक निर्भीक पत्रकार और मौलिक विचारक थे। उनके सम्पूर्ण चिंतन और लेखन की बुनियादी चिंता देश की पूर्ण स्वाधीनता थी। श्री अरविन्द ने लिखा है कि स्वराज्य शब्द का पहला प्रयोग 'देशेर कथा' के लेखक सखाराम गणेश देउस्कर ने किया।... देउस्कर भारतीय जनजागरण के ऐसे विचारक हैं जिनके चिंतन और लेखन में स्थानीयता और अखिल

---

[331] 'देश की बात', मैनेजर पाण्डेय द्वारा उद्धृत सम्पादक की प्रस्तावना से, पृष्ठ नौ

भारतीयता का अद्भुत संगम है। वे महाराष्ट्र और बंगाल के नवजागरण के बीच सेतु के समान हैं।[332]" मैनेजर पाण्डेय ने यहाँ देउस्कर के व्यक्तित्व की तरफ इशारा किया है, लेकिन, मैं यहाँ उनके कृत्तित्व को जोड़ना चाहूँगा कि सखाराम गणेश देउस्कर की यह पुस्तक महज बंगाल और महाराष्ट्र के बीच सेतु ही नहीं बल्कि अखिल भारतीय स्तर पर मुक्ति की भावना को उजागर करने वाली पुस्तक है। जिसके लिए वे स्वयं लिखते हैं कि "जो लोग राष्ट्रीय सभा की कार्य-प्रणाली नापसंद करते हैं और सरकार से बिना सहायता लिए ही देशी शिल्प-वाणिज्य की उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें भी यह पुस्तक एक बार पढ़ जानी चाहिए। जिसमें देशी शिल्प-वाणिज्य की उन्नति की ओर लोग अधिक ध्यान दें तथा ब्रिटिश प्रजा के स्वाभाविक अधिकार प्राप्त करने के लिए जी-जान से वैध प्रयत्न करें, यही इस पुस्तक के प्रचार का उद्देश्य है।"[333] देउस्कर ने यहाँ अपनी पुस्तक की आधारशिला की तरफ इशारा किया है।

इस पुस्तक के पहले अध्याय 'हमारा देश' में भारत की ब्रितानी हुकूमत से पहले की स्थिति को दर्शाया गया है। इसके साथ भारत के क्षेत्रफल की तरफ इशारा करते हुए देउस्कर लिखते हैं "समुद्र की करघनी पहनी तथा हिमालय के मुकुट से सुहावनी भारत भूमि का विस्तार 13,00,9,72 वर्ग मिल है। जिसमें 7,93,9,72 वर्ग मिल पर अंग्रेजों का खास अधिकार है। यह भाग ब्रिटिश भारत कहलाता है। सरकारी कागजों में ब्रह्मदेश और बलूचिस्तान भी ब्रिटिश भारत में गिने जाते हैं। ब्रह्मदेश का परिणाम 1,68,550 वर्ग मील है। ब्रिटिश बलूचिस्तान का आकार 22,400 सौ वर्ग मील से बड़ा नहीं है। भारतवर्ष में सब मिलाकर 213 कर देने वाले रजवाड़े हैं। जिनमें से मध्यभारत में छोटे और बड़े सब मिलाकर 80 हैं, राजपुताने में 20, पंजाब में 34, मध्यप्रदेश में 15, मद्रास में 5 बंबई में 20, युक्तप्रदेश में 2, काश्मीर में 1 मैसूर में 81, हैदराबाद में 19 और बड़ोदे में छह। देशी राजाओं के अधीन भूमि की माप सब मिलाकर 5,95,000 वर्ग मील है।"[334] ऐतिहासिक नज़रिए से देश का क्षेत्रफल और उस पर शासन और उसके शासक की जानकारी देना एक इतिहासकार की नैतिक जिम्मेवारी होती है। इस जिम्मेदारी का पालन सखाराम गणेश देउस्कर ने किया है। उन्होंने कुछ इसी तरह भारत की जनसंख्या को भी इंगित किया है। "इस समय भारतवर्ष में कुल 28,42,34,700 सौ मनुष्य हैं। यह संख्या सारी पृथ्वी के मनुष्यों का प्राय: पांचवां भाग है। ऊपर कहे हुए 28 करोड़ मनुष्यों में 22,10,53,132 आदमी ब्रिटिश भारतवर्ष में रहते हैं और बाकि 6,31,81,570 देशीय हिन्दू और मुसलमान नरेशों के राज्य में। ब्रह्मदेश

[332] वहीं, पृष्ट ग्यारह

[333] 'देश की बात', ग्रन्थकार की प्रस्तावना से,

[334] सखाराम गणेश देउस्कर, 'देश की बात', बाबूराव विष्णु पराड़कर(अनु.), 2005(दू. सं.), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृष्ठ : 1

और ब्रिटिश बलूचिस्तान की संख्या 1,0032,000 हजार है। भारत में 20,71,47,026 हिंदू 6,24,58,077 मुसलमान और 1,68,000 हजार यूरोपियन रहते हैं। ब्रिटिश भारत में हिन्दू और मुसलमानों की संख्या 22,09,28,100 है; जिनमें 11,22,43,900 और 10,87,63,200 स्त्रियाँ हैं। इन 22 करोड़ 9 लाख से कुछ अधिक हिन्दू और मुसलमानों के सुख दुःख की बातें ही इस छोटी-सी पुस्तक में बड़े संक्षेप में कही गई हैं।[335]" किसी भी भगौलिक क्षेत्र या देश का आर्थिक और सामाजिक इतिहास लेखन के नजरिये से उस भूभाग की जनसंख्या और क्षेत्रफल दोनों ही महत्वपूर्ण होते हैं, या दूसरे शब्दों में कहें तो उसकी सामाजिक और राजनीतिक पहलुओं से परिचित होना। इसी से इतिहास और समाजशास्त्र का सम्बन्ध भी पुख्ता होता है। इसीलिए टी. बी. बॉटमोर ने लिखा कि "इतिहासकारों और समाजशास्त्रियों के वास्तविक लेखन की जाँच-परख के लिए हम इस भेद को जितना ही परिष्कृत करते जाएंगे, यह साफ होता जाएगा कि इतिहासलेखन और समाजशास्त्र को साफ-साफ अलग नहीं किया जा सकता। वे एक ही विषयवस्तु, समाज में अस्तित्वमान मनुष्य पर कभी भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से और कभी एक ही दृष्टिकोण से विचार करते हैं। सामाजिक विज्ञानों के विकास के लिए यह सबसे महत्वपूर्ण है कि ये दोनों विषय घनिष्ट रूप से जुड़ें और एक से दूसरा भारी मात्रा में उधार ले जैसी प्रवृति उन दोनों में अधिकाधिक दिखाई दे रही है।"[336] इसी कार्य को देउस्कर और अन्य प्रतिबंधित लेखकों ने किया है। उनके लिए भारत राष्ट्र और समाज एक समूह है। इस दृष्टि से देउस्कर ने भारत का भौगोलिक और प्राकृतिक आँकड़ा प्रस्तुत किया है।

इससे भी आगे देउस्कर ने भारत में ब्रितानी साम्राज्य को एक तरफा नहीं देखने की कोशिश की है। उन्होंने इस पुस्तक के द्वितीय अध्याय 'अंग्रेजी शासन के गुण और दोष' में लिखा है कि "विदेशी राजा होने पर भी अंग्रेज बहुतेरे गुणों से सुशोभित हैं और सभ्य जातियों के सरताज हैं। अंततः इस समय भारतवासियों के लिए जिन-जिन गुणों का सीखना बहुत ही जरुरी है, वे अंग्रेजों में बहुत कुछ पाए जाते हैं। सो इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि अंग्रेजों के साथ रहकर भारतवासी एक प्रकार से बड़ा भारी लाभ उठा रहे हैं। इसी से बम्बई हाईकोर्ट के भूतपूर्व विचारपति स्वर्गवासी महादेव गोविन्द रानाडे कहा करते थे कि जिसमें अंग्रेजों की सोहबत से भारतवासी समयोपयोगी ज्ञान, विज्ञान, चरित्रबल और जातीय उन्नति के अनुकूल गुण लाभ कर सकें, इसी उद्देश्य से भगवान ने इन दो जातियों का यह अपूर्व मिलाप किया है

---

[335] सखाराम गणेश देउस्कर, 'देश की बात', बाबूराव विष्णु पराड़कर(अनु.), 2005(दू. सं.), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृष्ठ:2

[336] टी. बी. बॉटमोर, 'समाजशास्त्र: समस्याओं और साहित्य का अध्ययन', गोपाल प्रधान(अनु.), 2004(प्र.सं.), ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, पृष्ठ: 73

।"[337] देउस्कर की यह बात शासन और शासक के सन्दर्भ में व्यंजना में ही ग्रहित किया जाना चाहिए। उन्होंने यहाँ साहित्य और ज्ञान की अन्य शाखाओं के मिलाप से भारतीय ज्ञानमीमांसा का फैलाव को इंगित किया है। इसलिए वे लिखते हैं कि "पश्चिमी शिक्षा के पाने से यह विश्वास भी उनके जी में जम गया है कि अंग्रेजी राज्य में उनकी यह चाह बिना पूरी हुए नहीं रहेगी। इस देश में जितने राजनीतिक आन्दोलन होते हैं वे भारतवासियों की इसी चाह के द्योतक हैं। बर्क, मेकाले, ब्राडला, ब्राइट, फीसेट, केन, डिग्बी, कटन, स्मिटन, ह्यूम वेडरबर्न प्रभृत उदार स्वभाव वाले राजनीतिक-विशारद अंग्रेज महात्मागण भी उनकी यह चाह बढ़ाने में बहुत कुछ मदद कर रहे हैं। दूसरी ओर मेक्समूलर, मेकडोनल, कावेल, कीलब्रुक, जींस, प्रन्सिप प्रभृत पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय सभ्यता का प्राचीनत्व और श्रेष्ठत्व प्रतिपादन कर भारतवासियों को उनके भूले हुए पूर्व गौरव की फिर याद दिला दी है। धार्मिकों की दृष्टि में अंग्रेजों के बहुत से गुण खराब लग सकते हैं, पर कोई भी इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि पराये राज्य को जीतने और अपने राज्य को स्थायी करने में उन गुणों के बिना काम नहीं चल सकता।[338]" उपर्युक्त जितने भी नाम देउस्कर ने गिनाएं हैं। वे सभी विचारक या साहित्यकार साम्राज्यवादी देश से सम्बंधित होते हुए भी साम्राज्यवादी विरोधी थे। जिनका उद्धरण अन्यत्र इस पुस्तक में दिख जायेगा। देउस्कर इसी अध्याय में अंग्रेजों और साम्राज्यवादी जातियों के दोषों की तरफ भी इशारा करते हैं। ब्रितानी सरकार और उसके नुमाइंदे जिस तरह से भारतीय संस्कृति और एकता को प्रभावित कर रहे थे। उसको उन्होंने अपनी आलोचना का केन्द्रीय बिंदु बनाया, और लिखा "जीती हुई जाति के लिए जीतने वालों के साथ एकदम मिल जाना कदापि अच्छा नहीं। अकबर के समय मुसलमानों के साथ हिन्दुओं का विवाह सम्बन्ध हो जाने के कारण राजपूत जाति की जो अवनति हुई, वह इतिहास पढ़नेवालों से छिपी नहीं है। पहले बहुतेरे लोगों का ख्याल था कि अंग्रेजों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध होने से हिन्दू बड़ा भारी लाभ उठा सकेंगे। बहुत से 'नकल के फ़कीर सुधारक' इस चाल को जारी करने के लिए कूदने भी लग गए थे; पर अब उनकी आँखें खुलने लगी हैं। विजातियों पर अंग्रेजों की घृणा ही इस परिवर्तन का कारण है। जब औरंगजेब हिन्दू धर्मावलंबियों को सताने लगा तो उन दिनों के हिन्दू अधिकतर स्वधर्म-परायण हुए और वे स्थान-स्थान पर बल-संग्रह कर हिन्दू-राज्य स्थापना करने का प्रयत्न करने लगे।"[339] देउस्कर के इस कथन से अध्येता उनके हिन्दू धर्म के प्रति झुकाव कह सकते हैं! लेकिन जैसा कि इस पुरे पुस्तक के अन्य उद्धरणों

[337] सखाराम गणेश देउस्कर, 'देश की बात', बाबूराव विष्णु पराड़कर(अनु.), 2005(दू. सं.), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृष्ठ:3

[338] वहीं, पृष्ठ 4

[339] वहीं, पृष्ठ:5

से यह समझना चाहिए की देउस्कर किसी भी वर्चस्ववादी ताकत का पुरजोर विरोध करते हैं। हरबंस मुखिया ने भी औरंगजेब के बारे में लिखा है कि "औरंगजेब में धार्मिक उत्साह अत्यधिक था। उसके लिए इसका निहितार्थ एक पवित्र व रुढ़िवादी मुसलिम शासक द्वारा शासित भूमि में काफ़िरों के मंदिरों को तोड़ना था। उसके द्वारा तोड़े गए मंदिरों की संख्या मध्यकालीन भारत में किसी भी शासक द्वारा तोड़े गए मंदिरों की संख्या से अधिक है। फिर भी वह वो नहीं कर पाया जिसे करके उसे सर्वाधिक प्रसन्नता होती: जिस भूमि का वह शासक था उस भूमि से कुफ्र का सफाया।"[340] जिस तरह से कुछ मुग़लों ने भारतीय समाज और संस्कृति को विरूपित करने का कार्य किया। उसी तरह से ब्रितानियों ने भी हमला बोला। जिसके लिए अगले अध्याय में देउस्कर अख़तर का एक गीत उद्धृत करते हैं –

"दिल जले हैं ग़म से औ आंसू बहाना मना है,
लग रही है आग घर में औ बुझाना मना है।
जिगर में है शौल: औ नाल: उठाना मना है,
चाक पर है चहक औ मरहम लगाना मना है।।"[341]

'देश की अवस्था' अध्याय में देउस्कर इसी अत्याचार को दर्शाते हैं। जिसके लिए वे भारत को ब्रितानियों ने 'बाहू-युद्ध' से जीता हुआ राज्य कहते हैं। जो आगे चलकर वाणिज्य युद्ध का रूप धारण कर लेता है। और यहीं बाहु-युद्ध और वाणिज्य-युद्ध देश में लूट का शासन कायम करता है। उनके द्वारा 1901 का दिए गए आंकड़ों से सिद्ध हो जायेगा।

देश	फी आदमी वार्षिक आय	देश	फी आदमी वार्षिक आय
रूस	165/-	जर्मनी	330/-
इटली	180/-	कनाडा	390/-
आस्ट्रिया	225/-	फ्रांस	405/-
स्पेन	240/-	बेलजियम	420/-
स्वीजरलैंड	285/-	अमेरिका	585/-
नारवे	300/-	आस्ट्रेलिया	600/-
हॉलेंड	330/-	स्कॉटलैंड	675/-

[342]

[340] हरबंस मुखिया, 'भारतीय मुग़ल', तरुण कुमार (अनु.), 2008, आकर बुक्स, दिल्ली, पृष्ठ:43
[341] सखाराम गणेश देउस्कर, 'देश की बात', बाबूराव विष्णु पराड़कर(अनु.), 2005(दू. सं.), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृष्ठ:18
[342] वहीं, पृष्ठ: 24

यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात यह ध्यान देने वाली है कि उपर्युक्त कोई भी ऐसा देश नहीं है। जहाँ साम्राज्यवादी शासन न रहा हो। लेकिन भारत के बारे में डॉ. हंटर ने अपने एक भाषण में कहा था कि "ब्रिटिश भारत के आधे किसान वर्ष-भर में एक दिन भी पेट-भर खाना नहीं पाते। पेट-भर खाने से क्या सुख होता है, सो तो बेचारे जानते ही नहीं।"[343] जबकि इस देश की वार्षिक आमदनी प्रति व्यक्ति 20 रुपये से भी कम थी। इन्हीं खाने और पहनने की कमी के वजह से 5 करोड़ आदमियों को ज्वर होता है, जिसमें 50 लाख मौत के मुंह में समा जाते हैं।

इन्हीं भुखमरी और बेकारी की वजह से भारत जनता की 'मानसिक अवनति' हो रही है। जिसे सभी श्वेत लोग चोर और असभ्य जैसी उपमा देते है। देउस्कर ने इसको उकेरने के लिए एक श्लोक का सहारा लिया है –

"बुभुक्षित: किं न करोति पापं
क्षीण जना निष्करुण भवन्ति ।।"[344]

इसी भूख की वजह से भारत में चोरी और डकैतियों की संख्या में वृद्धि होती है। जिसके लिए ब्रितानी चोर-असभ्य की उपमा देते हैं। लेकिन देउस्कर ने भारत में इस क्रिया के कारण बताते हुए। इंग्लैंड की भी चोरी-असभ्यता के तरफ इशारा करते हुए लिखते हैं कि "धनशाली इंग्लैंड में प्रतिवर्ष जीतनी चोरियां होती हैं उनकी संख्या भारत में होनेवाली चोरियों से पाँच गुना अधिक है। सन् 1903 के पुलिस रिपोर्ट से मालूम होता है कि उस वर्ष एक लन्दन शहर में 35,262 आदमी चोरी गए ! इनमें लगभग 17 हजार आदमियों का पुलिस कुछ भी पता न लगा सकी। इंग्लैंड में मुकदमेबाज लोगों की संख्या भी कम नहीं है। वहां प्रति 24 आदमियों में 1 आदमी कचहरी की शरण जाता है और भारत में 140 आदमियों में एक। खून के अपराध में सज़ा पाकर जो लोग यहाँ से कालेपानी भेज दिए जाते हैं, उनके चेहरे की रौनक देखकर सुप्रसिद्ध डारविन साहब ने आश्चर्य के साथ कहा था कि इनके मुंह पर महानुभावता की छाया दिख पड़ती है।"[345] ब्रितानी हुकुमत इसी तरह के जनों को चोर और विभिन्न उपमाओं से नवाजती थी। इन्हीं उपमाओं की आड़ में देश और समाज का पतन हो रहा था।

---

[343] वहीं,

[344] वहीं, पृष्ट :31

[345] वहीं

इन्हीं पतनों को रेखांकित करने के लिए देउस्कर ने 'किसानों का सर्वनाश' नाम एक अध्याय अपने पुस्तक में लिखा है। भारत के इतिहास में अब तक यह ज्ञात है कि सामंतवादी युग को प्रताड़ना वाला युग के नाम से अभिहित किया जाता है। रामराज्य और तुलसीदास की निम्न पंक्तियों को हम खूब दोहराते रहते हैं

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख ,बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।"[346]

लेकिन देउस्कर ने उत्तर प्रदेश का एक जिला ईटा के सरकारी रिपोर्ट का हवाला दिया है, "बहुत से विद्वानों की सहायता से अच्छी तरह खोज करने के बाद मुझे मालूम हुआ कि जिस किसान के पास 16.5 बीघा जमीन, एक हल और एक जोड़ा बैल, जमीन सींचने लायक कुआं है, उसकी फसल खरीफ से 129.5 रुपये आय होती है और फसल रबी से 84.5 रुपये। इन 214 रुपयों में से 75 रूपये सरकार को कर देना पड़ता है; बीज खरीदने में 13.5 रूपये और खेती के अन्यान्य खर्च में 79.37 रुपये खर्च होता है। किसान को लाभ होता है 45.87 इन्हीं रुपयों में और तीन आदमियों सहित किसान को समूचा वर्ष बिताना पड़ता है। चार आदमियों के लिए दो सांझ में कम-से-कम 3 सेर चावल तथा अन्यान्य चीजों की आवश्यता होती है। रूपये में 25 सेर के हिसाब से इस परिवार को साल में कुल 43 रुपये का अनाज खरीदना पड़ता है। कपड़े के लिए वर्ष में आठ रुपये खर्च होते हैं। इस प्रकार कुल 51 रूपये में तीन आदमियों के परिवार के साथ एक किसान का जीवनयापन होता है। उसे हर साल 5 रुपये कर्ज होता है।"[347] भारतीय किसानों ने प्रत्येक शासक के शासनकाल में जीवन के निम्न से भी कम स्तर के साथ गुजरा किया है।

इन किसानों की जरूरतों को तरहीज न दे शासक अपने व्यापार और वाणिज्य को बढ़ाने पर ज्यादा ध्यान देते थे। इस को दिखलाने के लिए देउस्कर 'रेल और नहर' अध्याय लिखते हैं। जिसमें उन्होंने महाभारत के प्रसंग का उल्लेख करते हैं।

---

[346] राम-नाम-महिमा, तुलसीदास, कविताकोश से, https://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%AE-%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%AE-%E0%A4%AE%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%AE%E0%A4%BE_/_%E0%A4%A4%E0%A5%81%E0%A4%B2%E0%A4%B8%E0%A5%80%E0%A4%A6%E0%A4%BE%E0%A4%B8/_%E0%A4%AA%E0%A5%83%E0%A4%B7%E0%A5%8D%E0%A4%A0_5

[347] सखाराम गणेश देउस्कर, 'देश की बात', बाबूराव विष्णु पराड़कर(अनु.), 2005(दू. सं.), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृष्ठ:99

"महाभारत के सभापर्व में देवर्षि नारद महाराज युधिष्ठिर से पूछते हैं,-

तुम्हारे राजा के किसान तो सुख से दिन बिता रहे हैं न ? कृषकों के घर में बीज और अन्न की कमी तो नहीं है ? राज्य में स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े जलपूर्ण तलाब और सरोवर खोदे तो गए हैं ? वृष्टि की प्रवाह किये बिना खेती काम तो चल रहा ?"[348] यह सवाल महाभारत के हवाले से देउस्कर तत्कालीन ब्रितानी हुकूमत से करते हैं। जिसके लिए नहर और रेल के गुण और दोष को भी उजागर करते हैं। रेल के माध्यम से भारत की सम्पति की हो रही लूट को दादा भाई नारौजी के हवाले से लिखते हैं कि "भारत में रेल के लिए जो रुपया खर्च होता है उसमें फी सैकड़ा 31.50 रुपये विलायत के लौह-व्यवसायियों को मिलता है। इसके सिवाय यहाँ जो 23 परदेशी रेल कम्पनियां हैं, उनके डाइरेक्टरों के दफ्तर इंग्लैंड में हैं, उनके लिए जो भी खर्च होता है वह इंग्लैंड जाता है।... भारतवर्ष में कुल 23 परदेशी रेल कम्पनियाँ हैं। इसके सिवाय सरकार ने भी पाँच रेल पथ बनाये हैं। सरकार ने पूर्वोक्ति परदेशी रेल-कम्पनियों में किसी-किसी को वचन दिया है कि उन्हें इस रेल के काम में जो घाटा होगा उसे सरकार भर देगी। भला इस आग्रह का भी कुछ ठिकाना है !"[349] देउस्कर भारत में ब्रितानी हुकूमत की रेल विस्तार की मंशा को भी उजागर करते है। जिसका उल्लेख ऊपर है। उन्होंने नहर के जगह भारत में रेल के विस्तार से भारतीय कारीगरी और शिल्प में हो रहे बर्बादी को केन्द्र में रखा है। जिसके लिए वे लिखते हैं कि "हिन्दुस्तानी कारीगरी नष्ट होने का सबसे प्रधान कारण अंग्रेजों का अत्याचार और बेहद स्वार्थपरता है। अंग्रेज इस देश में व्यापारी बनिए बनकर घुसे थे। इसीलिए इस देश के व्यापार में अपनी ही प्रधानता बनाने के लिए स्वभाव से ही उनके ह्दय में बलवान इच्छा उत्पन्न हुई थी। इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उन्होंने जैसे बेआइनी और रोएं थर्रानेवाले उपायों से काम लिया था, उन्हें सुनने से सबकी छाती दहल उठेगी।"[350] इसके बाद देउस्कर बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन और उसके व्यापार की शुरुआत की कहानी और इतिहास बतलाते है। इसके बाद पूरे भारत में ब्रितानी हुकूमत से उत्पन्न अव्यवस्था को रेखांकित करते हुए। अंग्रेजों के चरित्र को दर्शाते हैं। "अंग्रेज बनिया हैं। वाणिज्य में वे इतने मस्त रहते हैं कि दूसरे के सुख-दुःख का विचार करने की उन्हें फुरसत ही नहीं मिलती; व्यवसाय में बिना नुकसान हुए उनकी त्योरी कभी नहीं उतरती। सो यदि हमारे बहिष्कार के कारण विलायती वाणिज्य की हानि

[348] वहीं, पृष्ठ: 112

[349] वहीं, पृष्ठ 113

[350] वहीं, पृष्ठ: 137

हो तो, उसका कारण ढूंढ निकालने की ओर उनकी सहज ही प्रवृति होगी, इसमें संदेह नहीं।"[351] देउस्कर ने ब्रितानियों की हर चाल-चलन का उल्लेख सहजता से किया है।

इस पुस्तक में अनुवाद सम्बन्धी और टंकड़ सबंधी गलतियों को छोड़ दिया जाये तो सखाराम गणेश देउस्कर ने एक मुकम्मल इतिहास पुस्तक की रचना की है। यह पुस्तक राजा और प्रजा दोनों की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक मानसिकता के साथ भारतीय समाज में रह रहे सभी वर्गों की परिस्थितियों का मुकम्मल और प्रमाणिक साक्ष्यों के माध्यम से शासन से सवाल करती है।

---

[351] वहीं पृष्ठ 256

देश की बात : देवनारायण द्विवेदी

'देश की बात' पुस्तक को देवनारायण द्विवेदी ने 1928-29 में हिंदी में लिखी थी। इस अपनी पुस्तक और सखाराम गणेश देउस्कर की पुस्तक (देश की बात) को एक साथ जोड़कर देखने की आवश्यकता को लेकर देवनारायण द्विवेदी ने लिखा है कि "यह मेरी कृति नहीं; वास्तव में यह स्वर्गीय पं. सखाराम गणेश देउस्कर महोदय की कृति है- क्योंकि उन्हीं महानुभाव का मन-मुग्ध-करी-गुन्थम-चातुरी की अविकल नकल करने का मैंने दुस्साहस किया है। तज्जन साहित्य-वाटिका में से जिन महानुभावों एवं पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों के रंगबिरंगे विचार पुष्पों को चुनकर मैंने अपनी विचारमाला की पुष्टिकी है, उनका मैं चिर कृतज्ञ हूँ। यदि पाठकगण इसे पसंद करेंगे, तो मैं इसका द्वितीय खण्ड निकालकर माला को दोलड़ी बनाने का शीघ्र प्रयत्न करूँगा।"[352] इससे सखाराम गणेश देउस्कर के प्रति देवनारायण द्विवेदी का प्रेम और सम्मान भी झलकता है। द्विवेदी ने अपने इस पुस्तक का मूल लेखक देउस्कर को माना है। दोनों ही पुस्तक के अध्यायों के नामकरण में भी बहुत हद तक समानता दिखती है। यहाँ तक कि देउस्कर अपने पुस्तक का प्रथम अध्याय 'हमारा देश' में भारत की प्राकृतिक सौन्दर्य की बात करते हैं। वहीं द्विवेदी भी अपनी पुस्तक के प्रथम अध्याय 'उपक्रम' में भारत की प्राकृतिक सुन्दरता की बात करते हैं। वे लिखते हैं कि "जो देश पहले स्वर्ग से भी अधिक शांतिपूर्ण, रम्य और आनंददायक था, जिसने सारे संसार में पहले-पहल सभ्यता और शिक्षा का प्रचार किया था । अहा, इस पुस्तक में उसी देश की झलक है, जिस देश की वृक्ष-लता, पत्र-पुष्प-विलक्षण उद्यान-भूमि, गगनस्पर्शी पर्वत-मालाएँ, गिरिराज के समान ऊँची लहरें लेता हुआ नीलाम्बुपूर्ण अथाह समुद्र, स्वापदों से भरा हुआ गहन कानन, ताल-तमाल-नारिकेल परिवेष्टित ग्राम और ऋषि-मुनियों की वेद-मंत्रों से गूंजती हुई कुटियों के स्मरण-मात्र से हृदय भर आता है। जिस देश के गौरव की विजयपताका भूमंडल में फहरा रही थी, जिस देश की सुरम्य भूमि प्रकृतिदेवी का क्रीड़ा-स्थान, धर्मतत्व-प्रसूता, शस्य-श्यामला, धन-धन्य-सम्पन्नता और रत्न-गर्भा थी, समय के फेर में निर्धन हुई...।"[353] द्विवेदी यहीं नहीं रुकते हैं। उन्होंने भारतीय साहित्य, शिल्प और संस्कृति सौंदर्य का भी उल्लेख किया है। जिस प्रकार सखाराम गणेश देउस्कर ने अपनी पुस्तक में भारत का क्षेत्रफल और जनसंख्या को दर्शाया है। उसी प्रकार देव नारायण द्विवेदी ने भी भारत का क्षेत्रफल और जनसंख्या को इंगित किया है।

---

[352] देवनारायण द्विवेदी, 'देश की बात, मैनेजर पाण्डेय (सं.), 2012(प्र. सं), स्वराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण की प्रस्तावना से '

[353] वहीं, पृष्ठ: 25

देवनरायण द्विवेदी की पुस्तक के अगले अध्याय में ब्रितानियों के आगमन से पूर्व भारत का व्यापारिक सम्बन्ध भी दिखलाया गया है। जिसके सन्दर्भ में वे लिखते हैं कि "ईसवी सन के सात-आठ सौ वर्ष पहले सुपाराबंदर, भड़ौच और वैविलोनिया के साथ हिंदुस्तान का व्यापारिक सम्बन्ध था और उक्त देशों से भारत खासी रकम पैदा करता था। डाक्टर साईस महाशय ने तो प्रमाणों द्वारा यहाँ तक सिद्ध कर दिखाया है कि सन-ईसवी के तीन हजार वर्ष पहले भी भारत और असीरिया के बीच व्यापारिक सम्बन्ध था। हिंदुस्तान से बना हुआ पक्का और कच्चा माल वहां जाता था और उसके बदले में भारत मूल्यवान धातुएँ सोना-चाँदी आदि पाता था; यद्यपि कुछ माल असीरिया का भी भारत में आता था पर बहुत कम। History of Commerce में प्रोफेसर 'डे' ने ईसा से साढ़े तीन हजार वर्ष पहले चीन और भारत से अंधाधुन्ध व्यापार होने का उल्लेख किया है। प्रो. विल्किसन ने लिखा है कि मिश्र के दो हजार वर्ष के प्राचीन मकबरों में भारतीय नील और अन्यान्य वस्तुएँ अभी तक पायी जाती हैं।"[354] देवनारायण द्विवेदी की पुस्तक में ये आकड़े कोई हवा में नहीं दिया गया है। इसके पीछे भारतीय व्यापार सम्बन्धों को कम करके आँकने की बहस कार्य कर रही थी। जिसका ऊपर चर्चा की गई है। भारत पर तमाम विदेशी आक्रमणकारियों ने हमले किये और भारत को लूटने की कोशिश की। जिसके लिए वे लिखते हैं "यदि हम देश के लुटेरों का ही थोड़ा-सा दिग्दर्शन करा दें तो देश के धन का पता चल जायेगा। महमूद गजनवी ने सत्रह बार चढ़ाइयां केवल तीस वर्ष के भीतर की थीं। केवल नगरकोट का मंदिर लूटकर वह सात सौ मन चाँदी और बीस मन जवाहरात अपने देश ले गया था। मथुरापुरी पर चढ़ाई करके वह छ: सोने की प्रतिमाएँ और उनके शरीर पर के ग्यारह बहुमूल्य रत्न ले गया था। भारतीय शिल्पकारी की कुशलता का पता सुराष्ट्र प्रायद्वीप के दक्षिण में स्थापित सोमनाथ की मूर्ती से लगता है।"[355] जिसे विदेशी इतिहासकारों ने भी लक्षित किया है। चीनी यात्री फाहियान और पटना में सम्राट अशोक का बनवाया हुआ महल की स्थिति देख उसकी प्रतिक्रिया इस प्रकार थी "अशोक ने अवश्य ही इस महल को देवताओं से बनवाया होगा। इसकी ऊँची-ऊँची दीवारें, भव्य फाटक और चौखट बनाना मनुष्य का काम नहीं।"[356] उसी के आस-पास नादिरशाह और तैमूरलंग ने हमला किया, लेकिन भारत में उनको ज्यादा सफलता नहीं मिली। परन्तु इन्होने भारत को खूब लूटा था। मुग़ल राजाओं के समय भारत की आर्थिक दोहन को जहाँगीर जीवन-वृतांत के हवाले से उन्होंने दर्शाया है। "जब-जब प्रधान सेनापति मानसिंह मेरे पिता अकबर

---

[354] वहीं, पृष्ट : 28

[355] वहीं, पृष्ठ: 30

[356] वहीं, पृष्ठ:31

से भेंट करने जाता था तब-तब उसको अट्ठारह रुपयों की भेंट देनी पड़ती थी। मानसिंह को एक वर्ष में कम-से कम दो बार अवश्य मुलाकात करनी पड़ती थी। जहाँगीर के रनिवास का और उसका नौकराना खर्च सुनने लायक है। इस मद में उसे पन्द्रह करोड़ बारह लाख रूपये प्रतिवर्ष खर्च करने पड़ते थे। नूरजहाँ के साथ ब्याह करने पर उसे केवल जवाहरात और चालीस दाने मोती का एक हार खरीदने के लिए सात करोड़ बीस लाख रुपये देने पड़े थे।"[357] इसी तरह मुग़ल बादशाहों ने खूब धन खर्च किये और संरक्षित भी। जिसे प्रजा की जरुरत पड़ने पर उनको रक्षार्थ दिया जाता था। अकबर के समय में खाद्य पदार्थों का मूल्य लगभग इस प्रकार था

गेहूँ	1 रुपये का	135 सेर
जौ	"	202 सेर
चावल	"	80 सेर
चीनी	"	29.25 सेर
घी	"	15.25 सेर
तेल	"	64 सेर

[358]

इससे मुगलों के शासन काल में भारत की खाद्य पदार्थों पर किसी तरह का संकट नहीं था। इसीलिए समाज में चोरी जैसी घटनाएँ भी नहीं थी। ईमानदारी और सच्चाई के बारे में देवनारायण द्विवेदी ने हावेल का एक उद्धरण प्रस्तुत किया है "इस जिले में यदि किसी आदमी को रुपयों की अथवा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं की थैली मिल जाती है, तो वह उसे किसी पेड़ पर लटका देता है और उसकी सूचना निकटवर्ती पहरा देनेवाले को दे देता है।"[359] इस तरह भारतीय समाज में आराजकता दिनों-दिन बढ़ती गई।

इसी आरजकता को बतलाने के लिए देवनारायण द्विवेदी ने अगला अध्याय 'भारत के नाश का कारण' लिखा। इस अध्याय में उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी की शुरुआत कैसी हुई और किस प्रकार भारत दरिद्र होता गया। इसको दिखलाने की कोशिश की गई है। लेकिन उससे पहले जितने आक्रमणकारियों ने भारत का धन लूटने की कोशिश की "भारत की काया-पलट का मूल कारण धन की लालसा है। क्योंकि यदि इतिहास उठाकर देखा जाय तो यही पता चलता है कि यदि दारा, सिकंदर, शकों, यूनानियों और तुर्कों ने सहस्त्रों मील की यात्रा तय करके भारत पर हमले किये, तो धन

---

[357] वहीं, पृष्ठ 32

[358] वहीं, पृष्ठ 32

[359] वहीं, पृष्ठ: 33

के लिए ; महमूद ने चढ़ाइयां कीं, तो धन के लिए; मुहम्मद गोरी ने के भारी तूफ़ान लाकर उत्तर भारत के राजाओं को सिंहासन से उड़ा दिया, तो धन के लिए; लंगड़ा तैमूरलंग बाज की भांति झपटा, तो धन के लिए; अहमदशाह और नादिरशाह ने धूम मचायी, तो धन के लिए; और यदि मुगलों, पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों ने भारत में खून-खराबी और जूते की बजार गर्म की, तो केवल धन ही के लिए। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि भारत की बर्बादी का मूल कारण धन की लालसा ही है।"[360] यहीं धन की लालसा अगले अनगिनत वर्षों तक जारी रहा। इसके बाद सोलहवीं-सत्रहवीं सदी अंग्रेजों ने भी भारत में व्यापार के उद्देश्य से ही 'ईस्ट इंडिया कंपनी' को लेकर आया थे। लेकिन प्लासी की लड़ाई 1757 ई. ने उनके उद्देश्यों को जाहिर कर दिया। "सोलहवीं शताब्दी में भारत को सोने की खान जानकर व्यापार करने के लिए पोर्चुगीज़, डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज लोग पहले-पहल यहाँ आये थे। अंग्रेजों का पहला व्यापारीय समुदाय जो भारत में आया वह 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के नाम से प्रख्यात हुआ। भारतीय शासकों ने विदेशी समझकर अंग्रेजों पर दयालुता दिखायी, और अंग्रेज लोग कूटनीति से काम लेने लगे। शुरू में इनकी पूँजी सतहत्तर हजार पौण्ड अर्थात उस समय में सात लाख रुपये की थी। कुछ दिनों तक बम्बई, सूरत, मद्रास आदि स्थानों में व्यापार करने के बाद सन 1690 में कंपनी ने कलकत्ता में जमीन खरीदकर वहीं पर अपने व्यापार का अड्डा जमाया। अंत में सन 1757 की पलासी की लड़ाई जीतने के बाद अंग्रेजों के राज्य का खम्भा जमा।"[361] और यहीं खम्भा भारत पर दो सौ सालों तक राज किया। इसी राज ने भारत की आर्थिक स्थिति को इतनी चोट पहुंचाई कि भारत दुनिया का सबसे दरिद्र देश बन कर सामने आया। "अंग्रेजी शासन से भारत के जितने अनिष्ट हुए हैं उनमें भारतवासियों के गौरव, शिल्पज्ञान और वीरत्व का लोप जाना उल्लेख योग्य है। स्थापत्य- विद्या, इंजीनियरिंग, साहित्य-रचना-कौशल सब धीरे-धीरे लोप हो रहे हैं। आजकल यह हालत हो गयी है कि यद्यपि भारत के ही कारीगरों ने काशी के समान सुन्दर नगरी बसायी है, तंजोर के कृत्रिम सरोवर खोदे हैं और भारतीय कवियों ने ऐसे काव्य रचे हैं, जिन्हें आज भी बहुत देर और बहुत दिन तक पढ़ने और सुनने पर लोग ऊबते नहीं, तथा जिन्होंने, इंग्लॅण्ड में कवि टेनिसन अपनी रचना से लोगों को जितना मुग्ध कर सके हैं, उससे अपने देशवासियों को कहीं अधिक मुग्ध किया है, तथापि भारतवासी अंग्रेजों को यह विश्वास नहीं होता कि यह सब बातें भारतवासी कर सकते हैं।"[362] इसी कथन को ध्यान में रखते हुए उपनिवेशवादी इतिहास लेखन का प्रोजेक्ट

---

[360] वहीं, पृष्ठ :35

[361] वहीं, पृष्ठ : 36

[362] वहीं, पृष्ठ : 40

और खासकर भारत की बौद्धिक इतिहास को देखें तो दिलचस्प होगा। इसीलिए टाम्स मनरो ने लिखा कि "अंग्रेजों के भारत-विजय से भारतवासियों की उन्नति के अवनति ही होगी।"[363]

इसी अवनति से भारतीय उद्योग-धंधे चौपट हो रहे हैं। इसको नष्ट करने के लिए भारतीय कारीगरी को चौपट किया जा रहा है, और तमाम गैरकानूनी और ह्रदय विदारक उपक्रम की सहायता लिया जा रहा है। भारत के बाजार को ठप करके ब्रिटेन के बाजार बढ़ाया जा रहा है। "हिंदुस्तान का सूती और रेशमी माल (सन 1813 तक) ब्रिटेन में इंग्लैंड के बने हुए माल के मुकाबले में 50 या 60 प्रति सैकड़ा कम दाम पर बेचा जा सकता था और इसीलिए विलायती माल की रक्षा के लिए 70 से 80 तक प्रति सैकड़े भारत के माल पर कर लगाना आवश्यक प्रतीत हुआ। यदि ऐसा न किया जाता और भारतीय माल के रोकने के लिए यह कर न लगाया जाता तो पेसली और मैनचेष्टर के कारखाने प्रारम्भ ही से बंद हो गए होते और भाप की शक्ति से भी शायद ही फिर चले होते। भारत की कारीगरी का नाश करके ही भाप की शक्ति से काम करनेवाले कारखाने खोले गए हैं या जिलाए गए हैं। यदि भारत स्वतंत्र होता, तो वह इसका बदला चुकाता और ब्रिटिश माल के रोकने के लिए वह भी कर लगाता तथा इस तरह अपने उद्योग-धंधों को नाश होने से बचा लेता। भारत को आत्मरक्षा का अवसर बिलकुल ही नहीं दिया गया। वह विदेशियों की दया का भिखारी था। ब्रिटिश माल बिना किसी प्रकार के करके उस पर लादा गया और विदेशी कारीगरों ने राजनीतिक अन्याय के शस्त्र का अवलंबन कर भारत के उद्योग-धंधे को नीचे पटक दिया। अंतत: उसकी बराबरी में खड़ा न हो सकने के कारण भारत की कारीगरी का गला घोंटा गया।"[364] मुगलों से शासन हथियाने के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने सूरत, मद्रास जैसे भारत के कई रेशमी उद्योग को अंग्रेजी हुकूमत ने नष्ट कर दिया। मुर्शिदाबाद के खजाने को जिस प्रकार बंदरबाट किया गया, और भारतीय जन को दरकिनार किया गया। जिस प्रकार मुग़ल बादशाहों के साथ अन्याय किया गया। उसका नज़ीर देवनारायण द्विवेदी ने पेश किया "उस समय मुगल बादशाह औरंगजेब से इनकी नीचता छिपी न रही। उसने क्रोध में आकर इन विदेशी लुटेरे व्यापारियों को देश से निकाल बाहर करने की आज्ञा दी। आज्ञा होते ही अंग्रेज लोग खदेड़े गए और उनके नौकर जेल में भरे गए, मछलीपट्टम और विजगापट्टम आदि की व्यापारी कोठियाँ अंग्रेजों से छीन ली गयीं। अंत में बहुत ही गिड़गिड़ाकर डेढ़ लाख रुपये जुर्माना देने पर उन्हें छुटकारा मिला। औरंगजेब ने समझा की अंग्रेज लोग अब काफी हानि सह चुके हैं, अंत: अब वे सिर ऊँचा नहीं कर सकेंगे। इस तरह औरंगजेब के पोते से अंग्रेजों ने अनेक उपायों से

---

[363] वहीं, पृष्ठ : 36

[364] वहीं, पृष्ठ :42

इस देश में बेरोकटोक व्यापार करने का अधिकार प्राप्त कर लिया।"[365] अंग्रेजों का इसी तरह का विवरण प्रतिबंधित हिंदी नाटकों में भी है। भारतीय वस्तुओं पर बेवजह कर को बोझ बनाया गया। इस पर देवनारायण द्विवेदी कुछ इस प्रकार दर्शाते हैं "मालावार प्रान्त से क्यालिको नामक छींट का कपड़ा पहले विलायत बहुत जाता था। सन 1676 ई. में पहले-पहल विलायत में इस कपड़े के बनाने का कारखाना स्थापित हुआ। सन 1700 और 1761 में पार्लमेंट द्वारा इस आशय के कानून पास किये गए कि किसी प्रकार की छींट तथा अन्य प्रकार के छपे हुए कपड़े न तो यहीं बनाये जावें और न बिना रोक-टोक भारत से ही आने पावें। इसके सिवा छींट पर फी गज के लिए तीन पेंस यानि डेढ़ आना टैक्स भी लगाया गया। दो वर्ष बाद पार्लमेंट ने विलायती जुलाहों की प्रार्थना पर क्यालिकों छींट का टैक्स दूना यानी हर गज पर तीन आना कर दिया। सन 1720 ई. में कानून बना कि, जो लोग विलायत में हिंदुस्तानी बेचेंगे, उन्हें बीस पौंड (150 रु.) और जो खरीदेंगे उन्हें 50 रु. जुर्माना होगा।"[366] इस तरह के बेवजह जुर्माना से भारतीय कपड़ा उद्योग और कारीगरी नष्ट हो गई।

अंग्रेज भारतीयों और भारतीय समाज को हमेशा असभ्य और चोर कहकर सम्बोधित करते थे। उनलोगों की नजरों में भारतीयों का कोई सम्मान नहीं था। जबकि उनके अधिकारी और अलबेरुनी ने कहा कि "हमें भारतवर्ष में एक भी मनुष्य झूठ बोलता नजर नहीं आया। यहाँ के मामूली से मामूली मनुष्य के चेहरे पर भी अद्भुत कांति और महानुभावता दिखायी पड़ती है। संसार में इसकी बराबरी दूसरा कोई भी देश नहीं सकता।"[367] देवनारायण द्विवेदी इसमें 'अंग्रेजों की संगति के प्रभाव से हम लोगों के वे सब गुण जाते रहे।' जोड़ते हैं। इससे पहले दादाभाई नारौजी ने भी यही बात कही थी। अकसर ब्रितानी यहाँ हिन्दू–मुस्लिम विभेद की बात करते थे। उनका मानना था कि भारत में जाति और धर्म को लेकर बहुत खाई थी। लेकिन देउस्कर और देवनारायण द्विवेदी ने इसकी पड़ताल की है और लिखा है कि "अकबर के 414 मनसबदारों की कुल संख्या 609 थी। प्राय: मनसबदारों के बराबर अधिकार प्राप्त राजकर्मचारियों की संख्या आजकल भारत में सब मिलाकर 2,317 से कम नहीं है। पर इनमें भारतीयों की संख्या केवल 92 है, जोकि एक तरह से नहीं के बराबर है। निज़ाम बहादुर बहादुर के राज्य में एक हजार और उससे अधिक वेतन के 43 पद थे जिनमें 22 मुसलमान, 11 श्वेतांग, 7 हिन्दू और 3 पारसी थे। यहाँ के प्रधामंत्री महाराज कृष्णप्रसाद थे। आपको सोलह हजार रुपये

[365] वहीं, पृष्ठ 42

[366] वहीं, पृष्ठ :47

[367] वहीं, पृष्ठ : 54

मासिक मिलता था। अंग्रेजी शासन में सबसे ऊँचा पद पार्लमेंट का है, उसमें एक भी भारतीय नहीं। कितने आश्चर्य की बात है कि जिस पर शासन करना है और जिसके लिए कानून बनाना है, उसका एक भी प्रतिनिधि कानून बनाते समय उसका गुण और दोष सुनानेवाला न रहे।"[368]

शासन की इसी अव्यवस्था की वजह से जहाँ एक तरफ उद्योग-धंधे चौपट हो रहे थे वहीं दूसरी तरफ किसानों का पतन भी हो रहा था। एक तरफ किसान मौसम की मार की वजह से फसल की कम पैदवारी झेल रहे थे वहीं दूसरी तरफ उनकी अंग्रेजी कर उनका खून चूसने जैसा था। मुगलों के शासन के बनिस्बत अंग्रेजी शासन में किसानों पर कर का बोझ मनमानी थोपा गया। देवनारायण द्विवेदी ने आर.सी. दत्त को उद्धृत करते हुए लिखते हैं " हिन्दू और मुसलमानों के समय में प्रजा से जो कर लिया जाता था, इस विदेशी राज्य में उनसे अधिक लिया जाता है। आगे चलकर आपने दिखलाया है कि, सन 1793 से 1822 ई. तक सरकार ने बंगाल के जमींदारों से कर के रूप में 90 रु. और भारत में 80 रु. प्रति सैकड़ा वसूल किया है। मुगलों के समय में भी कर तो इतना ही था, पर वे जितना कर बिठाते थे, उतना कभी वसूल नहीं करते थे। किन्तु अंग्रेज जो कर बिठाते हैं वह कौड़ी-कौड़ी वसूल कर लेते हैं। बंगाल के अंतिम नवाब ने सन 1764 में अर्थात अपने राज्य के अंतिम वर्ष में प्रजा से 81 लाख 75 हजार 5 सौ 30 रुपये वसूल किये थे। पर बंगाल, बिहार और उड़ीसा का राज्य पाकर अंग्रेजों ने ऐसी कठोर नीति का अवलम्बन किया कि सन 1794 ई. में कर का परिणाम 268 लाख रुपया हो गया। 1802 में अवध में नवाब से अंग्रेजों को इलाहाबाद तथा कई जिले मिले। मुसलमान नवाब के समय इन जिलों पर भूमिकर 1 करोड़ 35 लाख 23 हजार 4 सौ 70 रुपये स्थिर किया गया था। इसमें से कितना छोड़ दिया जाता था, इसका ठीक पता नहीं लगता। पर अंग्रेजों ने तीन ही वर्ष में इन जिलों से 16 करोड़ 8 लाख 23 हजार 90 रुपये की वार्षिक आय कर ली। सन 1887 में महाराष्ट्र राज्य अंग्रेजों के हाथ लगा। उसी जमीन से अंग्रेज लोग 1 करोड़ 50 लाख वसूल करने लगे।"[369] इस कर के वजह से ही किसान बेकारी और भूख जैसी समस्याएं किसानों के साथ जुड़ता जा रहा था। कर की प्रताड़ना ऐसी थी कि "कर चुकाने के लिए उस समय कितने ही लोगों को अपनी गोद के प्यारे बच्चों को भी बेचना पड़ा था। जो किसान कर नहीं दे सकते थे, वे पिंजड़े में बंद कर कड़ी धूप में रख दिए जाते थे। नवाब ने इन अत्याचारों को देखकर सन 1779 में कलकत्ते के गवर्नर जनरल के पास एक अति करुणापूर्ण पत्र लिखा। उसमें आपने लिखा कि, 'खर्च बहुत ज्यादा बढ़ जाने के कारण प्रजा पर कर का बोझ अधिक लादा गया है।

[368] वहीं, पृष्ठ 60

[369] वहीं, पृष्ठ: 69

हर साल बाकी बढ़ता ही जा रही है। मुझे अब आपकी सेना की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। इससे कर की आय घट गयी है और सरकारी कामों में गड़बड़ मच गयी।"[370] यह उद्धरण कोई भारतीय का नहीं बल्कि अंग्रेज का ही है। इसी कर और व्यापारियों के लूट का विरोध करने पर मुगलों के साथ अमानुषिक अत्याचार किया गया। जिसका सीधा असर भारतीयों के प्रति व्यक्ति आय पर पड़ रहा था। जो लगभग 14 रु. तक आ पहुंचा था। और इंग्लैंडवासियों की प्रति व्यक्ति आय 4,500 रु. थी। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि भारत को किस प्रकार अंग्रेज लूट रहे थे। भारतीय कारीगर और किसानों की आवश्यकताओं को तरजीह न देते हुए अंग्रेज अपने हित को हमेशा ध्यान में रखते थे। जिस प्रकार सखाराम गणेश देउस्कर ने 'रेल और नहर' को लेकर ध्यान दिलाया अंग्रेज रेल को आवश्यक क्यों मानते थे। इसी बात को देवनारायण द्विवेदी ने भी दोहराया है।

देवनारायण द्विवेदी की इस पुस्तक के शुरुआत में कविता ('आर्त-पुकार' शीर्षक से)और अंत में एक कहानी है। जिसमें वे लिखते हैं "फूल खिला था। बुलबुल उसकी ख़ूबसूरत और मुलायम पंखड़ियों को छू-छूकर गाती थी। गुलची आया; बुलबुल डर के मारे उड़ी और फूल के इर्दगिर्द चक्कर लगाने लगी। गुलची ने निहायत बेरहमी से फूल तोड़ लिया। उसकी पंखड़ियों को भी अलग-अलग करके टोकरे में फेंक दिया। बुलबुल चीखी-चिल्लायी पर बेसूद। आखिर बुलबुल बेहोश होकर गिर पड़ी और फूल के पास ही तड़प-तड़पकर मर गयी।"[371] यहीं भारतीय जनता की स्थिति है। यह कहानी एक परिवार की है जो भारत की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील है। लेकिन उसे जेल हो जाती है। उसकी पत्नी पूरी कहानी को आगे बढ़ाती है। कविता भी कुछ इसी तरह है –

"इतना हमें सताते, संतोष फिर न पाते;
पैशाचिकी कलाएं नित ही नयी दिखाते ॥
व्याकुल विरक्त रोआँ-रोआँ कलप रहा है;
बस मृत्यु के लिए ही जीवन तड़प रहा है ॥"[372]

---

[370] वहीं, पृष्ठ 72

[371] वहीं, पृष्ठ :207

[372] वहीं, पृष्ठ: 20

उपसंहार

आठरहवीं सदी में ज्ञान और तर्क की जमीन पर खड़ा यूरोप वर्चस्व और दमन की ओर अग्रसर होने लगा था। इसी सदी के यूरोप में कानून और शिक्षण सम्बन्धी संस्थानों पर सर्वाधिक ध्यान दिया जा रहा था। यह सदी फ्रांसीसी क्रांति और औद्योगिक क्रांति के लिए भी जाना जाता था। एक तरफ फ्रांसीसी क्रांति ने पूरी दुनिया में बदलाव की लहर पैदा की वहीं दूसरी तरफ औद्योगिक क्रांति ने उत्पादित वस्तुओं के लिए बाज़ार की खोज शुरू करने का अभियान चलाया जिसके लिए एशिया और अफ्रीका के भूभागों को मुफ़ीद माना गया और इसे ही 'सभ्यीकरण' की मुहीम माना गया जिसे संस्थानों के माध्यम से संचालित किया जाने लगा।

भारत में अंग्रेज बाज़ार की तलाश में आये थे। लेकिन सत्रहवीं सदी के भारत में क्षेत्रीय राजाओं का राज था। अंग्रेजों को एक राज से दूसरे राज में व्यापार करने के लिए अनुमति की जरूरत पड़ती थी। इस वजह से उनके लिए भारत एक खुला बाज़ार नहीं साबित हो पा रहा था। खुले व्यापार के लिए अंग्रेज लगातार प्रयत्नशील थे। इसके परिणामस्वरूप 1757 का प्लासी युद्ध हुआ और अंग्रेजों ने बंगाल पर कब्जा कर लिया। जैसा कि ऊपर इंगित किया गया है कि अठारवीं सदी के यूरोप में शिक्षा और कानून सम्बन्धी संस्थानों का उदय हो चुका था। इन्हीं संस्थानों के माध्यम से यूरोप की जनता और समाज को नियंत्रित करने का कार्य शुरू हुआ था। इसके परिणामस्वरूप संस्थानिक या संवैधानिक 'प्रतिबंध' नामक 'नियंत्रण यंत्र' का उदय हुआ। लेकिन यूरोप में इससे पहले प्रतिबंध और लिखे या बोले जाने पर सज़ा नहीं होती थी। ऐसा नहीं था, चौदहवीं सदी के यूरोप में गैलीलियो का प्रसंग उदाहरण के लिए मुफ़ीद है। लेकिन सम्राट ऑगस्तस (27ई. पूर्व- 14 ई.) पहला ऐसा शासक था जिसने लिखने और बोलने के लिए दंडित करना शुरू किया। भारत में भी अंग्रेजी हुकूमत ने अपने शासन को स्थापित करने के लिए प्रतिबंध का सहारा लिया जो अपने क्रूर रूप में 1867, 1878, 1898, 1910 के प्रेस सम्बन्धी एक्ट के रूप में सामने आया। लेकिन इससे पहले 1780 में जेम्स अगस्तस हिक्की का अख़बार 'बंगाल गजट' और 1791 में 'बंगाल जर्नल के संपादकों, पाठकों और विज्ञापन दाताओं के साथ व्यवहार को भी रोक से जोड़ा जा सकता है। इस पत्र के पाठकों की तलाशी की गई और उनके यहाँ से प्राप्त पत्रों को जब्त कर लिया गया। विज्ञापन दाताओं को विज्ञापन देने से मना किया गया।

यह सब अंग्रेजी राज और प्लासी के युद्ध के बाद शुरू किया गया। लेकिन भारत में इससे पहले भी प्रतिबंध फाँसी की सज़ा का प्रवधान था। ऋग्वेद में ज्ञान को रोकने का प्रतिरोध किया गया है। इसके अलावा बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य और गार्गी का प्रसंग इसका उदहारण है। इसी तरह जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन या दुनिया की सभी सभ्यताओं में अभिव्यक्ति को लेकर बहुत छूट नहीं थी। भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सम्बन्धित अधिनियमों को 1799 में समाचार पत्रों का पंजीकरण आवश्यक किया गया। इसे सम्पादक समुदाय के लिए ‘आचार-संहिता’ के रूप में देखा गया। यह एक्ट केवल समाचार पत्रों पर लागू होता था। इसलिए भारतीय लेखकों और सम्पादकों ने अपनी बात जनता तक पहुँचाने के लिए लेखन के अन्य माध्यमों मसलन- पैम्फलेट, भाषणों और पुस्तकों के रूप को इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। इसे दबाने के लिए अप्रैल 1807 को गवर्नर-जनरल (लार्ड मिंटो) ने सभी सार्वजनिक सभाओं को प्रतिबंधित करने का आदेश दिया। 1813 में लार्ड हेस्टिंग्स ने जब गवर्नर जनरल का पदभार ग्रहण किया। उसके बाद भारत में प्रेस सम्बन्धी कानूनों में ढील मिली। 1823 में लार्ड हेस्टिंग्स का कार्यकाल खत्म हो गया और जॉन एडम्स ने गवर्नर-जनरल का पद ग्रहण किया। इसने एक बार फिर से प्रेस सम्बन्धी स्वतंत्रताओं को नियंत्रित करना शुरू किया। उसने ‘जहाजरानीसम्बन्धी सूचनाओं’, ‘विक्रयों के विज्ञापन’, ‘वस्तुओं के मौजूदा मूल्य’ या व्यापारिक महत्व की सूचनाओं को छोड़, बाकि सभी प्रकार के मुद्रण और प्रकाशन के लिए मुख्य सचिव द्वारा हस्ताक्षरित गवर्नर जनरल-इन कौंसिल से लाइसेंस हासिल करना अनिवार्य कर दिया। इसी प्रेस एक्ट ने 1878 की पूर्व-पीठिका तैयार की। लेकिन 1835 में चार्ल्स मेटकाफ ने सभी कानूनों को रद्द कर। केवल प्रकाशन स्थान को प्रकाशक द्वारा सूचित करना अनिवार्य माना। यह अंतिम गवर्नर-जनरल था जिसने अन्य गवर्नर-जनरलों के बनिस्बत प्रेस के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया था। इसके बाद के सभी गवर्नर जनरलों ने प्रेस पर कड़े प्रतिबंध लगाये। इन प्रतिबंधों के लिए निम्न वर्गीकरण को अमल में लाया गया था –

1. तत्कालीन राजनीति पर सामान्य टिप्पणी
2. क्रांति और हिंसा के लिए आह्वान
3. सेना को सम्बोधन
4. सिख समुदाय के लिए सम्बोधन
5. छात्रों से अपील

6. हिन्दू-विरोधी विषयों

7. मुसलिम-विरोधी विषयों

8. गाय सुरक्षा

9. भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास

10. भारत के बाहर की क्रांतियाँ

11. बम नियमावली

12. सेनानियों की जीवनी

इन सभी विषयों से सम्बन्धित रचनाओं और पुस्तकों को प्रतिबंधित किया जा रहा था। इसके बाद इनके लेखकों को धारा -124 ए, 153 ए और 505 के तहत दंडित किया जा रहा था। इन कानूनों को लेकर एक तरफ अंग्रेज शासकों में एकता नहीं थी वहीं दूसरी तरफ भारतीय समाज सुधारक भी इन कानूनों का प्रतिरोध कर रहे थे। लार्ड हेस्टिंग्स ने माना कि "मैं सहज रूप से इस बात को मानाता हूँ कि प्रकाशन की स्वतन्त्रता मेरी प्रजा का स्वाभाविक अधिकार है।" वहीं राजा राम मोहन राय ने लिखा कि "प्रत्येक अच्छे शासक को, जो मानव प्रकृति की कमियों को समझता है और जो समस्त विश्व के शाश्वत पालक के प्रति श्रद्धा रखता है, अपने विशाल साम्राज्य की गतिविधियों के संचालन में होने वाली त्रुटियों के प्रति महान जवाबदेही के प्रति सजग होना चाहिए और इसलिए उसे प्रत्येक व्यक्ति को उन सभी मामलों को उसकी निगाह में लाए जाने के लिए सर्वसुलभ माध्यम उपलब्ध कराने के प्रति सचेत रहना चाहिए, जिसमें उसके हस्तक्षेप की आवश्यकता हो इस महत्वपूर्ण उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जो एकमात्र प्रभावकारी माध्यम अपनाया जा सकता है, वह है- प्रकाशन की अबाध स्वतन्त्रता।"

आठरहवीं सदी के बाद का यूरोप ने जो 'सभ्यीकरण'का अभियान दुनिया के दूसरे देशों पर प्रयोग के तौर पर शुरू किया। उसे मिशेल फूको के शब्दों में 'बायो-पावर' कहा जा सकता है। फूको ने 'बायो-पावर' को परिभाषित करते हुए कहा कि 'सभ्यता के इतिहास में यह पहली बार हुआ है कि मनुष्य के अस्तित्व से जुड़े हुए कुछ विशुद्ध वैज्ञानिक मसले जैसे प्रजातियाँ, नस्ले, प्रजनन, जनसंख्या इत्यादि भी राजनीतिक हस्तक्षेप के इलाके बन गए हैं, जैविक-शक्ति का दूसरा पहलू मनुष्य की देह से सम्बन्धित है।' मिशेल फूको ने यह बात अपनी पुस्तक 'डिसिप्लिन एंड पनिश : द बर्थ ऑफ़ प्रिजन' कही है। यह पुस्तक यूरोप में आधुनिक युग में हुए दंड व्यवस्था में परिवर्तन को दर्शाता है। इसी पुस्तक

में उसने कहा है कि मध्ययुगीन यूरोपीय दंड व्यवस्था को यातना देकर मारती थी । वहीं उसने आधुनिक व्यवस्था को कैद या कारागार में रखकर उनका आत्मा परिवर्तन करने को एक भयानक नियंत्रण कहा है। वह कहता है कि 'एक मूर्ख शासक अपने दासों को लोहे की जंजीरों में बाँध सकता है लेकिन एक सच्चा राजनीतिक उन्हें अपने विचारों की श्रृंखला में जकड़ता है।'[373] इसी वर्चस्ववादी रवैये का रेखांकन 1928 में प्रकाशित 'चाँद के फाँसी अंक' में भी किया गया है। जिसमें राजा और सेना की शक्ति के व्यवहारों की तुलना उनकी स्वीकृति और वर्चस्व पर आधारित थी।

औपनिवेशिक काल के लोक साहित्य और जन साहित्य का गहन अध्ययन करने पर शिष्ट साहित्य पर प्रेस एक्ट के प्रभाव को देखा जा सकता है। प्रेस एक्ट के प्रभाव के कारण जहाँ शिष्ट साहित्य में कई सारी शैलियाँ और विषय-वस्तु के स्तर पर कई तरह के अंतर्विरोध दिखाई देते हैं वैसा लोक साहित्य में कम ही दिखाई देता है। हालाँकि ,आर्थिक शोषण और देशोन्नति के मुद्दे पर शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य एकमत दिखाई देता है। यहाँ आर्थिक शोषण की पहचान गहरे रूप में देखने को मिलती है।

1857 को आमतौर पर आज भी बहुत सामान्य ढंग से सिपाही विद्रोह के रूप में याद किया जाता है। प्रतिबंधित हिंदी कविताओं को केंद्र में रखकर देखने से जहाँ एक तरफ विद्रोह के निहितार्थ समझ में आते हैं , वहीं दूसरी तरफ ब्रिटिश साम्राज्य की गहरी साजिश का भी पता चलता है। ये कवि 1857 के साथ जलियांवाला बाग नरसंहार, काकोरी कांड और चौरा-चौरी को बार बार याद करते हैं। इन गीतों से सम्बंधित एक महत्वपूर्ण बात यह है कि 'अन्य भाषाओं के गीत भी देवनागरी लिपि में लिखे गए थे। पंजाबी, बांग्ला के अधिकांश गीत देवनागरी लिपि में लिखे गए थे।'[374] हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में पहली चीज़ तो यह ध्यान में रखनी चाहिए कि साहित्य के इतिहास में गीतों के ऐतिहासिक महत्व पर कोई संतोषप्रद बात नहीं होती है। दूसरी बात यह है कि अन्य भारतीय भाषाओं को हिन्दी साहित्य से दूर ही रखा गया है। मसलन हिन्दी को बांग्ला से प्रभावित तो माना जाता है लेकिन पंजाबी और अन्य भाषाओं से हिंदी के सम्बन्ध पर विचार नहीं किया जाता है। प्रतिबंधित गीतों को पढ़ते हुए आश्चर्यजनक रूप से हिन्दी के अन्य भाषाओं से

---

[373] "A stupid despot may constrain his slaves with iron chain; but a true politician bind them even more strongly by the chain of their own ideas; it is at the stable point of reason that he secures the end of the chain; this link is all the stronger in that we do not know of what it is made and we believe it to be our own work; despair and time eat away the bonds of iron and steel, but they are powerless against the habitual union of ideas, they can only tighten it still base of the soundest of Empires", *Michel Foucalt, 'Discipline And Punish : The Birth of Prison', 1991, Penguin, U.K. P. 103*

[374] भूमिका से ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने, सम्पा. रामजन्म शर्मा 2012, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली.

सांस्कृतिक संबंधों का पता मिलता है। प्रतिबंधित गीतों में देश की चिंता इतनी व्यापक है कि भाषाओं की दीवारें टूट कर बिखरती हुई नजर आती हैं।

इन गीतों के माध्यम से गीतकारों ने भारतीय समाज के संघर्ष और उस पर हुए अत्याचारों को गाया है। इन गीतों ने भाषा के बंधन को पीछे छोड़ अपने संगीत के लिए पूरे देश की जनता की कराह को सुना और लिपिबद्ध किया। हम प्रतिबंधित साहित्य का अध्ययन करते हैं तो यह दिखाई पड़ता है कि उर्दू ज़बान और अदब दोनों कितना देशी थे।

हिंदी साहित्य और कविता के इतिहास में शास्त्रीय रागों की उपेक्षा दिखती है। लेकिन प्रतिबंधित हिंदी कविताओं के कवियों ने अपनी रचनाओं में मुक्ति के गीत को शास्त्रीय रागों में भी गाया है। हिंदी कविताओं में निराला ने शास्त्रीय रागों को अपनी कविताओं में सचेत रूप से प्रयोग किया है। प्रतिबंधित हिंदी कविताओं का कथ्य जुल्मों के दौर में साहस और उम्मीदों के आधार पर बुना गया है। जब देश में स्त्री-पुरुष, बच्चे-जवान और बूढ़े सब पीड़ित हैं। इनके लिए तीनों ही ऋतुएं उत्पीड़न की ऋतुएं हैं। गरीबी और भूखमरी से जनता एक तरफ अंग्रेजी हुकूमत से उत्पीड़ित है। वहीं दूसरी तरफ साम्प्रदायिक ताकतों ने भी अपने पैर फैला दिए। जिससे उन्हें अनेक स्तरों पर संघर्ष करना पड़ रहा है।

हिंदी कहानी की जब भी बात शुरू होती है तो अकसर नई कहानी आन्दोलन से पहले की कहानियों को पृष्ठभूमि के बतौर ही ग्रहण किया जाता रहा है। हिंदी कहानी हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं (मसलन – कविता और नाटक) के बनिस्बत आधुनिक विधा है। इसे एक साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित होने के लिए मशक्कत करनी पड़ी।

अब तक ज्ञात जानकारी के अनुसार 54 कहानियों को अंग्रेजी दमन झेलना पड़ा और उन्हें प्रतिबंधित किया गया। लेकिन हिंदी साहित्य के इस दमन को और भी मजबूत आधार उस समय प्रदान किया गया जब अपने साहित्यिक प्रतिमानीकरण से इन रचनाओं को बाहर कर इतिहास लिखना आरम्भ किया गया। आधुनिक हिंदी साहित्य खासकर 1947 तक का भारतीय भाषाओं के साहित्य को अधिकतर उपनिवेशवाद के खिलाफ लिखा हुआ साहित्य माना जाता है। लेकिन औपनिवेशिक मन का सबसे अधिक प्रकोप झेलने वाला साहित्य, साहित्यिक और ऐतिहासिक

प्रतिमानीकरण से बाहर है। भारतीय साहित्य और इतिहास भारतीय समाज के विकास प्रकिया को संघर्ष के नज़रिए से देखता है। इसी भारतीय समाज ने सामन्तवाद को ठुकराया उपनिवेशवाद को ठुकराया और अब पूंजीवाद से संघर्ष कर रहा है। इस समाज ने आधुनिकता, नवजागरण, राष्ट्रवाद, जाति मुक्ति और लैंगिक मुक्ति सम्बन्धी संघर्षों और आन्दोलनों से पूरी दुनिया के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने की कोशिश की है। इतिहास लेखन के बदलते दृष्टिकोण और सवालों को उठाने के लिए अलग-अलग दृष्टियों से इतिहास लिखने की कोशिश हुई।

प्रतिबंधित हिंदी कहानियाँ भारतीय समाज के दर्द और इतिहास के दर्द को अपने अंदर समेटे हुई हैं। 19 वीं सदी के मध्य के बाद भारत में मुक्ति के स्वर सबसे ज्यादा प्रखर रूप में गूंजे और 1857 इसके विद्रोह के रूप में सामने आया। प्रतिबंधित कहानियों में स्त्रियां परदे से निकलकर देश की आज़ादी के लिए हर स्तर पर लड़ती दिखाई देती हैं। प्रतिबंधित कहानियों में रूस को जारशाही से मुक्त कराने भी पुरुषों के साथ स्त्रियाँ जाती हैं, और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर संघर्ष करते दिखाया जाता है।

जातिगत श्रेणी बद्धता अब तक के भारतीय समाज का सार्वभौमिक प्रश्न है। भारतीय समाज सदियों से जाति विभाजित समाज रहा है। 1936 में अम्बेडकर का 'जाति-उन्मूलन' (Anhilation of Cast) इस समस्या का ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। हालाँकि अम्बेडकर से पूर्व महात्मा बुद्ध और ज्योतिबा फुले सामाजिक क्षेत्र में इस समस्या की शिनाख्त और खतरे की तरफ बहुत मजबूती से इशारा कर रहे थे। साहित्य में सिद्ध-नाथों, कबीरदास, रैदास और आधुनिक काल में स्वामी अछूतानन्द हरिहर और हीरा डोम जैसे जाति विरोधी रचनाकार तो हुए लेकिन 19 वीं सदी के अंत में आधुनिकता का जो प्रोजेक्ट शुरू हुआ उसमें जाति की समस्या को उजागर करने वालों में स्वामी अछूतानन्द और हीरा डोम ने ही हिंदी क्षेत्र में जाति विरोधी अभियान को जारी रखा। लेकिन यहाँ एक ध्यान देने लायक बात यह है कि आधुनिकता का प्रोजेक्ट का मूल निहितार्थ रूढ़िवादिता और जड़ता से मुक्ति था। यह मुक्ति आधुनिकता के मूल निहितार्थ के हिसाब से हिंदी क्षेत्र में कुंद सी महसूस होती है। क्योंकि आदिकाल से भक्तिकाल- जो घोर सामन्ती काल के रूप में जाना जाता है, जाति से मुक्ति की छटपटाहट आधुनिक काल के बनिस्बत अधिक प्रखर मालूम पड़ती है। मसलन सिद्ध-नाथ हों या कबीर या रैदास। हालाँकि स्वामी अछूतानन्द और हीरा डोम के साथ और इनके बाद भी प्रेमचंद ने इस समस्या को बेहद संजीदगी से उठाया। महात्मा बुद्ध ने धर्म को जाति समस्या का प्रमुख उपकरण है का संकेत बहुत पहले ही कर दिया था। फिर बाद में अम्बेडकर ने भी धर्म को जाति समस्या का प्रमुख आधार माना। 1936

में उन्होंने ‘जाति उन्मूलन’ लिखकर इसका तर्क प्रस्तुत किया। ठीक उसी दौर में थोड़ा पहले 1923 और 1931 में ‘अछूत समस्या’(1923) और ‘मैं नास्तिक क्यों हूँ’ (1931) भगत सिंह ने दो लेख लिखकर इन अमानवीय समस्याओं की तरफ इशारा कर दिया था। प्रेमचंद ने ‘ठाकुर का कुआँ’ तथा कुछ और कहानियां इसी दर्द को बयां करने के लिए लिखी थी। ‘ठाकुर का कुआँ’ कहानी में अम्बेडकर द्वारा जाति की समस्याओं की शिनाख्त को बखूबी पहचाना गया है। इस कहानी में दमित या पिछड़े हुए तबके को पानी पीने के लिए उच्च तबके के कुआँ से पानी लेने की मनाही थी। इसे पानी की समस्या का रूपक बनाकर भारतीय समाज के वीभत्स रूप को प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य में सामने रख दिया था। इस कहानी को ध्यान में रखते हुए हमें अम्बेडकर द्वारा 1927 में किये गये पानी के लिए महाड़ आन्दोलन को देखना पड़ेगा। जिस तरह से सार्वजनिक कुओं और तालाबों से अछूत कही जाने वाली जातियों को पानी लेने का अधिकार नहीं था। इस परम्परा को नष्ट कर सबको पानी लेने के अधिकार के लिए अम्बेडकर ने सत्याग्रह किया।

भारतीय सभ्यता मूलतः किसानी आधारित सभ्यता रही है। प्रतिबन्धित कहानियां इस किसानी सभ्यता के दमन से आहत हैं। इस सभ्यता को बचाने के लिए प्रतिबंधित कहानियां रूस के साम्यवादी व्यवस्था से प्रेरणा लेने की वकालत करती हैं।

उसी प्रकार प्रतिबंधित हिंदी कहानियों का अध्ययन करने से ऐसा महसूस होता है कि 1857 के प्रथम जन आदोलन के साथ सम्पूर्ण स्वतन्त्रता आन्दोलन के केंद्र में भी सामन्ती और साम्राज्यवादी दोनों ही जड़ताओं के खिलाफ आन्दोलन था। कम-से-कम प्रतिबन्धित हिंदी कहानियों के गहन अध्ययन से यह बात सिद्ध हो जाती है। इसके अध्ययन और साहित्य के साथ सामाजिक इतिहास में भी राजनैतिक, सामाजिक इतिहास में वृद्धि की गुंजाइश बनेगी। हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रतिबंध कालगत और विषयगत दोनों ही स्तर पर पुनर्रचना की सम्भावना बनेगा। इस प्रकार प्रतिबंधित हिंदी कहानियों को हिंदी साहित्य में जगह देने से हिंदी साहित्य के इतिहास पर तो असर पड़ेगा ही साथ ही कहानी विधा का इतिहास भी समृद्ध होगा।

प्रेमचंद की प्रतिबन्धित कहानियों का अध्ययन और विचार करने पर हमें भारत में साम्राज्यवादी दौर में दमन का इतिहास तो पाते ही हैं परन्तु प्रेमचंद अपनी कहानियों के माध्यम से यह भी दिखलाने की कोशिश करते हैं कि कैसे भारतीय सामन्तवाद और पितृसत्ता एकसाथ मिलकर भारतीय समाज का दमन कर रही थी।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की प्रतिबंधित कहानियां भारत में साम्राज्यवाद की पोल तो खोलती-ही-खोलती हैं साथ ही साथ यह भी दिखलाती हैं की भारत में साम्राज्यवाद सामंतवाद के साथ कैसे समझौता किये हुआ है। उग्र यह भी दिखलाने की कोशिश करते हैं कि किसी भी समाज पर बाहरी शासन तभी सम्भव है। जब चली आ रही आंतरिक शासन व्यस्था से जनता उब न जाये। तब साम्राज्यवाद उसको लालच दिखाकर अपने साथ लेती है और शासन करती है।

मुनीश्वरदत्त अवस्थी का कहानियों को पढ़ते और मनन करने पर ऐसा आभास होता है कि मुनीश्वरदत्त अवस्थी को कहानी या साहित्य लेखन का कार्य करने नहीं बैठे थे। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से यह दिखलाने की कोशिश की है कि, अंग्रेजी हुकूमत के दौर में भारतीय समाज की हकीकत क्या थी, और उससे पहले की हकीकत क्या थी ? आजादी को कैसे हासिल किया जाना चाहिए और किसके लिए आजादी ? इन्ही सब चीजों के स्पष्ट करने के लिए वह रूस, आयरलैंड और भारत के क्षेत्रीय राज्य और उसके राजा के बारे में लिखते हैं। इस लेखन के दौरान वे इन राजाओं की खामियों को भी सीधे तौर पर उल्लेख करते हैं।

हिंदी नाटक 19वीं सदी के मध्य से ही असल रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र इसके प्रथम स्तम्भ के रूप में हमारे सामने आते हैं। प्रतिबंधित हिंदी साहित्य और नाटकों पर संवाद करना उनसे जुड़ी स्मृतियों को और ताज़ा कर देने जैसा है। प्रतिबंधन के मानदंड में अंग्रेजी सरकार ने निहित ही किया था कि स्वतन्त्रता आन्दोलन से सम्बन्धित महानायकों और अंग्रेजी राज की करतूतों पर लिखी रचना प्रतिबन्धित की जाएगी। प्रतिबंधित हिंदी नाटकों में अंग्रेजी सरकार द्वारा निषेधित विषयों को बखूबी चित्रित किया गया है।भारतेंदु के उपरांत हिंदी नाटक की गति थोड़ी धीमी दिखायी पड़ती है। 20वीं सदी के आरम्भ के एक दशक बाद जयशंकर प्रसाद ने हिंदी नाटकों को फिर से उँचाई प्रदान करने की कोशिश की। भारतेंदु और प्रसाद दोनों ही हिंदी नाटक के उत्स-गर्भ भी हैं और समृद्धि भी।

भारत में प्रथम नाटक 'नील दर्पण' (1860, बँगला), जिसके लेखक दीनबंधु मित्र थे, प्रतिबंधित हुआ। इसे 1876 में प्रतिबंधित कर दिया गया। इसके बाद ड्रेमेटिक परफॉर्मेन्सेज कन्ट्रोल एक्ट 1876 के तहत भारी मात्रा में नाटक प्रतिबंधित किये गए । 'नील दर्पण' नाटक नील की खेती करने वाले किसानों के उत्पीड़न पर आधारित है।

साहित्यिक विधाओं में नाटक सर्वाधिक सम्प्रेषणीय विधाओं में से एक है। इसी सम्प्रेषणीयता की वजह से शासकीय दमन और शोषण को नाटक उजागर अपने अभिनेयता और मंचन के माध्यम से करता है। अंग्रेजी राज में

भारी मात्र में नाटक लिखे और मंचित तो हुए, लेकिन अंग्रेजी सरकार के दमनात्मक रुख की वजह से प्रकाशित न हो सके। यहाँ तक स्वतंत्र भारत में भी नाटक और नाटककारों का इतना प्रभाव था कि सफदर हाशमी जैसे नाटककारों को हत्या को गले लगाना पड़ा।

प्रतिबंधित नाटक 'कुली-प्रथा' को 1916 में प्रकाशित होते ही सरकार ने जब्त कर लिया। इसके लेखक लक्ष्मण सिंह हैं, जो प्रसिद्ध कवयित्री सुभद्रा कुमरी चौहान के शौहर थे। यह नाटक भारतीय मजदूरों की व्यथा है, जिन्हें पैसा, सुख और भगवान का लालच दिखा कर विदेशी द्वीपों पर मजदूरी के लिए ले जाया गया, और वहाँ की स्थिति का वर्णन है। ऐसा माना जाता है कि 1843-1920 के बीच एग्रीमेंट के तहत फिजी, गयाना, त्रिनिदाद, मारीशस, सूरीनाम और नेटाल ले जाये गए मजदूरों को गिरमिटया मजदूर कहा जाता है। कुली बना ले जाने की प्रथा से भारतीय समाज आतंकित था। जिसका चित्रण इस नाटक में भी मिलेगा। लेकिन इस भयावह समस्या को देखते हुए उस समय के प्रमुख रचनाकारों ने अपने लेखन में इस प्रथा की खामियों को उजागर किया। इसमें तोताराम सनाढ्य माखनलाल चतुर्वेदी और प्रेमचंद इत्यादि प्रमुख थे। 'जख्मी पंजाब' जलियांवालाबाग हत्याकांड जनरल डायर, रोलैट एक्ट मार्शल लॉ जैसी अंग्रेजों की दमनात्मक नीति के साथ तिलक, गाँधी जैसे महानायकों द्वारा हो रहे प्रतिरोधों पर केन्द्रित है।

प्रतिबंधित नाटकों का विषय स्त्रियों का गुलामी के दौर में किया गया चौतरफा दमन है। जब शक्तिशाली सत्ता एक कमजोर सत्ता को अपने चंगुल में ले लेती है तो लैंगिक उत्पीड़न को अपनी बुनियादी शर्त मान लेती है। भारत में उपनिवेशवादी शासन के दौरान स्त्रियों पर किया गया अत्याचार उसका माकूल उदहारण है। 'कुली-प्रथा' नाटक में भी इंस्पेक्टर (पात्र) कुंती (पात्र) का यौन शोषण करना चाहता है। और जख्मी पंजाब में भी जलियांवालाबाग में लाशें गिराने के बाद दो फौजी महिला के यौन शोषण पर उतारू हो जाते हैं। वहीं 'कुली-प्रथा' में कुंती इंस्पेक्टर की तमाम कोशिशों और लुभावन के बावजूद बलात्कार का प्रतिकार कर नदी में कूद कर मरने का चयन करती है। यह समय 1916 का है और हिंदी साहित्य के इतिहास का छायावाद युग शुरू भी नहीं हुआ था। इस तरह के विषय भारतीय सामाजिक इतिहास में नवजागरण की देन मालूम पड़ते हैं।

प्रतिबंधित हिंदी नाटक कला और शिल्प के लिहाज से भले ही कमजोर हों पर इतिहास बोध इन नाटकों का बहुत मजबूत पक्ष है। "मूल्यों तथा तथ्यों की परस्पर निर्भरता तथा क्रिया-प्रतिक्रिया के माध्यम से ही इतिहास में प्रगति की उपलब्धि की जाती है। वस्तुनिष्ठ इतिहासकार वह इतिहासकार है जो इस अन्योन्याश्रित प्रक्रिया में अत्यंत गहरे

उतरता है।"[375]इन रचनाओं और रचनाकारों का अर्जित-सृजित मूल्यबोध इनकी तह में उतरकर ही समझा जा सकता है। रचनाकारों के खिलाफ दमनकारी कार्यवाहियाँ और रचनाओं को ज़ब्त करने की मुहिम, इस सच के निर्विवाद प्रमाण हैं कि प्रतिबंधित साहित्य में अपने समय और समाज के प्रति न सिर्फ सक्रिय चिंता थी बल्कि उनमें मुखालफत का वह साहस भी था जो मृत्यु को महज एक शब्द मानता है।

भारत में इतिहास को लेकर कई नजरिये मौजूद हैं, और विकसित भी किये जा रहे हैं। लेकिन इतिहास की तटस्थ अवलोकन अभी नहीं के बराबर हुआ है। जिसके कारण प्रतिबंधित पुस्तकों में मौजूद भारतीय उपनिवेशवाद की परतें अभी तक पूर्णत: खुल नहीं पाई हैं। इतिहास किसके लिए और उसे आगे कैसे बढ़ाना है ? जैसी बात उपनिवेशवादी युग के इतिहास में महत्वपूर्ण सवाल है ! जिसे प्रतिबंधित इतिहासकार और गैर प्रतिबंधित, और उपनिवेशवाद के बाद का इतिहास पुस्तकों को लेकर देखने पर गहरा अंतर्विरोध दिखाई पड़ता है। एक तरफ प्रतिबंधित इतिहासकार समाज के हर एक अंग को ब्रिटिश हुकूमत से प्रभावित मानते हैं। वहीं दूसरी तरफ दूसरे तरह के लेखकों के सामने केवल अस्थाई ढांचा ही महत्वपूर्ण है। 1857 के बाद भारत में सत्ता परिवर्तन हुआ। 1858 में 'ईस्ट इंडिया कंपनी' से सत्ता महारानी विक्टोरिया के हाथों में आ गई थी। इस सत्ता परिवर्तन से भारत में आधुनिकता का पैमाना तय हो रहा था। और कहा जा रहा था कि फंला नहीं आए गए होते तो भारत में आधुनिकता नहीं आई गई होती ! लेकिन इस आधुनिकता का थर्मामीटर आधुनिक बनने वाला समाज का हिस्सा नहीं था। वह केवल अनुमान लगा रहा था कि भारत ये नहीं है, वो नहीं है ! देउस्कर ने इसका भी जवाब पेश किया कि कुल मिलाकर भारत की सत्ता और जन-अधिकारों को अपने हाथों और मिटाकर आधुनिकता की तलाश उपनिवेशवादियों को उपनिवेश कायम रखने का कारगर हथियार था।

नवजागरण और आधुनिकता का प्रथम चरण शिक्षा का व्यापक प्रसार है। जो माना जाता है कि भारत में सुव्यवस्थित और शुरूआती शिक्षा अंग्रेजी हुकूमत के दौर में शुरू हुई। उससे पहले की शिक्षा कर्मकांड आधारित और मध्ययुगीन संस्कारों को लिए हुई थी। इस सन्दर्भ में हमें देउस्कर की धारणा को सामने रख अंग्रेजी शिक्षा नीति के मर्म को समझने की कोशिश करनी चाहिए। देउस्कर ने अंग्रेजी हुकूमत की शिक्षा नीति की पड़ताल उसके तह में जाकर किया। अब फिर प्रश्न है कि भारत में हम जिस आधुनिकता और मुक्ति की बात करते हैं, और बराबर अंग्रेजी हुकूमत का शुक्रगुजार होते हैं। उसके डेढ़ सौ सालों के शासन में 88 प्रतिशत जनता निरक्षर है।

---

375. ई.एच. कार, इतिहास क्या है, अंग्रेजी से अनुवाद: अशोक चक्रधर, 2016, trinity publisher new delhi, पृष्ठ 112

एक बात जो भारतीय सन्दर्भ में उठानी जरुरी है। वह यह कि भारत में किसी भी विभीषिका को ईश्वर प्रदत्त मानकर नजरंदाज कर दिया जाता है। इसी प्रकार की विभीषिका को हम 'अकाल' और 'प्लेग' आदि के नाम से जानते हैं। ये विभीषिका उसी दौर की हैं जब भारत में मुक्ति के नाम पर हुकूमत लूट और दमन को अंजाम दे रही थी। लेकिन याद रहे कि भारतीय इतिहास में 1943-44 का बंगाल के अकाल का जिक्र खूब होता है। जिसमें 30 लाख लोग मरे थे। लेकिन उससे पहले भारत में अकाल और प्लेग का जिक्र भी नहीं मिलता। देउस्कर ने इन सभी अकालों और प्लेगों को अंग्रेजी हुकूमत की लूट की वजह बताया है।

विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी पुस्तक में 1857 से सम्बन्धित घटनाओं के विवरण के साथ उस संघर्ष की रणनीति के केंद्र में रखा है। इन्होनें ने 1857 को वर्चस्वादी तरीके से भारत का शासन अंग्रेजों द्वारा अपने हाथों में ले लेना कहा। जिसके लिए भारत का प्रत्येक तबका और प्रत्येक प्रान्त प्रतिरोध कर रहा था। सावरकर ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 1857 को सिपाही विद्रोह की जगह स्वतन्त्रता की पहली लड़ाई बताया था। लेकिन इनकी इतिहास दृष्टि एकांगी और हिंदूवादी विचारों से प्रेरित थी। इन पर बाद में अंग्रेजों से माफ़ी मांगने का भी आरोप लगा।

1909 में महात्मा गाँधी ने 'हिन्द स्वराज्य' लिखी। जिसको 1938 तक अंग्रेजी सरकार ने प्रतिबंधित रखा। यह पुस्तिका एक यात्रा के दौरान लिखी गई थी। जिस प्रकार देउस्कर और देवनारायण द्विवेदी और सुंदरलाल आदि ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता को अंग्रेजी लूट और दमन के बनिस्बत तरज़ीह दी। उसी प्रकार गाँधी ने भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अपनी इस पुस्तिका के केंद्र में रखा । महात्मा गाँधी की यहाँ चिंता अंग्रेजी हुकूमत से उत्पन्न भारतीय समाज, संस्कृति और सभ्यता का संकट है। जहाँ एक तरफ गुलामी की जंजीरें भारत के उद्योग-धंधे, एकता और विरासत को चौपट करने पर तुली हुई थीं। वहीं दूसरे तरफ धार्मिक उन्माद का माहौल भी तेज था। यही बात सखाराम गणेश देउस्कर और देवनारायण द्विवेदी भी कहते दिखते हैं। धार्मिक उन्माद हमारी सभ्यता और संस्कृति दोनों के लिए हानिकारक था। जिसे वे अंग्रेजों की देन मानते थे।

रेल को आधुनिकता का प्रतीक माना गया। लेकिन देउस्कर, गाँधी और द्विवेदी तीनों ही लेखकों ने इस रेल को भारत के लूट का प्रतीक माना। देउस्कर और द्विवेदी ने रेल की जगह नहर और नदियों को सुदृढ़ करने पर जोर दिया। प्रतिबंधित पुस्तकों में जिसे आज हम आधुनिकता का प्रतीक मानते हैं उन्हें हुकूमत के नजरिये के विरुद्ध देखने की कोशिश की गई है।

इस पृथ्वी का अधिकांश हिस्सा ऐसा रहा है। जो किसी न किसी तरह गुलामी की जंजीरों से बंधा हुआ था। इन जंजीरों को टूटने और तोड़ने वालों का इतिहास मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव ने लिखा है। हिंदी में जब 1934 में यह पुस्तक लिखी गई, तब दुनिया की मुक्ति का इतिहास हिंदी पाठकों के सामने न होगा। इस पुस्तक की नवजागरण से सम्बंधित अध्ययन के लिए उपयोगिता है। इसमें छत्तीस पराधीन देशों के स्वतन्त्रता आन्दोलन की कहानी समाहित है।

'भारत में अंगरेजी राज' पुस्तक के प्रथम खंड में भारत पर हुए सभी विदेशी हमले को ऐतिहासिक क्रम में विवेचित किया गया है। वहीं दूसरे भाग में भारत में सत्ता संघर्ष या युद्धों का विवरण है। इस प्रकार नवजागरण और आधुनिकता दोनों ही 'मुक्ति' और 'ज्ञान' से सम्बंधित है। जिसे "हेबरमास मुक्ति की अवधारणा को संवाद और संप्रेषण की स्थिति से जोड़ते हैं। वे कहते हैं कि यह सच है कि आधुनिकता औद्योगिक समाज में उपयोगिता मूलक तर्क पद्धति का वैयक्तिक जीवन पर नियंत्रण बढ़ता गया है , फिर भी एक जीवन जगत (life world) है, जो चेतना और सम्प्रेषण की कार्यवाई का इलाका है। हेबरमास के पूर्ववर्ती कार्य का एक बड़ा हिस्सा इसी 'जीवन जगत' के ढांचे को व्याख्यायित करने से जुड़ा हुआ है। इसमें वे भाषा, सम्प्रेषण की कार्रवाई और नैतिक चेतना के आपसी सम्बन्धों को तलाशते हैं। वे कहते हैं कि समस्त जीवन जगत मुक्ति के सरोकारों से जुड़ा हुआ है। केवल एक कुतर्क से भरी विकृत भाषा ही इसे समझने में व्यवधान खड़ा करती है। हेबरमास का आदर्श वाक्य है 'सारे सामाजिक जीवन का मूल आधार मुक्ति की कामना है।'"[376] हेबरमास का सम्प्रेषण और संवाद ही प्रतिबन्धित इतिहासकारों का संवाद है। जो वे हुकूमत से करते है मुक्ति के लिए।

भारत में पैंफ्लेट को तत्कालिक मान कर अनदेखा कर दिया जाता है। लेकिन अंग्रेजों द्वारा 1799 के एक्ट के बाद पैम्फलेट की भूमिका भारतीय समाज में उजागर हुई। सेनानियों द्वारा जनता को सम्बोधित और अपनी बात को अधिक से अधिक लोगों तक आसानी से पहुँचाने के इस माध्यम का प्रयोग किया। यह पैम्फलेट कई मायनों में खास होता था। जैसा कि इस शोध के पहले अध्याय में दिखलाया गया है कि अंग्रेजी हुकूमत प्रतिबंधित पुस्तकों को पकड़ने के लिए प्रत्येक प्रान्त में सी.आई डी. की व्यवस्था की थी। शासन के तन्त्र से बचने के लिए पैम्फलेटों को छुपाना आसान था। दूसरा इनकी छपाई में खर्च अधिक नहीं होते थे। जॉर्ज ऑरवेल ने अपने लेख 'पैम्फलेट लिटरेचर' में पैम्फलेट की

[376] विजय कुमार, अँधेरे समय में विचार, 2010, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ : 68

साहित्यिक मान्यता पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, झूठ और प्रोपेगेंडा के लिए उपयोगी माना है । उसने लिखा की 'इतिहास के छेदों को भरने के लिए पैम्फलेट एक रूप है ।'[377] भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान पैम्फलेटों का शीर्षक जनता को ध्यान में रखकर दिया जाता था । जैसे – 'अब कब तक', 'किसान भाइयों के प्रति', 'पुलिस कर्मचारियों' से अपील इत्यादि । ये पैम्फलेट कई बार गीत और गजलों को प्रकाशित करने के लिए भी इस्तेमाल किया जाता था । इसका पोस्टर रूप ('दो माई के लाल', 'भविष्य दर्शन', 'भगत के विचित्र भेंट' इत्यादि)भी प्रकाशित किया जाता था । इन पोस्टरों में मुख्य रूप से शहीदों की तस्वीरें, चित्रकारी और देश की दुर्दशा का रेखांकन किया गया है । इसके अलावा इश्तेहार और सेना की तस्वीरें भी होती थीं । अभी हाल ही में प्रकाशित लेख में प्रज्ञा ढ़िटल ने इसे तत्कालीन समय का मल्टीमिडिया[378] कहा है ।

भारतीय और एशियाई समाज में फाँसी और दंड से सम्बन्धित साहित्य और इतिहास के लिए फ्योदोर दोस्तोयेव्स्की का 1866 में प्रकाशित उपन्यास का नमूना आज भी दिया जाता है या उथले ढंग से इस विषय को भगत सिंह और उनके सथियों के हवाले कर दिया जाता है । लेकिन चाँद का प्रतिबंधित अंक 'फाँसी अंक' को आज भी आम पाठक से दूर रखा गया है । इस अंक में फाँसी से सम्बन्धित भारतीय से लेकर यूरोपीय प्रणाली का पाठ किया गया है । इसके आलावा 'कुली प्रथा ' नाटक में सेठ (सरकारी दलाल) 'प्रेस एक्ट को मजबूत करने का पक्षधर है । वहीं कहानियों में भी लेखक की कलम को लेने की चाह के साथ उसकी मृत्यु का रहस्य हुकूमत की पोल खोलता है । कविताओं में हिन्दी-उर्दू दोनों कवियों ने फाँसी और प्रतिबंध सम्बन्धी कानूनों को कोसते नजर आते हैं । 'होवे चुप इतिहास लगे सच्चाई को चाहे फांसी'[379] वहीं लोक गीतों में भी इसी चिंता को जाहिर किया गया है (इससे पहले सब अखबारें जालिम ने दीं बंद कराय ।/ प्रेस एक्ट को जारी करके गरदन उनकी दई दवाय।।[380])।

---

377 "For plugging the holes in history the pamphlet is the ideal form". *George Orwell, 'Pamphlet Litrature', 1943,* Access Date: 24.12.2020.https://orwell.ru/library/articles/pamphlet/english/e_pl

378 "Many of these works were multimedia texts, meant to be sung, recited or spoken, and involved an interactive relationship between performer and audience." *Pragya Dhital, 'A look back at banned Indian political pamphlets – and why Orwell may not have approved of them'* Published Date :- 14.12.2020, Access Date: 24.12.2020. https://blogs.bl.uk/asian-and-african/2020/12/plugging-the-holes-in-history-banned-political-pamphlets-in-colonial-india.html

379 मोहर चंद मस्त, 'आज़ादी की देवी', देशभक्ति के गीत, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृष्ठ :6

380 भारत माता के जखमी लाल अर्थात आज़ादी की भेंट, आर. एन शर्मा(संग्रहकर्ता), 1930,रामरिछपाल अवधूत, देहली, पृष्ठ.19

भारतीय इतिहास लेखन की शुरुआत अंग्रेजों के भारत आगमन होने के साथ ही होती है। जेम्स मिल को भारत का प्रथम इतिहास लिखने का गौरव प्राप्त है। इसने 6 खंडों में 'हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया' 1817 में लिखी जिसमें सबसे पहले भारतीय इतिहास का नामकरण किया (हिन्दू युग, मुसलिम युग और ब्रिटिश युग)। इसका सर्वाधिक जोर सरकार के विवेकपूर्ण संचालन और राज्य द्वारा बनाए कानूनों को लागू करने पर था। इसके बाद मैक्समूलर(ए हिस्ट्री ऑफ़ एशिया एंड संस्कृत लिटरेचर, 1859) और विलियम जोन्स ने प्रयास किया। इन सभी लेखकों का केन्द्रीय बिंदु मध्य काल और उस दौर की रचनाएँ थी। इनके पहले भारतीय इतिहास का मूल साक्ष्य शिलालेख और धार्मिक पुस्तकें ही थीं। इसके बाद गार्सा द तासी, शिव सिंह सेंगर और जॉर्ज ग्रियर्सन ने साहित्य का इतिहास लिखने का प्रयास किया। इनके इतिहास लेखन में भारतीय भाषा और लेखकों के महत्व का रेखांकन हैं। 1929 में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' लिखा जिसे व्यवस्थित माना गया। लेकिन इस इतिहास पुस्तक में भी प्रतिबंधित साहित्य का जिक्र तक नहीं मिलता है। बालमुकुन्द गुप्त उन पहले लेखकों में से एक हैं जिन्होंने बीसवीं सदी को 'सिडीशन का युग' कहा और 1907 में इसी शीर्षक से स्वतंत्र निबंध लिखा। 1884 में 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' या बलिया व्याख्यान से इतिहास की धारा को दिशा देने की कोशिश की गई लेकिन उनकी मृत्यु के बाद इस दिशा में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। उसके बाद 1921 में रविन्द्रनाथ ठाकुर ने 'भारतवर्ष में इतिहास की धारा' लिख भारतीय संस्कृति का परिचय दिया। प्रेमचंद ने 1936 में 'महाजनी सभ्यता' लिख देशी और विदेशी दमन का परिचय कराया। यह हिंदी और भारतीय इतिहास लेखन की परम्परा है। लेकिन इस परम्परा में प्रतिबन्धित रचनाएँ और रचनाकारों के प्रतिरोध का अंकन कहीं नहीं मिलता है। इसीलिए सखाराम गणेश देउस्कर और देवनारायण द्विवेदी ने 'देश की बात लिख' भारतीय इतिहास को एक अलग दृष्टिकोण प्रदान किया। इसके बाद महात्मा गाँधी ने भारतीय सभ्यता को भारतीय नजरिये से पेश किया। इन्हीं बदलते इतिहास की धाराओं के साथ 1857 के बाद भारत में राष्ट्र और राष्ट्रीयता की खोज शुरू हुई। उस इतिहास से प्रतिबंधित रचनाओं को बाहर कर देने के बाद उसे तटस्थ, तार्किक और संतुलित नहीं कहा जा सकता।

आधार ग्रन्थ

1. आज़ादी के तारने, राजेश कुमार परती (सम्पादक), राष्ट्रिय अभिलेखागार, जनपथ, नई दिल्ली, 1986
2. ज़ब्तशुदा गीत : आज़ादी और एकता के तराने' रामजन्म शर्मा (सम्पादक), प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 2012
3. देव नारायण द्विवेदी, 'देश की बात', मैनेजर पाण्डेय (सम्पादक), स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
4. नरेश चतुर्वेदी (सम्पादक), चाँद: फांसी अंक, 2014, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
5. बलराम अग्रवाल (सम्पादक), 'सोज़े वतन तथा ज़ब्तशुदा कहानियाँ', साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, 2015
6. भारत माता के जख्मी लाल अर्थात आज़ादी की भेंट, आर. एन शर्मा (संग्रहकर्ता), रामरिथ पाल अवधूत देहली, 1930
7. मधुलिका बेन पटेल, 'प्रतिबंधित हिन्दी कविताएँ : सात क्रांतिकारी ज़ब्तशुदा काव्य संग्रह', स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
8. मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव, 'परधीनों की विजय-यात्रा', मैनेजर पाण्डेय (सम्पादक), स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
9. मोहनदास करमचंद गाँधी, 'हिन्द स्वराज', कलिका प्रसाद (अनुवादक), सस्ता साहित्य मंडल, प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
10. मोहर चंद मस्त, 'आज़ादी की देवी', देशभक्ति के गीत, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
11. रुस्तम राय (सम्पादक), 'प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य खंड -1' राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
12. रुस्तम राय, 'प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, खंड- 02', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
13. विनायक दामोदर सावरकर, '1857 का स्वातन्त्र्य समर', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
14. सखाराम गणेश देउस्कर, 'देश की बात', बाबूराम विष्णुराव पड़ारकर (अनुवादक), मैनेजर पाण्डेय (सम्पादक), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2006
15. सत्येन्द्र कुमार तनेजा, 'सितम की इन्तहा क्या है? सात जब्तशुदा हिन्दी नाटक', राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, 2010
16. सुन्दरलाल, 'भारत में अंगरेजी राज प्रथम खंड', सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2016
17. सुन्दरलाल, 'भारत में अंगरेजी राज, द्वितीय खंड', प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2016
18. स्वामी हरिशंकर 'स्वातन्त्र्य-स्वर', संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1997
19. Sedition Committee Report, Superintendent Government Printing, Calcutta, India, 1918

सहायक ग्रन्थ

1. अजीत पुष्कल और हरिश्चंद्र अग्रवाल (सम्पादक), 'नाटक के सौ बरस', शिल्पायन, दिल्ली, 2001
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', कमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ग्रन्थावली, भाग 03, ओमप्रकाश सिंह (सम्पादक), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2007
5. आशिस नंदी, 'जिगरी दुश्मन : उपनिवेशवाद के साये में आत्मक्षय और आत्मोद्धार', अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
6. ई. एच कार, 'इतिहास क्या है', अंग्रेजी से अनुवाद, अशोक चक्रधर, ट्रिनिटी पब्लिशर, नई दिल्ली, 2016
7. ए. आर. देसाई, 'भारतीय राष्ट्रवाद की समाजिक पृष्ठभूमि', ट्रिनिटी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
8. एदुआर्दो गालेआनो, 'आग की यादें', अंग्रेजी से अनुवाद : रेयाजुल हक़, गार्गी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
9. एडवर्ड सईद, 'वर्चस्व और प्रतिरोध', रामकीर्ति शुक्ल (अनुवादक), नयी किताब, दिल्ली, 2015
10. एरिक हॉब्सबाम, 'पूँजी का युग' वन्दना राग (अनुवादक), संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2009
11. अंतोनियो ग्राम्शी, 'सांस्कृतिक और राजनीतिक चिंतन के बुनियादी सरोकार', कृष्णकान्त (अनुवादक), ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली 2002
12. कार्ल मार्क्स, 'भारत के सन्दर्भ में', अनिल कुमार (अनुवादक), सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, 2012
13. क्रिस हरमन, 'विश्व का जन इतिहास' लाल बहादुर वर्मा (अनुवादक), संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2009
14. गिरीश रस्तोगी, 'हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017
15. गिरीश रस्तोगी, 'बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच' भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004
16. जे. नटराजन, 'भारतीय पत्रकारिता का इतिहास', आर. चेतन क्रांति (अनुवादक), प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली 2002
17. टी. बी. बॉटमोर, 'समाजशास्त्र समस्याओं और साहित्य का अध्ययन', गोपाल प्रधान (अनुवादक), ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, 2004
18. टेरी इगल्टन और फ्रेडरिक जेम्सन, 'लेखक और प्रतिरोध', संतोष चौबे (अनुवादक), मेघा बुक्स, 2008
19. नरेंद्र शुक्ल, 'उपनिवेश,अभिव्यक्ति और प्रतिबंध', अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
20. नरेंद्र शुक्ल, 'भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और प्रतिबंधत साहित्य प्रान्त के विशेष सन्दर्भ में (1907-1935)', नेहरु स्मारक संग्राहलय पुस्तकालय, नई दिल्ली, 2014
21. डॉ. नरेंद्र शुक्ल, 'ब्रिटिश राज और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
22. नामवर सिंह, 'छायावाद', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
23. नामवर सिंह, 'आलोचना और संवाद', आशीष त्रिपाठी (सम्पादक), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
24. न्गुगी वा थ्योंगो, 'औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति' आनंद स्वरूप वर्मा (अनुवादक), ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

25.प्रेमचंद रचना संचयन, निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका (सम्पादक), साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2012
26.फ़िराक गोरखपुरी, 'उर्दू भाषा और साहित्य', उत्तर प्रदेश संस्थान, लखनऊ, 2008
27.बच्चन सिंह, 'हिन्दी नाटक', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
28.बिपिन चन्द्र और अन्य, 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष', हिन्दी माध्यम कर्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2008
29.डॉ. भगवान दास माहौर, '1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव', कॉफ्लुएंस इंटरनेशनल, नई दिल्ली, 2008
30.भारतेंदु समग्र , हेमंत शर्मा (सम्पादक), प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना, वाराणसी, 2002
31.भारतेंदु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली, खंड-6, ओमप्रकाश सिंह (सम्पादक), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008
32.मुक्तिबोध रचनावली खंड-05, नेमिचंद्र जैन (सम्पादक), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986
33.मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, और चंचल चौहान (सम्पादक), 'इतिहास कला और साहित्य', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
34.मोहनदास करमचंद गाँधी, 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास', श्री कलिका प्रसाद (अनुवादक), सस्ता साहित्य मंडल, प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
35.मैनेजर पाण्डेय. 'अनभै साँचा', वाणी प्रकाशन, 2014
36.मैनेजर पाण्डेय, 'लोकगीतों और गीतों में 1857', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली 2015
37.मैनेजर पाण्डेय, 'आलोचना की समाजिकता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
38.मैनेजर पाण्डेय, 'आलोचना में सहमति और असहमति', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
39.मैनेजर पाण्डेय, 'शब्द कर्म', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
40.मैनेजर पाण्डेय, 'भारतीय समाज में प्रतिरोध की परम्परा', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
41.मृत्युंजय, 'हिन्दी आलोचना में कैनन निर्माण की प्रक्रिया', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
42.डॉ. रामविलास शर्मा, 'छायावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि', निबंधों की दुनिया, निर्मला जैन (सम्पादक), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
43.रामविलास शर्मा, 'भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, भाग दो', किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
44.रामविलास शर्मा, 'मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य', अरुणोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1994
45.राणा प्रताप, नयी पीढ़ी के लिए गोर्की प्रेमचंद लू शुन, गार्गी प्रकाशन, दिल्ली, 2018
46.विभूति नारायण राय, 'कथा साहित्य के सौ बरस', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 2015
47.विजय कुमार, 'अँधेरे समय में विचार', संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2010
48.वीरेंद्र कुमार बरनवाल, 'हिन्द स्वराज : नव सभ्यता –विमर्श,' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
49.व्ला. ई लेनिन, 'साम्राज्यवाद पूँजीवाद की चरम अवस्था', व्ला. ई लेनिन, संकलित रचनाएँ, प्रगति प्रकाशन, 1982
50.शम्भुनाथ (सम्पादक), 'सामाजिक क्रांति के दस्तावेज़', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006

51.शाहिद अमीन और ज्ञानेंद्र पाण्डेय (सम्पादक), 'निम्नवर्गीय प्रसंग', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
52.शेखर बंद्योपाध्याय, 'पालसी से विभाजन तक और उसके बाद:आधुनिक भारत का इतिहास', नरेश नदीम, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, 2015
53.सदानंद मिश्र, 'दक्षिणापथ प्रजा और गवर्नमेंट: नवजागरण कालीन पत्रिका'
54.सुमन राजे, 'इतिहास में स्त्री', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2015
55.सुरेन्द्र चौधरी, 'हिन्दी कहानी प्रक्रिया और पाठ', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
56.सुभाष चन्द्र कुशवाहा, 'अवध का किसान विद्रोह 1920 से 1922', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
57.सुभाष चन्द्र कुशवाहा, 'चौरी चौरा', पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2014
58.सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'राग विराग', रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008
59.हरबंस मुखिया, 'भारतीय मुग़ल', तरुण कुमार (अनुवादक), आकार बुक्स, दिल्ली, 2008
60.प्रदीप सक्सेना, (अतिथि सम्पादक), अजेय कुमार, (सम्पादक), उद्भावना, अंक. 138, अक्तूबर-दिसम्बर, 2019 गाज़ियाबाद

अंग्रेजी स्त्रोत

1. Censorship A World Encyclopedia, Volume-2, E-K, Derek Jones (ED.), Fitzroy Dearborn Publication, London, 2001.
2. Chris Baldick, Oxford Dictionary of Literary Terms, New York, 2008
3. Graham Shaw and Mary Lloyd, Publications Proscribed by the Government of India, the British Library, UK. 1985
4. N. Gerald Barrier, 'Banned Controversial Literature and Political Control in British India 1907-1947', Manohar Publisher, 1976
5. Michel Foucault, 'Discipline and Punish: The Birth of Prison', Penguin, UK. 1991

ऑनलाइन स्त्रोत

1. George Orwell, https://orwell.ru/library/articles/pamphlet/english/e_pl.
2. हिंदी समय, http://www.hindisamay.com/.
68. कविता कोश, http://kavitakosh.org/kk/index.php.
4. समालोचन, https://samalochan.blogspot.com/2012/09/blog-post_23html

5. Marxists Internet Archive, https://www.marxists.org/.
6. Mass Comm. & Journalism, https://netjrfmasscomm.blogspot.in/2010/04/major-press-laws-enacted-during-british.html.
7. मोहनदास करमचंद गाँधी, 'सत्य के प्रयोग', PDF, https://www.mkgandhi.org/main.htm.
8. The British Library, https://blogs.bl.uk/asian-and-african/2020/12/plugging-the-holes-in-history-banned-political-pamphlets-in-colonial-india.html.
9. villanova university, https://www.youtube.com/watch?v=YMjxrsHrpnU

Indian Council of Social Science Research

(Ministry of Human Resource Development)
Post Box-10528, ArunaAsaf Ali Marg,
JNU Institutional Area, New Delhi, Delhi 110067
EPABX: 26741849 Fax: 91-11-26741836
Website: www.icssr.org

M.P. Madhukar

Deputy Director

IC Division (In-charge)

File. No. DAC/56/2018-ICS **Dated: 04 02.2019**

Dear Mr. Pandey,

This is regarding your request seeking financial assistance to visit London, UK for the purposes of Data Collection or consulting Archival Material in connection with your research work entitled **"Banned Hindi Literature and Problem of History Writing".**

Your request has been considered by the Expert Committee on Travel Grant and I am pleased to inform you that the Committee has recommended financial assistance for your visit for Data Collection for a period of 14 day. The ICSSR would cover the total cost of the return air fare (economy class) for the sector **Hyderabad-London, UK-Hyderabad** and also visa fee, travels insurance, airport transfer, maintenance for 14 days as per prescribed Government rules. You are requested to submit a travel schedule along with work plan well before the commencement of your visit.

You are advised to travel by Air India as per the Government of India directives and also the air tickets should be purchased through the authorized agency of Government namely M/s Ashoka Tour and Travels, M/s Balmer and Lawrie or IRCTC.

You are requested to kindly submit the following on completion of your visit:

1. Copies of air ticket & fare receipt, Passport, stamped visa on passport, original boarding pass, receipt of visa fees, travel insurance, boarding & lodging, purchase of foreign exchange along with statement of head-wise expenditure incurred on the visit. Any unspent amount on the visit shall be refundable to the Council. While claiming the reimbursement, you are requested to provide information whether you have received any financial support from any other organization on this field visit.

2. A detailed report on the research work done during the visit should be submitted at the time of claiming reimbursement of travel/maintenance. In case of students, the report should be duly forwarded by the Supervisor. A copy of collective data should also be submitted along with the report to the ICSSR.

3. If any publications either through Monographs/Book brought out from the material collected under ICSSR support for data collection, the ICSSR's funding should be duly acknowledged and a copy of the publication should be sent to the ICSSR. In addition to the above, the ICSSR expects faculties/scholars to submit a copy of their final thesis/report/book, etc. with due acknowledgement of the ICSSR.

With regards,

Yours sincerely,

(M.P. Madhukar)

Mr. Ashutosh Kumar Pandey
Ph. D. Scholar, Department of Hindi
University of Hyderabad, Hyderabad

नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
Nehru Memorial Museum & Library
NEHRU MEMORIAL MUSEUM & LIBRARY
तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली – 110 011
Teen Murti House, New Delhi - 110011
Grams : NEHRUMUSUM Phone : 23017599
Fax : +91-11-230115197

Dr. Narendra Shukla
Head Research and Publications Division
Tel# 011-23012974

F. No. HRPD-29/2018-Corres.
26 March, 2019

TO WHOMSOEVER IT MAY CONCERN

This is to certify that **Shri Ashutosh Kumar**, Research Scholar, University of Hyderabad, presented a paper entitled "***स्वाधीनता आंदोलन और प्रतिबंधित हिंदी नाटक***" at the Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi, on Friday, 15 March, 2019.

(Narendra Shukla)

SOAS University of London

Banned Hindi Poetry and Folklore

THIS EVENT IS ARCHIVED

Ashutosh Kumar Pandey (University of Hyderabad)

Date: 24 April 2019 **Time:** 5:00 PM

Finishes: 24 April 2019 **Time:** 7:00 PM

Venue: Paul Webley Wing (Senate House) **Room:** Wolfson Lecture Theatre

Type of Event: Seminar

Abstract

1857 is just not a mere number in Indian history. This was a turning point of Indian society and literary culture particularly of Hindi literature. The Hindi poetry writings of the period threw a light upon the untold stories of struggles of those sons and daughters who participated in the revolt of 1857 in the country. The brutal suppression of revolt and merciless killing of one lakh people in India leads to the end of the company raj and transfer of power to the queen. Subsequent implementation of press act by British Raj played a notorious role in banning many of the Hindi contemporary poetry which had strong sense of anti-colonialism. Bhartendu Harishchandra, was a leading figure in this milieu. His writings called as 'Bharat Durdasha' was not been banned by Raj. In fact his massages had a catastrophic impact on 1857. The metaphors of his poetry can be summed as 'The whole country was reeling under the mindless acts of British empire'. In his writing he made an important comments on British Government, "Angreh raj sukh Saj saje sab bhari/ pay dhan vedesh chali jat ihaii ati khwzari" (There is no use of luxury and happiness if our wealth is draining to the foreign country). The braveries and mourns of the 1857 was very visible in the Hindi folklore as well. In Bhojpuri, the Holi song sung during the festival of Holi used to praise the great warrior of Veer Kunwar Singh and his brave participation in the revolt of 1857. Similarly, queen of Jhansi was another legend of 1857 who fought against the British raj. In her poem Subhadra kumara Chauhan stated that the "khoob ladi mardani wah to Jhansi wali rani thi". There for it was not only the heroes and heroines of modern India were suppressed and jailed by company Raj but also the poems, literature and folk songs which was dedicated to the warriors of 1857were also banned.

The event is free to attend but registration essential. **Click here to register.**

Organiser: SOAS South Asia Institute

Contact email: ssai@soas.ac.uk

Contact Tel: +44 (0)20 7898 4390

ISSN : 2321-5569
मधुमती
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
वर्ष 60, अंक 2- फरवरी, 2020
150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA
राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर
विशेष स्मरण कवि प्रदीप
मूल्य ₹ बीस
1

ऐ मेरे वतन के लोगों

ऐ मेरे वतन के लोगों
तुम खूब लगा लो नारा
यह शुभ दिन है हम सब का
लहरालो तिरंगा प्यारा
पर मत भूलो सीमा पर
वीरों ने है प्राण गँवाए
कुछ याद उन्हें भी कर लो
जो लौट के घर ना आये
ऐ मेरे वतन के लोगों
ज़रा आँख में भर लो पानी
जो शहीद हुए हैं उनकी
ज़रा याद करो कुरबानी

जब घायल हुआ हिमालय
खतरे में पड़ी आज़ादी
जब तक थी साँसें लड़े वो
फिर अपनी लाश बिछा दी
संगीन पे धर कर माथा
सो गये अमर बलिदानी
जो शहीद हुए हैं उनकी
ज़रा याद करो कुरबानी
जब देश में थी दीवाली
वो खेल रहे थे होली
जब हम बैठे थे घरों में
वो झेल रहे थे गोली
थे धन्य जवान वो अपने
थी धन्य वो उनकी जवानी
जो शहीद हुए हैं उनकी
ज़रा याद करो कुरबानी
कोई सिख कोई जाट मराठा
कोई गुरखा कोई मदरासी
सरहद पर मरनेवाला
हर वीर था भारतवासी
जो खून गिरा पर्वत पर
वो खून था हिंदुस्तानी
जो शहीद हुए हैं उनकी
ज़रा याद करो कुरबानी
थी खून से लथ-पथ काया
फिर भी बन्दूक उठाके

दस-दस को एक ने मारा
फिर गिर गये होश गँवा के
जब अन्त-समय आया तो
कह गए के अब मरते हैं
खुश रहना देश के प्यारों
अब हम तो सफ़र करते हैं
क्या लोग थे वो दिवाने
क्या लोग थे वो अभिमानी
जो शहीद हुए हैं उनकी
ज़रा याद करो कुरबानी
तुम भूल न जाओ उनको
इसलिये कही यह कहानी
जो शहीद हुए हैं उनकी
ज़रा याद करो कुरबानी

– कवि प्रदीप

ISSN 2321-5569

मधुमती

वर्ष 60, अंक 2, फरवरी, 2020

UGC Care list Group 'D' Sl.No. 57

प्रधान सम्पादक
विकास सीतारामजी भाले
आई.ए.एस.

सम्पादक
ब्रजरतन जोशी

www.rsaudr.org
email : madhumati.udaipur@gmail.com

मधुमती

वर्ष 60, अंक 2, फरवरी, 2020

UGC Care list Group 'D' Sl. No. 57

प्रधान सम्पादक
विकास सीतारामजी भाले
आई.ए.एस.

सम्पादक
ब्रजरतन जोशी

प्रबन्ध सम्पादक
मो.फुरकान खान

आवरण एवं रेखांकन
आनन्द आचार्य, 9929452644

अंक का मूल्य : 20/-
वार्षिक शुल्क : 240/-
(वार्षिक शुल्क धनादेश, बैंक ड्राफ्ट, एटपार चैक या नकद एवं ऑनलाइन हस्तान्तरण की व्यवस्था है। सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के नाम से ही भेजें)

प्रकाशक
सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी,
सेक्टर-4, हिरण मगरी, उदयपुर (राज.) - 313 002
दूरभाष : 0294-2461717

मुद्रक
संजय प्रिन्टर्स,
71, महिला मण्डल स्कूल के पास, उदयपुर
मो. 9001000700

- : मधुमती के फेसबुक पेज से जुड़ें : -
https : www.facebook.commadhumatihindi

"मधुमती में प्रकाशित रचनाओं का सर्वाधिकार रचनाकारों के पास है। मधुमती में प्रकाशित लेखों/ रचनाओं में व्यक्त विचार/ तथ्य लेखकों द्वारा प्रस्तुत हैं। मधुमती में प्रकाशित रचनाओं के लिए राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर का सहमत होना आवश्यक नहीं है और न ही अकादमी इसके लिए उत्तरदायी है।"

क्रम

सम्पादक की बात 07

विशेष स्मरण

सूर्यकान्त त्रिपाठी *निराला* 11
नवीन कवि प्रदीप

लता मंगेशकर 16
ऐ मेरे वतन के लोगों...

बी.एम.व्यास 20
आदरणीय कवि प्रदीपजी

लेख

सवाई सिंह शेखावत 23
काल में महाकाल की यात्रा

जितेन्द्र निर्मोही 27
केदारनाथ सिंह : **मैं** की चेतना
का विस्तार

राकेश बिहारी 32
अतिक्रमण से उत्पन्न समय-सत्यों का अन्वेषण

राजीव कुमार 37
कहानी विधा : संरचना का सच

ममता खांडल 48
हिन्दी उपन्यास में देह व्यापार

आशुतोष पाण्डे 59
आईना क्यूँ न दूँ कि तमाशा कहें जिसे

दिनकर दाधीच 72
उषा प्रियंवदा का कथा संसार

सुप्रिया पाठक 78
हिंदी कथा संसार की अदृश्य स्त्रियाँ

कहानी

गायत्री 86
आ अब लौट चले

कमल चौपड़ा 93
जड़ में जहर

ललित निबन्ध

श्यामसुन्दर दुबे 99
वसंत की उत्कंठा

स्मृत्यालोचन

पाण्डेय शशिभूषण *शीतांशु* 103
अज्ञेय : आस्तिकता का भाव-नैवेद्य

डायरी अंश

व्योमेश शुक्ल 117
बनारस असंभव जगह है

कविता

दीनदयाल ओझा की तीन कविताएँ 128

रेवती रमण शर्मा की आठ कविताएँ 130

बी.एल माली *अशांत* की आठ कविताएँ 134

अनुवाद

राधावल्लभ त्रिपाठी 136
संस्कृत कविता में गाँधी

समीक्षा

गोपाल प्रधान 143
अर्द्धसत्य का मार्क्सवाद

प्रभाशंकर उपाध्याय 146
एक गधे की उदासी

साहित्यिक परिदृश्य 149

प्राप्ति स्वीकार 152

सूचना 154

आईना क्यूँ न दूँ कि तमाशा कहें जिसे

इतिहास, मुक्ति आन्दोलन और प्रतिबन्धित हिन्दी कहानियाँ

आशुतोष कुमार पाण्डेय

1932 तक हिंदी कहानी *प्रथम कहानी विवाद* को त्यागकर अपने यौवनास्था में पहुँच चुकी थी और हिंदी कथा-सम्राट् मुंशी प्रेमचंद अपने रचनाकर्म के लगभग अंतिम पड़ाव पर थे । इन्हीं साहित्यिक घटनाओं के बरक्स दुनिया की चर्चित आज़ादी की लड़ाइयों में शामिल भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई ने भी जोर पकड़ लिया था। अब भारतीय जनमानस 1857 के दमन को भूलकर नए जोश-खरोश से परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए पूरी तरह से तैयार था। इसके साथ भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के सेनानियों का साथ उस समय के लेखक, साहित्यकार और बुद्धिजीवी भी बखूबी दे रहे थे, जो भारतीय जनता को अंग्रेजी परतन्त्रता या आज़ादी का मतलब समझा रहे थे। परतंत्रता के ख़िलाफ़ लड़ाई और लेखन के सन्दर्भ में लातिन अमरीकी लेखक एदुआर्दो गालेआनो ने लिखा है कि जब कोई लिखता है तो वह औरों के साथ कुछ बाँटने की जरूरत ही पूरी कर रहा होता है। यह लिखना अत्याचार के ख़िलाफ़ और अन्याय पर जीत के सुखद अहसास को साझा करने के लिए ही होता है । यह अपने और दूसरों के अकेले पड़ जाने के अहसास को खत्म करने के लिए होता है। यह माना जाता है कि साहित्य ज्ञान और समझ को फ़ैलाने का जरीया है और यह पढ़ने वालों की भाषा और आचरण पर असर डालता है। *...दरअस्ल लिखा उन्हीं के लिए जाता है जिनके नसीब या बदनसीबी के साथ जुड़ाव महसूस किया जाता है। ये वे लोग हैं जो न ढंग का खा सकते हैं न सो सकते हैं, वे इस दुनिया के सबसे दबे-कुचले अपमानित और इसलिए सबसे भयंकर विद्रोही लोग हैं।*[1] यहाँ 20वीं सदी से पहले की ग़ुलामी या आज 21वीं सदी की ग़ुलामी के सारे तत्त्व विद्यमान हैं। 20वीं सदी का आधे से अधिक दशक बीतने के साथ ही पूरी दुनिया को गुलामी से मुक्त घोषित कर दिया गया। लेकिन बड़े मुल्कों ने अपनी कुछ एजेंसियों और कुछ परियोजनाओं के माध्यम से पूरी दुनिया के मुल्कों की आवाम पर ग़ुलामी के पुराने तौर-तरीकों में कुछ हेर-फेर करके अपनी जकड़ में लाने की कोशिश की है।

कहानी में उस समय के महान चिन्तक और शोषितों की आवाज़ के साथ उपनिवेश विरोधी दुनिया के बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों को पढ़ने को लेकर द्वंद्व से कहानी शुरू होती है और कहानी आगे एक लड़के (मुख्य पात्र- लाल) की घटनाओं, उसकी संगत और उसके स्वतन्त्रता को लेकर विचार के माध्यम से बढ़ती रहती है।

हिंदी कहानी की जब भी बात शुरू होती है तो अकसर नई कहानी आन्दोलन से पहले की कहानियों को पृष्ठभूमि के बतौर ही ग्रहण किया जाता रहा है। हिंदी कहानी के उद्भव को देखते हुए यह सही भी है। हिंदी कहानी हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं के बनिस्बत आधुनिक विधा (मसलन- कविता और नाटक) है। इसे एक साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित होने के लिए मशक्कत करनी पड़ी। रूप और संरचना के कारण इसे *मनोरंजन*[2] की तरह लोगों ने अपनाया। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि हिंदी कहानी विधा की शुरुआत औपनिवेशिकता की चरम-अवस्था के दौर में हुई थी ।

अब तक ज्ञात जानकारी के अनुसार *54 कहानियों*[3] को अंग्रेजी दमन झेलना पड़ा और उन्हें प्रतिबंधित किया गया। लेकिन हिंदी साहित्य के इस दमन को और भी मजबूत आधार उस समय प्रदान किया गया जब अपने साहित्यिक प्रतिमानीकरण से बाहर कर इतिहास लिखना आरम्भ किया। आधुनिक हिंदी साहित्य खासकर 1947 तक का भारतीय भाषाओं के साहित्य को अधिकतर उपनिवेशवाद के खिलाफलिखा हुआ साहित्य माना जाता है। लेकिन औपनिवेशिक मन का सबसे अधिक प्रकोप झेलने वाला साहित्य साहित्यिक प्रतिमानीकरण से बाहर है। भारतीय साहित्य और इतिहास भारतीय समाज की विकास प्रकिया को संघर्ष के नज़रिए से देखता है। इसी भारतीय समाज ने सामन्तवाद को ठुकराया, उपनिवेशवाद को ठुकराया और अब पूंजीवाद से संघर्ष कर रहा है। इस समाज ने आधुनिकता, नवजागरण, राष्ट्रवाद, जाति-मुक्ति और लैंगिक मुक्ति सम्बन्धी संघर्षों और आन्दोलनों से पूरी दुनिया के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने की कोशिश की है ।इतिहास लेखन के बदलते दृष्टिकोण और सवालों को उठाने के लिए अलग-अलग दृष्टियों से इतिहास लिखने की कोशिश हुई। इतिहास को और ज्यादा प्रासंगिक बनाने के लिए भारतीय इतिहासकारों को यहाँ तक लिखना पड़ा कि *निम्नवर्गीय प्रसंग को प्रासंगिक बनाने के लिए केवल एक ही प्रकार के लेखन से काम नहीं चलेगा। हमें आवश्यकता है नई वैचारिकता, नई शब्दावली, नई भाषा (अपने विस्तृत मायने में), नवीन कथा शैली, मुख्तलिफ किस्म की दास्तानगोई की, जो बौद्धिक तो हो मगर कुंठित न हो, प्रयोगात्मक तो हो मगर आडम्बरी न हो, व्यापक तो हो मगर बेमानी न हो, देशज तो हो मगर राजकीय न हो और हिंदी तो हो मगर शास्त्रीय न हो। हिंदी या हिन्दुस्तानी में इतिहास-लेखन की जुबान क्या हो इस सवाल का जवाब भी हमें ढूँढ़ना होगा।*[4] अगर हम कुछ देर के लिए इस उद्धरण पर विचारते हैं, तो इस उद्धरण में नया इतिहास लेखन के दृष्टिकोण सम्बन्धी तत्त्वों को रेखांकित करने की कोशिश की गई है, जिन्हें प्रतिबंधित साहित्य और प्रतिबंधित कहानियाँ पूरा करती हैं।

प्रतिबंधित हिंदी कहानियाँ भारतीय समाज के दर्द और इतिहास के दर्द को अपने अंदर समेटे हुए हैं। 19वीं सदी के मध्य के बाद भारत में मुक्ति के स्वर सबसे ज्यादा प्रखर रूप में गूँजे और 1857 इसके लिए विद्रोह के रूप में सामने आया। कुछ उपलब्ध प्रतिबंधित कहानियों का संकलन रुस्तम राय ने किया है। इसमें पाण्डेयबेचन शर्मा 'उग्र' की पहली कहानी *उसकी माँ* शामिल है। इस कहानी में एक संवाद इस प्रकार है- *हाँ, मेरे विचार स्वतंत्र अवश्य हैं, मैं जरूरत-बेजरूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ। देश की दुरावस्था पर उबल उठता हूँ, इस पशु-हृदय परतन्त्रता पर।...*

....तुम्हारी इस बक-बक से न तो देश की दुर्दशा दूर होगी और न उसकी पराधीनता। तुम्हारा काम पढ़ना है, पढ़ो। इसके बाद कर्म करना होगा, परिवार और देश की मर्यादा बचानी होगी। तुम पहले अपने घर का उद्धार तो कर लो, तब सरकार के सुधार का विचार करना।... इस पराधीनता के विवाद में चाचाजी, मैं और आप दो भिन्न सिरों पर हैं। आप कट्टर राजभक्त, मैं कट्टर राज-विद्रोही। आप पहली बात को उचित समझते हैं -कुछ कारणों से, मैं दूसरी को दूसरे कारणों से- आप अपना पथ छोड़ नहीं सकते- अपनी प्यारी कल्पनाओं के लिए- मैं अपना भी नहीं छोड़ सकता।...

...मेरी कल्पना यह है कि जो व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो, उसका सर्वनाश हो जाये![5] अब हम यहाँ आधुनिकता और भारतीय नवजागरण को लें और इस उद्धरण के साथ पूरी कहानी को व्याख्यायित करें। सबसे पहले इस कहानी में उस समय के महान चिन्तक और शोषितों की आवाज़ के साथ उपनिवेश विरोधी दुनिया के बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों को पढ़ने को लेकर द्वंद्व से कहानी शुरू होती है और कहानी आगे एक लड़के (मुख्य पात्र- लाल) की घटनाओं, उसकी संगत और उसके स्वतन्त्रता को लेकर विचार के माध्यम से बढ़ती रहती है। लेकिन इस संवाद में स्वतन्त्रता सम्बन्धी उसके विचार भारतीय आधुनिकता और भारतीय नवजागरण दोनों को साधे हुए हैं। *आप पहली बात को उचित समझते हैं-कुछ कारणों से...।* आगे फिर कहता है कि *जो व्यक्ति समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो, उसका सर्वनाश हो जाए!*

हिंदी लोक साहित्य पर अगर हम गौर करें तो ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्थापना के बाद से इस मुल्क के किसानों की स्थिति दयनीय होती गई। सुभाष चन्द्र कुशवाहा ने लिखा है कि *हमारे सामने किसान आन्दोलन के सम्बन्ध में जो जानकारी उपलब्ध है उसके अनुसार ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के बाद अंग्रेजी शासन द्वारा भू-राजस्व की मात्रा अत्यधिक बढ़ा देने से इसकी शुरुआत होती है।*

हेबरमास के बारे में लिखते हुए विजय कुमार लिखते हैं कि *हेबरमास कहते हैं कि सार्वजनिक जीवन के दायरे ने 18वीं सदी के शुरुआती वर्षों में आकार लेना आरम्भ किया था। इसका उद्देश्य था कि यह व्यक्ति के पारिवारिक और सार्वजनिक जीवन के सरोकार के बीच एक पटरी बिठाये। इसका काम मनुष्य के निजी हितों तथा समाज के व्यापक हितों के बीच एक संवाद बनाते हुए किसी आम सहमति तक पहुँचना था। बुर्जुआ सामाजिक दायरे के कारण ही यह संभव हुआ कि एक तरफ तो राज्य सत्ता का विरोध करने वाली सार्वजनिक धारणाएँ आकार ले सकीं ओर दूसरी और वे ताकतें भी उभरीं जो बुर्जुआ समाज को अपने हिसाब से गढ़ना और चलाना चाहती थीं। इस सार्वजनिक दायरे की वजह से ही जनता के सामान्य हितों के तमाम मुद्दों पर बहसें संभव हो सकी थीं और मनुष्य के कुछ बुनियादी सरोकारों की शिनाख्त की जा सकी थी। इसी सार्वजनिक दायरे ने वाणी की स्वतन्त्रता, सार्वजनिक सभाओं के आयोजन, प्रेस की आज़ादी, राजनीतिक प्रक्रियाओं और बहसों में खुली हिस्सेदारी को संभव बनाया था।*[6] यह लेख हेबरमास के आधुनिकता सम्बन्धी चिंतन के ऊपर लिखा गया है। लेकिन इस बात को ध्यान में रखते हुए *उसकी माँ* कहानी के संवाद में जाना पड़ेगा। इस कहानी में एक तरफ एक नौजवान

छात्र देश को गुलामी से मुक्त कराने के लिए हर संभव उतारू है। दूसरे तरफ रूसो और दुनिया के कई स्वतन्त्रता के पक्षधर चिंतकों को पढ़ने के द्वंद्व में उसके चाचा हैं, जो केवल उस नौजवान को यही समझाता रहता है कि पहले अपने घर और परिवार का उद्धार करो! और दूसरी तरफ उसकी माँ है, जो कभी इस बुर्जुआ सोच की तरफआकर्षित होती है कभी अपने नौजवान लाल के प्रति। कहानी के अंत में नौजवान छात्र को गुलामी से मुक्ति हेतु षड्यंत्र के लिए फाँसी की सज़ा होती है। लेकिन कहानी की शुरुआत से लेकर अंत तक उस नौजवान छात्र के चाचा का जो द्वंद्व है वह एक बुर्जुआ द्वंद्व है, जो आधुनिक तो है लेकिन अपनी सहूलियत की शर्त पर।

1920 आते-आते नवजागरण और मुक्ति की चाह चरम पर थी। शम्भुनाथ ने लिखा है कि *आधुनिकीकरण की तरह परम्परा को लेकर नवजागरण के हर दौर की समझ को विकासशील अवस्था में ही मानना चाहिए। फिर भी सैकड़ों साल की सामाजिक कुप्रथाओं के टूटने का पक्का वक्त मानो आ गया था। यह बुद्धिमत्ता के, विवेक के धमाके का युग था। भूलना नहीं चाहिए कि निरंकुश राजाओं-बादशाहों के लम्बे दमनमूलक शासन से गुज़रने के बाद औपनिवेशिक छाया में, बिना किसी व्यापक उद्योगीकरण के भी कला, साहित्य-संस्कृति शिक्षा, देशभक्ति, राष्ट्रीयता और सामाजिक चेतना में जितनी गतिशीलता आई, वह भारत जैसे विशाल देश में पर्याप्त न होते हुए भी अर्थवान थी। एक तरह से पूरे देश की सोच, उसकी अंतरात्मा एक नई करवट ले रही थी।*[7] प्रतिबंधित कहानियों को इसी नई करवट लेने और उसको अधिक तीव्र बनाने के कारण प्रतिबन्ध का सामना करना पड़ा। सामन्तवादी युग में स्त्री और जाति उत्पीड़न अपने चरम पर था। सती प्रथा और पर्दा प्रथा नवजागरण के स्त्री सम्बन्धी प्रमुख मुद्दे थे। जितनी सती प्रथा स्त्री समाज के लिए घातक थी, उतना ही पर्दा प्रथा भी घातक थी। पर्दा-प्रथा स्त्री समाज की गुलामी का द्योतक है और इंसानी जगत में स्त्री और पुरुष गैरबराबरी का प्रथम प्रतीक है। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में 1947 तक महिला साहित्यकारों में मीराबाई, महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान का ही नाम आता है। प्रेमचंद हिंदी के प्रथम कथाकारों में शामिल हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में महिला पात्रों को सशक्त भूमिका में सामने रखा। इस दृष्टि से अगर हम देखें तो प्रतिबंधित कहानियों में स्त्रियां परदे से निकलकर देश की आज़ादी के लिए हर स्तर पर लड़ती दिखाई देती हैं। इस दृष्टि से *ऐसी होली खेलो, लाल!* (पाण्डेयबेचन शर्मा 'उग्र'), *बागी की बेटी* (मुनीश्वरदत्त अवस्थी), *हड़ताल* (ऋषभचरण जैन) और *दोस्त* (यशपाल) इत्यादि की कहानियाँ देखी जा सकती हैं । प्रेमचंद ही अपनी एक कहानी में दिखाते हैं कि *मिसेज सक्सेना ने प्रधान से पूछा- शराब की दुकानों पर औरतें धरना दे सकती हैं ?...*

प्रधान ने सर झुका कर कहा. *मैं आपके साहस और उत्सर्ग की प्रशंसा करता हूँ, लेकिन मेरे विचार में अभी इस शहर की दशा ऐसी नहीं है कि देवियाँ पिकेटिंग कर सकें। आपको खबर नहीं, नशेबाज़ कितने मुँहफट होते हैं। विनय तो वे जानते ही नहीं।*

मिसेज सक्सेना ने व्यंग्य-भाव से कहा - *तो क्या आपका विचार है कि कोई ऐसा ज़माना*

भी आएगा, जब शराबी लोग विनय और शील के पुतले बन जायेंगे ? यह दशा तो हमेशा ही रहेगी। आखिर महात्माजी ने कुछ समझ कर ही तो औरतों को यह काम सौंपा है। मैं नहीं कह सकती कि मुझे कहाँ तक सफलता होगी, पर इस कर्तव्य को टालने से काम न चलेगा।...

मिसेज सक्सेना ने जैसे विनय का आलिंगन करते हुए कहा- *मैं आपके पास फरियाद लेकर न आऊँगी कि मुझे फलां आदमी ने मारा या गाली दी। इतना जानती हूँ कि अगर मैं सफल हो गयी, तो ऐसी स्त्रियों की कमी न रहेगी जो इस काम को सोलह आने अपने हाथ में न ले लें।*[8] इस संवाद में कुछ प्रश्न छिपे हैं । जो आज के भी प्रश्न हैं। नए इतिहास लेखन में वर्ग का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। लेकिन 1930 के भारतीय स्त्री समाज की स्थिति और वर्ग के प्रश्न को अगर हम आमने-सामने रख कर देखें तो एक बात कहनी पड़ेगी कि लैंगिक आधार पर किसी एक लिंग के हाथों और पैरों को बांधकर वर्ग की तलाशी नाइंसाफी मालूम पड़ती है। परन्तु प्रतिबंधित कहानियों में रूस को जारशाही से मुक्त कराने भी पुरुषों के साथ स्त्रियाँ जाती हैं। और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर संघर्ष करते दिखाया जाता है।

जातिगत श्रेणीबद्धता अब तक के भारतीय समाज का सार्वभौमिक प्रश्न है। भारतीय समाज सदियों से जाति विभाजित समाज रहा है। 1936 में अम्बेडकर का *जाति-उन्मूलन* (Anhilation of Cast) इस समस्या का ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। हालाँकि अम्बेडकर से पूर्व महात्मा बुद्ध और ज्योतिबा फुले सामाजिक क्षेत्र में इस समस्या की शिनाख्त और खतरे की तरफ बहुत मजबूती से इशारा कर रहे थे। साहित्य में सिद्ध-नाथों, कबीरदास, रैदास और आधुनिक काल में स्वामी अछूतानन्द हरिहर और हीरा डोम जैसे जाति विरोधी रचनाकार तो हुए लेकिन 19वीं सदी के अंत में आधुनिकता का जो प्रोजेक्ट शुरू हुआ तो जाति की समस्या को उजागर करने वालों में स्वामी अछूतानन्द और हीरा डोम ने ही हिंदी क्षेत्र में जाति विरोधी अभियान को जारी रखा। लेकिन यहाँ एक ध्यान देने लायक बात यह है कि आधुनिकता के प्रोजेक्ट का मूल निहितार्थ रूढ़िवादिता और जड़ता से मुक्ति था। लेकिन यह मुक्ति आधुनिकता के मूल निहितार्थ के हिसाब से हिंदी क्षेत्र में कुंद- सा महसूस होता है। क्योंकि आदिकाल से भक्तिकाल, जो घोर सामन्ती काल के रूप में जाना जाता है, जाति से मुक्ति की छटपटाहट आधुनिक काल के बनिस्बत अधिक प्रखर मालूम पड़ती है, मसलन सिद्ध-नाथ हों या कबीर या रैदास। हालाँकि स्वामी अछूतानन्द और हीरा डोम के साथ और इनके बाद भी प्रेमचंद ने इस समस्या को बेहद संजीदा तरीके से उठाया । महात्मा बुद्ध ने धर्म को जाति समस्या का प्रमुख उपकरण है, का संकेत बहुत पहले ही कर दिया था, फिर बाद में अम्बेडकर ने भी धर्म को जाति समस्या का प्रमुख आधार माना। 1936 में उन्होंने *जाति उन्मूलन* लिखकर इसका तर्क प्रस्तुत किया। लेकिन उसी दौर में थोड़ा पहले 1923 और 1931 में *अछूत समस्या* (1923) और *मैं नास्तिक क्यों हूँ* (1931) भगत सिंह ने दो लेख लिखकर इस अमानवीय समस्या की तरफ इशारा कर दिया था। भगत सिंह ने अपने लेख *अछूत समस्या* में लिखा है कि *इसलिए हम मानते हैं कि उनके अपने जन-प्रतिनिधि हों। वे अपने लिए अधिक अधिकार माँगें। हम तो साफ कहते हैं कि उठो, अछूत कहलाने वाले असली जनसेवको तथा*

भाइयों! उठो! अपना इतिहास देखो। गुरुगोविन्द सिंह की फौज की असली शक्ति तुम्हीं थे! शिवाजी तुम्हारे भरोसे पर ही सब कुछ कर सके, जिस कारण उनका नाम आज भी जिन्दा है। तुम्हारी कुर्बानियाँ स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई हैं। तुम जो नित्यप्रति सेवा करके जनता के सुखों में बढ़ोतरी करके और जिंदगी संभव बना कर यह बड़ा भारी अहसान कर रहे हो, उसे हम लोग नहीं समझते। लैण्ड-एलिएनेशन एक्ट के अनुसार तुम धन एकत्र कर के भी जमीन नहीं खरीद सकते। तुम पर इतना जुल्म हो रहा है *कि मिस मेयो मनुष्यों से भी कहती है - उठो, अपनी-अपनी शक्ति पहचानो। संगठनबद्ध हो जाओ। असल में स्वयं कोशिश किए बिना कुछ भी न मिल सकेगा। (*Those who would be free must themselves strike the blow*) स्वतंत्रता के लिए स्वाधीनता चाहने वालों को यत्न करना चाहिए। इन्सान की धीरे-धीरे कुछ ऐसी आदतें हो गई हैं कि वह अपने लिए तो अधिक अधिकार चाहता है, लेकिन जो मातहत हैं उन्हें वह अपनी जूती के नीचे ही दबाए रखना चाहता है। कहावत है- लातों के भूत बातों से नहीं मानते। अर्थात् संगठनबद्ध हो अपने पैरों पर खड़े होकर पूरे समाज को चुनौती दे दो। तब देखना, कोई भी तुम्हें तुम्हारे अधिकार देने से इंकार करने की जुर्रत न कर सकेगा । तुम दूसरों की खुराक मत बनो। दूसरों के मुँह की ओर न ताको। लेकिन ध्यान रहे, नौकरशाही के झाँसे में मत फँसना। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं करना चाहती बल्कि तुम्हें अपना मोहरा बनाना चाहती है। यही पूँजीवादी नौकरशाही तुम्हारी गुलामी और गरीबी का असली कारण है। इसलिए तुम उसके साथ कभी न मिलना। उसकी चालों से बचना। तब सब कुछ ठीक हो जायेगा। तुम असली सर्वहारा हो... संगठनबद्ध हो जाओ। तुम्हारी कुछ भी हानि न होगी। बस गुलामी की जंजीरें कट जाएँगी। उठो, और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बगावत खड़ी कर दो। धीरे-धीरे होने वाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा। सामाजिक आन्दोलन से क्रांति पैदा कर दो तथा राजनीतिक और आर्थिक क्रांति के लिए कमर कास लो। तुम ही तो देश का मुख्य आधार हो, वास्तविक शक्ति हो। सोये हुए शेरो! उठो और बगावत खड़ी कर दो।* वहीं दूसरी तरफ अम्बेडकर लिखते हैं कि *भारत में जाति भेद मूलतः हिन्दुओं के भीतर से निकली हुई वह गन्दगी है जिसने सारे देश के वायुमंडल को विषाक्त बना दिया है। और यह विष सिख, मुसलमान, ईसाई आदि अहिंदू लोगों में भी फैला पाया जाता है। अतएव, लाहौर के जात-पाँत तोड़क मंडल को केवल हिन्दुओं का ही नहीं, सिख, मुसलमान, ईसाई आदि सभी का समर्थन मिलना चाहिये। मंडल का काम राष्ट्र की एक महान सेवा है और मंडल का यह प्रयत्न स्वराज संग्राम जब आप लड़ते हैं तो सारा राष्ट्र आपके साथ होता है, किन्तु इस जातिभेद विनाशक संग्राम में स्वयं मंडल को सारे राष्ट्र से संघर्ष करना होगा और वह राष्ट्र भी कोई दूसरा नहीं स्वयं अपना ही। मेरे विचार में तो मंडल का यह काम स्वराज से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उस स्वराज से क्या लाभ, यदि हम उसकी रक्षा नहीं कर सकते । मेरी सम्मति में हिन्दू समाज से*

अगर हम उस दौर के या उस विद्रोह से सम्बन्धी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से इस विद्रोह को समझने की कोशिश करेंगे तो स्पष्ट होगा कि साम्राज्य और सामंत दोनों ही से जनता मुक्ति चाहती थी। इसीलिए यह विद्रोह जनमानस में व्यापक रूप से फैला।

जाति भेद के महारोग के विनाश से ही उसमें अपनी आज़ादी की रक्षा करने की शक्ति उत्पन्न होने की आशा की जा सकती है।[10] इन दोनों उद्धरणों से एक चीज़ तो साफ़ हो गई कि भारत में जाति-मुक्ति के बगैर कोई भी स्वराज अधूरा है। आम्बेडकर जहाँ जाति आधारित समाज को नकारते हैं, वहीं भगत सिंह जाति की समस्या को महत्त्वपूर्ण मानते हुए वर्ग आधारित समाज को भी नकारते हैं। इन दोनों समाज के उन्नायकों को प्रतिबंधित हिंदी कहानीकार साथ लेकर चलते हैं । प्रेमचंद ने *ठाकुर का कुआँ* तथा कुछ और कहानियाँ इसी दर्द को बयाँ करने के लिए लिखी थी। *ठाकुर का कुआँ* कहानी में अम्बेडकर द्वारा जाति की समस्याओं की शिनाख्त को बखूबी पहचाना गया है। इस कहानी में दमित या पिछड़े हुए तबके को पानी पीने के लिए उच्च तबके के कुएँ से पानी लेने की मनाही थी। इसे पानी की समस्या का रूपक बनाकर भारतीय समाज के वीभत्स रूप को प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य में सामने रख दिया था। प्रेमचंद इस कहानी में लिखते हैं *ठाकुर के कुएँ पर कौन चढ़ने देगा? दूर से लोग डांट बताएँगे। साहू का कुआँ गाँव के उस सिरे पर है, परन्तु वहाँ भी कौन पानी भरने देगा। चौथा कुँआ गाँव में है नहीं। जोखू कई दिन से बीमार है। कुछ देर तक तो प्यास रोके चुप पड़ा रहा, फिर बोला- अब तो मारे प्यास के रहा नहीं जाता। ला, थोड़ा नाक बंदकर के पी लूं ।*[11] इस कहानी का रचना समय 1932 है । इस कहानी को ध्यान में रखते हुए हमें अम्बेडकर द्वारा 1927 में किये गये पानी के लिए *महाड* आन्दोलन को देखना पड़ेगा। जिस तरह से सार्वजनिक कुओं और तालाबों से अछूत कही जाने वाली जातियों को पानी लेने का अधिकार नहीं था । इस परम्परा को नष्ट कर सबको पानी लेने के अधिकार के लिए अम्बेडकर ने सत्याग्रह किया। उसी तरह से प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य में अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से इस समस्या का हिंदी के आभिजात्य वर्गीय पाठकों का ध्यान दिलाने का सत्याग्रह किया। अम्बेडकर के महाड आन्दोलन और प्रेमचंद की इस कहानी में एक समानता यह भी है कि अम्बेडकर के इस आन्दोलन में स्त्री-पुरुष दोनों साथ में भाग लेते हैं। प्रेमचंद की कहानी में निर्भीक हो कर गंगी ही रात में ठाकुर के कुएं से पानी लेने जाती है। इसी समस्या से संबंधित एक और कहानी देखी जा सकती है। *मजदूरिन* कहानी लीलावती बी.ए. की कहानी है। इस कहानी की शुरुआत मुलिया (मुख्य पात्र) से होती है। कहानीकार शुरू में आभिजात्य स्त्रियों और दमित स्त्री के बीच के फर्क को दिखाता है। मुलिया के माध्यम से ही कहानी आगे बढ़ती रहती है। इस कहानी में मुलिया मूलत: एक नौकर है और अपनी मालकिन की स्थिति को देख हमेशा द्वंद्व में रहती है। कहानीकार मुलिया के बारे में लिखता है कि *उसके विषय में तो ऐसा प्रतीत होता था कि समय आगे - आगे भागता था और वह उसे थोड़ा ठहर-थोड़ा ठहर कहकर रोकने की व्यर्थ चेष्टा किया करती थी। सारा दिन खाली बैठने या इधर-उधर की गप-शप में ही व्यतीत कर देने का वह स्वप्न में भी खयाल नहीं कर सकती थी। मजदूरिन है। उसका काम सुबह से शाम तक कोल्हू के बैल की तरह जुटे रहना है। सारा दिन पसीना बहाकर ही उसे पेट भरने को अन्न नसीब होता है। आप काम करती हैं, पति काम करता है, बच्चे भी कुछ-न- कुछ साथ देते ही हैं।*[12] ऊपर भगत सिंह ने जिस तरफ इशारा किया है, उसके साथ यह बात यहाँ साफ हो जाती

है।

भारतीय सभ्यता मूलत: किसानी आधारित सभ्यता रही है । प्रतिबन्धित कहानियाँ इस किसानी सभ्यता के दमन से आहत हैं। इस सभ्यता को बचाने के लिए प्रतिबंधित कहानियाँ रूस की साम्यवादी व्यवस्था से प्रेरणा लेने की वकालत करती हैं। अंग्रेजी सरकार के साथ देशी सामंत मिलकर किसानों की स्थिति पहले से भी बदतर बना रहे थे। प्रेमचंद ने 1932 में लिखित अपने लेख में लिखा है कि *भारत के अस्सी फीसदी आदमी खेती करते हैं। कई फीसदी वे हैं, जो अपनी जीविका के लिए किसानों के मुहताज हैं, जैसे गाँव के बढ़ई, लुहार आदि। राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभूति है, वह इन्हीं किसानों और मजदूरों की मेहनत का सदका है। हमारे स्कूल और विद्यालय, हमारी पुलिस और फौज़, हमारी अदालतें और कचहरियाँ, सब उन्हीं की कमाई के बल पर चलती हैं, लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्न और वस्त्रदाता हैं, भरपेट अन्न को तरसते हैं, जाड़े-पाले में ठिठुरते हैं और मक्खियों की तरह मरते हैं।... लार्ड कर्जन ने 1901 में यहाँ की व्यक्तिगत आय का अनुमान तीस रु. तक पहुँचाया और 1915 में वह समय था, जब योरोपीय महाभारत ने चीजों का मूल्य बहुत बढ़ा दिया था। 1930 में वही हालत फिर हो गई जो 1901 में थी और हिसाब लगाया जाए तो आज हमारी व्यक्तिगत आय शायद पच्चीस रु. से अधिक न हो, पर आज तक किसी ने किसानों की दशा की ओर ध्यान नहीं दिया और उनकी दशा आज भी वैसी है जो पहले थी। उनके खेती के औजार, साधन, कृषि-विधि, कर्ज, दरिद्रता सब कुछ पूर्ववत् है।... सरकार ने समय-समय पर उनकी रक्षा करने के लिए कानून बनाए हैं, और शायद इस तरह के कानून अब तक और ज्यादा बन गए होते, यदि जमींदारों की ओर से उनका विरोध न हुआ होता। अबकी बार ही छूट के विषय में जमींदारों ने कम रुकावटें नहीं डालीं, लेकिन अनुभव से मालूम हो रहा है कि इस नीति से किसानों का विशेष उपकार नहीं हुआ।*[13] इसी मुद्दे को लेकर गाँधी ने चम्पारण सत्याग्रह और हिंदी क्षेत्र में स्वामी सहजानन्द सरस्वती का आन्दोलन प्रमुख था। इस मुद्दे पर बात करने से पहले हमें अपने हिंदी साहित्य का इतिहास के साथ गद्य साहित्य का इतिहास पर नजर दौड़ा लेनी चाहिए। विधाओं का इतिहास लिखने का प्रयास ऐसे तो हिंदी के कुछ इतिहासकारों ने किया है। परन्तु वह इतिहास केवल सूचनापरक ही दिखता है। मसलन रामचंद्र तिवारी (हिंदी का गद्य साहित्य), गोपाल राय (1.हिंदी कहानी का इतिहास 2. हिंदी उपन्यास का इतिहास), मधुरेश (हिंदी कहानी का विकास)। इन सभी विधा आधारित इतिहास लेखकों ने प्रवृत्ति के मसले पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा निर्धारित साहित्यिक प्रवृत्ति को मुख्य आधार बनाया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने साहित्य इतिहास के उपन्यास-कहानी उपशीर्षक के अंतर्गत लिखा है कि *सामाजिक उपन्यासों में देश में चलने वाले राष्ट्रीय तथा आर्थिक आन्दोलन का भी आभास बहुत कुछ रहता है। तअल्लुकदारों के अत्याचार, भूखे किसानों की दारुण दशा के बड़े चटकीले चित्र उनमें प्राय: पाए जाते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा केवल यही कहना है कि हमारे निपुण उपन्यासकारों को केवल राजनीतिक दलों द्वारा प्रचारित बातें लेकर ही नहीं चलना चाहिए, वस्तुस्थिति पर अपनी व्यापक दृष्टि भी डालनी चाहिए। उन्हें यह भी देखना चाहिए की अंगरेजी राज्य पर भूमि की उपज या आमदनी पर जीवन निर्वाह करने वाले (किसानों और जमींदारों दोनों)*

की और नगर के रोजगारियों या महाजनों की परस्पर क्या स्थिति हुई। उन्हें यह भी देखना चाहिए कि राज कर्मचारियों का इतना बड़ा चक्र ग्रामवासियों के सिर पर ही चला करता है, व्यापारियों का वर्ग उससे प्राय: बचा रहता है। भूमि ही यहाँ सरकारी आय का प्रधान उद्‌गम बना दी गई है। व्यापार श्रेणियों को यह सुभीता विदेशी व्यापार को फलता-फूलता रखने के लिए दिया गया था, जिससे उनकी दशा उन्नत होती आई और भूमि से सम्बन्ध रखने वाले सब वर्गों की -क्या जमींदार, क्या किसान, क्या मजदूर- गिरती गई।[14] शुक्ल जब यह बात कर रहे हैं तो उनके ज़ेहन में प्रेमचंद युग है। इसके पहले उन्होंने किसानों की स्थिति पर नज़र नहीं दौड़ाई है। जबकि भारतीय सामाजिक इतिहास के साथ हिंदी लोक साहित्य पर अगर हम गौर करें तो ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्थापना के बाद से इस मुल्क के किसानों की स्थिति दयनीय होती गई। सुभाष चन्द्र कुशवाहा ने लिखा है कि हमारे सामने किसान आन्दोलन के सम्बन्ध में जो जानकारी उपलब्ध है उसके अनुसार ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के बाद अंग्रेजी शासन द्वारा भू-राजस्व की मात्रा अत्यधिक बढ़ा देने से इसकी शुरुआत होती है। 1767 में पूर्वी सिंहभूमि के ढालभूम क्षेत्र में ढाल राजाओं ने फावर्यूसन के विरुद्ध युद्ध किया जिसमें बड़ी संख्या में आदिवासी किसानों ने भाग लिया। यह लड़ाई 1777 तक चली। लगान न देने के कारण राज्य को अंग्रेजों ने नीलाम कर दिया, जिसके कारण 1769 से 1805 तक चुआड़ विद्रोह हुआ। बँगला शब्दकोश में चुआड़ का अर्थ नीच जाति उल्लिखित है, जिसे गाली स्वरूप आदिवासियों के लिए प्रयुक्त किया गया। कैप्टन कैमेक के विरुद्ध 1770-71 में चेरो विद्रोह हुआ जो पुन: 1810 में भी देखने को मिला। इसी वर्ष भोगता विद्रोह प्रकाश में आया। 1772-73 में घटवाल और फदिया विद्रोह सुनाई दिया। 1782-1807 तक तमाड़ विद्रोह और 1793 से 1832 तक मुंडा विद्रोह देखने को मिला। पुन: 1819-20 में रुदुकोंता के नेतृत्व में मुंडाओं ने विद्रोह किया। 1793 में तिलक माँझी की अगुवाई में संथालों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया। आदिवासियों की सबसे बड़ी समस्या जमीन और लगान की थी। उनका मानना था कि जंगल को साफ कर उन्होंने जमीन तैयार की है इसलिए जमीन पर उनका हक़ है। इसमें अंग्रेजों को दखल देने का अधिकार नहीं है। इन्हीं सब मुद्दों पर मानभूमि के भूमिजों ने 1798 में विद्रोह किया। 1820-21 में सिंहभूमि विद्रोह एक बार फिर प्रकाश में आया।[15] आचार्य रामचंद्र शुक्ल और सुभाष चन्द्र कुशवाहा के इन उद्धरणों में कालगत अंतर महसूस किया जा सकता है। अब बात उठती है कि समाज और साहित्य में इस तरह के अंतर को कैसे समझा जाये। जबकि साहित्य का विकास सामाजिक विकास के साथ होता है। अगर केवल इस मुद्दे की बात करें, तो लोक साहित्य में किसानों की दुर्दशा की बात साहित्य से पहले मिलने लगती है। इसके प्रतिबन्धित हिंदी कविताओं

अगर हम उस दौर के या उस विद्रोह से सम्बन्धी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से इस विद्रोह को समझने की कोशिश करेंगे तो स्पष्ट होगा कि साम्राज्य और सामंत दोनों ही से जनता मुक्ति चाहती थी। इसीलिए यह विद्रोह जनमानस में व्यापक रूप से फैला।

में भी 1857 के सन्दर्भ में किसानों की दुर्दशा का उल्लेख मिलता है। प्रतिबन्धित हिंदी कहानियों में रूस की जारशाही के दौर से साम्यवादी दौर में पहुँचने तक की किसानों के दमन की ऐतिहासिक स्थिति को दिखाते हैं। इन कहानियों में शोषक और शोषित को आमने-सामने ही रखा गया है। उग्र की कहानी *निहिलिस्ट* में इसे देखा जा सकता है-

हमारे प्यारे बन्धु किसान,

मरते हाय! अ-नय के कर से पाते दु:ख महान।

अनियंत्रित शासन है, कारण इसका एक प्रधान।

जब तक यह न मिटेगा तब तक कहीं नहीं कल्याण।

मास्को के हेड पुलिस स्टेशन (कोतवाली) पर बैठे हुए पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने सुना और देखा -कोई युवक उक्त गान को गाता हुआ चला जा रहा है। फ़ौरन चार पुलिस कांस्टेबल दौड़ाए गए। युवक पुलिस सुपरिन्टेंडेंट के सामने लाया गया।[16] इसके बाद आगे पुलिस अधिकारी और युवक के बीच गान गाने को लेकर बहस है। अंत में पुलिस उसको कैद कर लेती है। इस तरह की अनेक प्रतिबंधित कहानियाँ हैं । इसका मूल कारण उस समय के देशी-विदेशी साहित्यकारों का साहित्य और समाज के प्रति उनका नजरिया। अगर हम केवल भारत के पड़ोसी देशों की बात करें तो रूस में गोर्की, चीन में लूशुन और भारत में प्रेमचंद ऐसे कथाकार थे जो कि सामाजिक दमन और सामाजिक विकास प्रक्रिया को जनता से समझते थे। इन तीनों के बारे में राणा प्रताप लिखते हैं कि *गोर्की, प्रेमचंद और लूशुन- तीन महान कलाकार, तीन साहित्यिक विभूतियाँ और युग-प्रतिभाएँ! तीनों के बचपन थोड़ी-बहुत भिन्नता के साथ यकसाँ। अध्ययन, मनन और चिंतन की सीढ़ियों को चढ़ना और साहित्य के लेखन में प्रवृत्त होना, लगभग यकसाँ। देखने में भी थोड़ी-बहुत भिन्नता के साथ यकसाँ। हालाँकि गोर्की उम्र में भी, कद में भी प्रेमचंद और लूशुन से 12-13 साल बड़े थे।*

देश-प्रेम, आज़ादी और क्रांति की सेवा का ध्येय तीनों का एक था। तीनों लेखकों ने अपने-अपने देश की जनता को बेइंतहा प्यार किया।[17] *बदले में तीनों लेखकों को भी जनता का बहुत प्यार और सम्मान मिला।* यही जनता का प्यार और स्नेह शासक के लिए खतरनाक था ।

हिंदी साहित्य में तीव्र या मद्धिम अंग्रेजी दमन का जिक्र तो मिलता है । परन्तु दमनात्मक काले कानूनों का कोई विरोध नहीं मिलता है। लेकिन प्रतिबन्धित हिंदी कहानीकारों ने इसको बखूबी उठाया है। जिसके कारण इन्हें प्रतिबन्ध का भी सामना करना पड़ा। इसीलिए ग्राहमशॉ और मैरीलॉयड की किताब की भूमिका लिखते हुए बी.सी.ब्लूमफील्ड ने लिखा है कि The editors show that the British normally banned publication for two main reasons: first they promoted criticism of the British administration; and second, they promoted religious and/ or racial strife. The proscription of publication for moral or sexual reasons seems almost never to have been the case, in spite of the fact that a number of such publications are known to have originated in India."[18] जिस तरह से साम्प्रदायिकता और लैंगिकता अप्रतिबंधित साहित्य के विषय-वस्तु में आज़ादी के बाद जुड़ती है। उसी तरह से मुखर रूप से शासक की आलोचना भी कम ही देखने को

मिलती है । प्रतिबंधित हिंदी कहानियों के लेखकों ने अपनी कहानियों में इसको प्रमुखता दी है। *मास्टर साहब धीर-गंभीर गति से आगे बढ़ रहे थे। इस समय उन्होंने हजामत बनवाई थी। वे अपने निजी वस्त्र पहने थे। दूर से देखने में दुर्बल होने के सिवा और कोई अंतर न दिखता था। वे मानो किसी गहन विषय को सोचते हुए व्याख्यान देने रंगमंच पर आ रहे थे। उनके आगे खुली पुस्तक हाथ में लिए पादरी कुछ वाक्य उच्चारण कर रहा था। उनके पीछे जैसा अपने पूरी पोषक में थे। उनकी बगल में मजिस्ट्रेट और डॉक्टर भी चल रहे थे । क्षण भर तख्ते पर खड़े रहने के बाद जल्लाद ने उनके गले में रस्सी डाल दी । पादरी ने कहा-मैं प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर तुम्हारी आत्मा को शांति प्रदान करे।*

मास्टर साहब ने कहा चुप रहो, मैं प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर मेरी आत्मा को ज्वलंत अशांति दे, जो तब तक न मिटे जब तक मेरा देश स्वाधीन न हो जाये और मेरे देश का प्रत्येक व्यक्ति शांति न प्राप्त कर ले।[19] यह कहानी आचार्य चतुरसेन शास्त्री की है, जिसमें पराधीनता से मुक्ति के लिए अंतिम दम तक लड़ने की जिजीविषा, जो परिचय पात्र के माध्यम से करवाया है, वह उनके समकालीन अप्रतिबंधित कहानियों के कहानीकारों की बस की बात नहीं दिखती। इस तरह की कहानी *फाँसी* (विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक), *विद्रोही के चरणों पर* (जनार्दनप्रसाद झा द्विज), *बलिदान* (मुनीश्वरदत्त अवस्थी), इत्यादि कहानियाँ हैं।

इरफ़ान हबीब ने पी.सी.जोशी और कार्लमार्क्स के हवाले से लिखा है कि *1857 पर पी.सी.जोशी द्वारा सम्पादित ग्रन्थ में, तलमीजखाल्दून ने सुव्यवस्थित दस्तावेजी साक्ष्यों से युक्त एक लेख में यह तर्क पेश किया है कि इस विद्रोह ने देसी सामंतशाही तथा विदेशी साम्राज्यवाद के खिलाफ किसान युद्ध का रूप ले लिया था और इस तरह यह सब से बढ़कर एक सामंत विरोधी आन्दोलन था और उसके बाद ही एक साम्राज्यवाद विरोधी विद्रोह। इस सिलसिले में हम पी.सी.जोशी से सहमत होंगे कि यह तर्क अनुचित तरीके से 1857 की बगावत के उपनिवेश विरोधी चरित्र को कमजोर करता है और बहुत अयथार्थवादी तरीके से भूस्वामी वर्गों को विद्रोहियों की कतारों से बहार कर देता है। स्वाभाविक रूप से यह, जैसा कि हम पहले ही देख पाए हैं, 1857 के विद्रोह मार्क्स के आकलन के भी अनुरूप नहीं है। मार्क्स के लिए यह एक क्रांति थी, एक राष्ट्रीय क्रांति, जिसमें किसानों के अलावा जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों के भी कुछ हिस्से थे।*[20] बात यहाँ 1857 का विद्रोह सामन्ती और साम्राज्यवादी विद्रोह दोनों एक साथ थे या केवल साम्राज्यवादी विद्रोह ही था, की है। कुल मिलाकर मूल बात यहाँ ऐतिहासिक नजरिये की है कि किसी विद्रोह को कैसे देखा जा रहा है। लेकिन अगर हम उस दौर के या उस विद्रोह से सम्बन्धी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से इस विद्रोह को समझने की कोशिश करेंगे तो स्पष्ट होगा कि साम्राज्य और सामंत दोनों ही से जनता मुक्ति चाहती थी। इसीलिए यह विद्रोह जनमानस में व्यापक रूप से फैला। प्रतिबंधित कहानियों में एक कहानी है- *बागी की बेटी* जो 1857 पर आधारित है। मुनीश्वरदत्त अवस्थी इस कहानी में दिखलाते हैं कि एक बागी, जो देश को सामन्ती और साम्राज्यवादी जड़ता से मुक्ति दिलाने के क्रम में शहीद होता है। उसके इस अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए उसकी बेटी ने कमर कस ली है। वे

सन् 1857 के दिन थे, जबकि संसार के पूर्वी भाग -भारत में स्वतन्त्रता की आभा-सी निकल रही थी । गुलामी के अँधेरे में वर्षों रहते हुए प्राणियों के प्राण पर बन आई थी और चमकती हुई तलवारें आशा की ओर इशारा कर रही थीं । रक्त की धारा का प्रतिबिम्ब आकाश में अरुण का रूप धारण कर रहा था। इस नवीन युग के प्रमुख पात्र धुंधपंत नाना साहब पेशवा का कानपुर और उसके आस-पास अधिकार हो चुका था। बिठूर उसकी राजधानी थी। वीर सेनापति तात्या टोपे ने झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई की सहायता से कालपी के मैदान में लेफ्टिनेंट बुकर को मैदान से भगा दिया। बौकर के सहायक फ्रेनर साहब तथा उनके उनतीस साथी गिरफ्तार करके बिठुर भेजे गए थे। कानपुर के युद्ध में पकड़े गए सैनिकों के साथ कर्नल फ्रेनर अपनी आयु के दिन बिठुर जेल में व्यतीत कर रहे थे। उस मरहठे सरदार ने फ्रेनर से और प्रश्न नहीं किये। वह उदासीन की भाँति जेल के बाहर हो गया।[21] इस कहानी में प्राणी जगत की मुक्ति के लिए तमाम उद्यम किये जा रहे हैं । इसके अलावा प्रतिबंधित हिन्दी कहानियाँ और इसके लेखक दोनों ही समाज में मौजूद किसी भी तरह की पराधीनता से मुक्ति की लालसा रखते हैं।

जिस तरह ऊपर पी.सी.जोशी के हवाले से 1857 की क्रांति को सामन्ती और साम्राज्यवादी दोनों से ही मुक्ति की बात की गई है, उसी प्रकार प्रतिबंधित हिंदी कहानियों का अध्ययन करने से ऐसा महसूस होता है कि 1857 के प्रथम जन आन्दोलन के साथ सम्पूर्ण स्वतन्त्रता आन्दोलन के केंद्र में भी सामन्ती और साम्राज्यवादी दोनों ही जड़ताओं के खिलाफ आन्दोलन था। कम-से-कम प्रतिबन्धित हिंदी कहानियों के गहन अध्ययन से यह बात सिद्ध हो जाती है। इसके अध्ययन और साहित्य के साथ सामाजिक इतिहास में भी राजनीतिक, सामाजिक इतिहास में वृद्धि की गुंजाइश बनेगी। हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रतिबंधित कालगत और विषयगत दोनों ही स्तर पर पुनर्रचना की सम्भावना बनेगी । इस प्रकार प्रतिबंधित हिंदी कहानियों को हिंदी साहित्य में जगह देने से हिंदी साहित्य के इतिहास पर तो असर पड़ेगा ही, साथ ही कहानी विधा का इतिहास भी इससे समृद्ध होगा।

***

सन्दर्भ :

1. एदुआर्दो गालेआनो (2016), आग की यादें, अंग्रेजी से अनुवाद और संपादन : रेयाजुलहक़, गार्गी प्रकाशन, दिल्ली- 15

2. सुरेन्द्र चौधरी लिखते हैं -'सामान्यतः पाठक और आलोचक के एक समुदाय के बीच इस बात को लेकर सहमति है कि कथा हमारा मनोरंजन करती है। इस मनोरंजन को लेकर अभिजात रुचि बराबर कथा-कहानियों को हेय दृष्टि से देखती आयी है।' सुरेन्द्र चौधरी (2010), हिंदी कहानी प्रक्रिया और पाठ, राधाकृष्ण नई दिल्ली-11

3. रुस्तम राय लिखते हैं - 'समस्त भारतीय भाषाओं में अनेक उपन्यास और कहानी संकलन स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान प्रतिबंधित हुए हैं। अब तक प्राप्त जानकारी के अनुसार हिंदी कथा-साहित्य से संबंधित 54 कहानियाँ मिली हैं। 'रुस्तम राय, स्वाधीनता आन्दोलन और प्रतिबंधित हिंदी कथा-साहित्य', विभूतिनारायण राय (सम्पा.) कथा-साहित्य के सौ बरस, शिल्पायन, दिल्ली-24

4. शाहिद अमीन और ज्ञानेंद्र पाण्डेय, 'पक्की से हट कर', शाहिद अमीन व ज्ञानेंद्र पाण्डेय (सम्पा.),

निम्नवर्गीय प्रसंग – राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–20

5. पाण्डेयबेचन शर्मा 'उग्र', 'उसकी माँ', रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, राधाकृष्ण, नई–दिल्ली–15

6. विजय कुमार (2010), अंधेरे समय में विचार, संवाद प्रकाशन, मेरठ–65

7. शम्भुनाथ, भूमिका से, शम्भुनाथ (सम्पा.), सामाजिक क्रांति के दस्तावेज़, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–17

8. प्रेमचंद, शराबी की दुकान, बलराम अग्रवाल (सम्पा.) सोज़े वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियाँ, साक्षी प्रकाशन, दिल्ली– 104

9. भगत सिंह का लेख– अछूत समस्या, https://www.marxists. org/hindi/bhagat-singh/1923/achoot-samasya.htm

10.अम्बेडकर का लेख– जाति उन्मूलन http://gadyakosh.org/gk

11. प्रेमचंद, ठाकुर का कुआँ, बलराम अग्रवाल(सम्पा.) सोज़े वतन तथा अन्य जब्तशुदा कहानियाँ, साक्षी प्रकाशन, दिल्ली– 167

12. लीलावती बी.ए., 'मज़दूरिन', रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, राधाकृष्ण, नई दिल्ली– 245

13. प्रेमचंद, हतभागे किसान, निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका (सम्पा.), प्रेमचंद रचना–संचयन, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली–775

14. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–337

15. उद्धृत द्वारा सुभाष चन्द्र कुशवाहा, –अवध का किसान विद्रोह : 1920 से 1922ई., राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–23

16. पाण्डेयबेचन शर्मा 'उग्र', 'निहिलिस्ट' रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, राधाकृष्ण, नई दिल्ली– 70

17. राणा प्रताप, नयी पीढ़ी के लिए गोर्की प्रेमचंद लूशुन, गार्गी प्रकाशन, दिल्ली–149

18. From Preface written by B.C. Bloomfield, Graham Shaw and Mary Lloyd, Publications prescribed by the Government of India, The British Library, London

19. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, 'फंदा', रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, राधाकृष्ण, नई दिल्ली–269

20 इरफ़ान हबीब, 'राष्ट्रीय विद्रोह की कहानी', मुरली मनोहर प्रसाद सिंह और चंचल चौहान (सम्पा.), 1857 इतिहास कला साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली– 27

21. मुनीश्वरदत्त अवस्थी, 'बागी की बेटी', रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, राधाकृष्ण, नई दिल्ली–132

***

सम्पर्क
शोध छात्र, हिन्दी विभाग, हैदराबाद
विश्वविद्यालय, हैदराबाद– 500046
ashutoshpandey010@gmail.com
मो. 919452806335

मधुमती

ISSN : 2321-5569
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
वर्ष 61, अंक 1, जनवरी, 2021

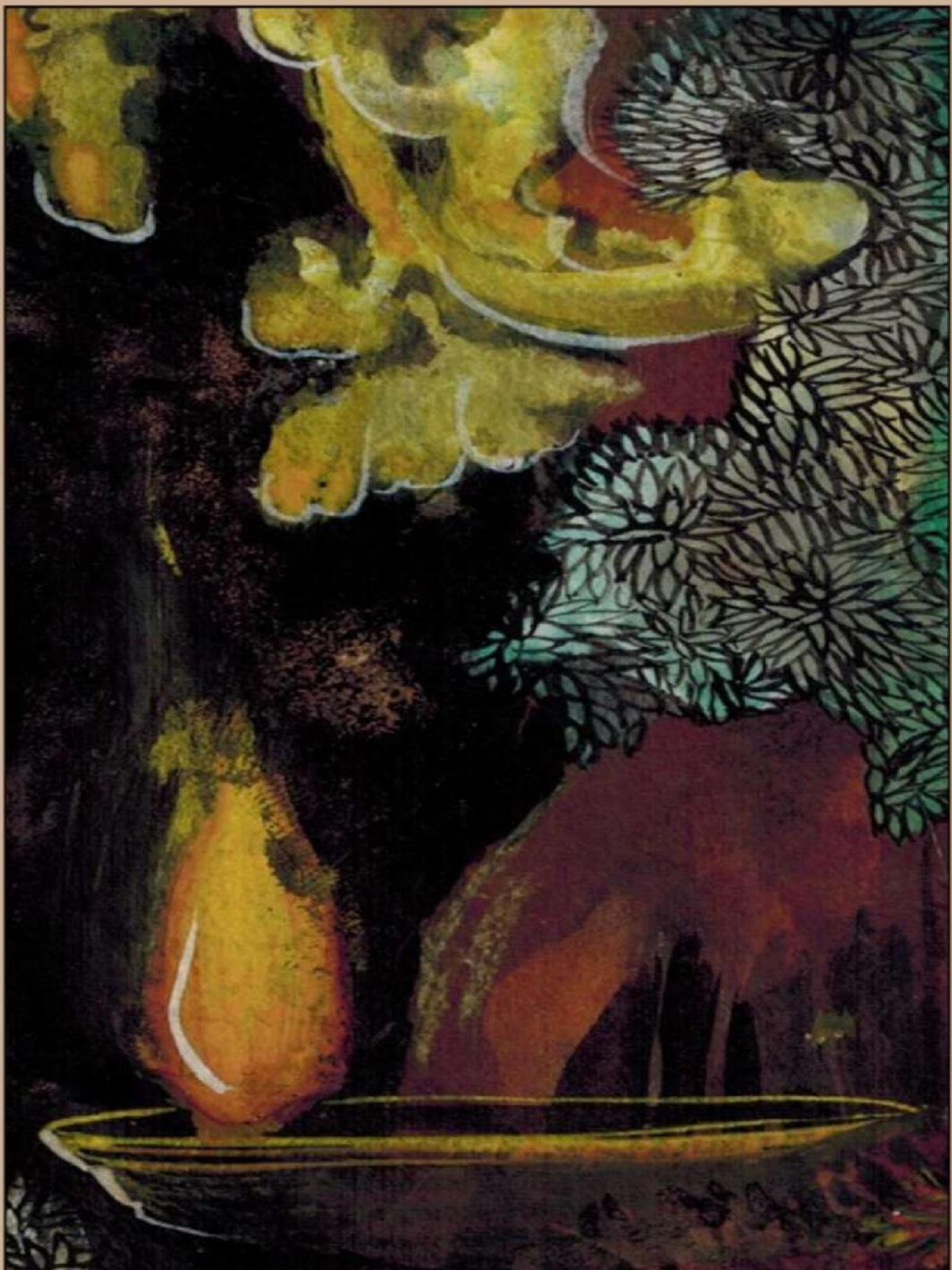

मूल्य ₹ बीस

1

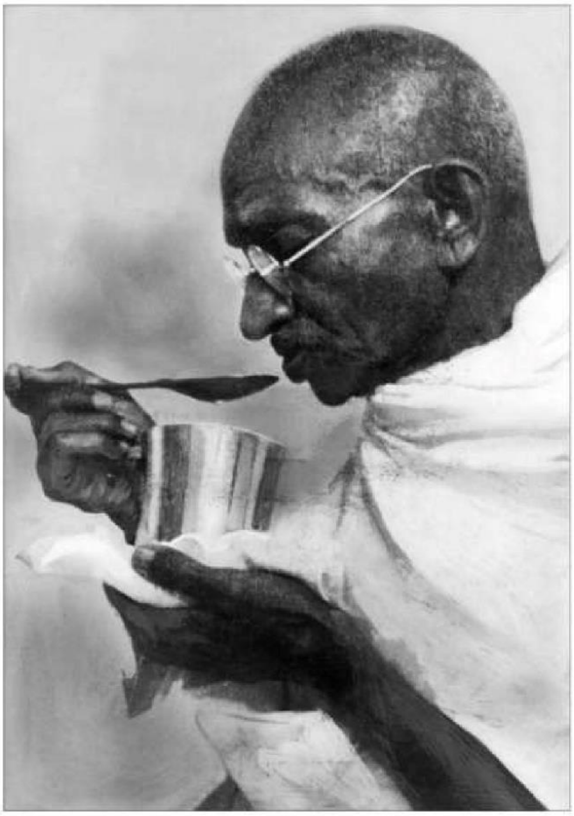

आपकी मान्यताएँ आपके विचार बन जाते हैं,
आपके विचार आपके शब्द बन जाते हैं,
आपके शब्द आपके कार्य बन जाते हैं,
आपके कार्य आपकी आदत बन जाते हैं,
आपकी आदतें आपके मूल्य बन जाते हैं,
आपके मूल्य आपकी नियति बन जाती है।

- महात्मा गाँधी

ISSN 2321-5569

मधुमती

वर्ष 61, अंक 1, जनवरी, 2021

UGC Care list Group 'D' Sl.No. 57

प्रधान सम्पादक

विकास सीतारामजी भाले

आई.ए.एस.

सम्पादक

ब्रजरतन जोशी

www.rsaudr.org

email : madhumati.udaipur@gmail.com

मधुमती

वर्ष 61, अंक 1, जनवरी, 2021

UGC Care list Group 'D' Sl. No. 57

प्रधान सम्पादक
विकास सीतारामजी भाले
आई.ए.एस.

सम्पादक
ब्रजरतन जोशी

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. बसन्त सिंह सोलंकी

प्रबन्ध सहयोग
राजेश मेहता

आवरण
रांगेय राघव

अंक का मूल्य : 20/-
वार्षिक शुल्क : 240/-
(वार्षिक शुल्क धनादेश, बैंक ड्राफ्ट, एटपार चैक या नकद एवं ऑनलाइन हस्तान्तरण की व्यवस्था है। सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के नाम से ही भेजें)

प्रकाशक
सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी,
सेक्टर-4, हिरण मगरी, उदयपुर (राज.) - 313 002
दूरभाष : 0294-2461717

मुद्रक
संजय प्रिन्टर्स,
71, महिला मण्डल स्कूल के पास, उदयपुर
मो. 9001000700

- : मधुमती के फेसबुक पेज से जुड़ें : -

https : www.facebook.commadhumatihindi

मधुमती में प्रकाशित रचनाओं का सर्वाधिकार रचनाकारों के पास है। मधुमती में प्रकाशित लेखों/ रचनाओं में व्यक्त विचार/ तथ्य लेखकों द्वारा प्रस्तुत हैं। मधुमती में प्रकाशित रचनाओं के लिए राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर का सहमत होना आवश्यक नहीं है और न ही अकादमी इसके लिए उत्तरदायी है।

क्रम

संपादक की बात

विशेष स्मरण

अप्पा से मेरी मुलाक़ात कभी खत्म नहीं होती
सीमन्तिनी राघव 11

जो काग़ज पर लिखा तो झूठा लगा
बृजेश अम्बर 17

लेख

हिन्दू धर्म : एकरूपता के अग्रह, मध्यवर्ग और संस्कृतीकरण
नरेश गोस्वामी 22

राष्ट्र : स्वराज का कथात्मक कहासमर
कमलकिशोर गोयनका 33

सचमुच मैं अन्धेरे युग में जी रहा हूँ !
आशुतोष पाण्डेय 42

कामाध्यात्म और उर्वशी
हरीश अरोड़ा 53

दक्षिण भारतीय भाषाओं-साहित्य में गाँधी
बाबू राज के.नायर 59

संस्मरण

कृष्णा सोबती की जीवन कथा का सिरोही प्रसंग
नंद भारद्वाज 74

जापान में हिन्दी
ऋचा मिश्र 75

कहानी

चाबी
रूपा सिंह 88

कविताएँ

अशोक वाजपेयी 97
रंजना मिश्रा 101
अनामिका अनु 105

अनुवाद

आक्रमकता की भाषा जन-आख्यान तथा प्रजातान्त्रिक प्रतिक्रिया
मूल : गणेश देवी
अनुवाद : ज्योतिका एलहेंस 108

समीक्षा

भाषा और साहित्य के परिसर में परस्पर
दयाशंकर 114

अपने उद्देश्य में सफल होती रचना
सुमन केशरी 118

प्रश्नाकुल संसार से साक्षात्कार
शर्मिला बोहरा जालान 121

साहित्य समाचार 126
संवाद निरन्तर 127
प्राप्ति स्वीकार 128
सूचना 130

आवश्यक सूचना

मधुमती पत्रिका की एजेन्सी के लिए पहली बार आप छह ग्राहक बनाकर एजेन्ट बन सकते हैं। तत्पश्चात् आपको समय-समय पर ***मधुमती*** के ग्राहक बनाने होंगे, जिस पर अकादमी द्वारा नियमानुसार 30 प्रतिशत कमीशन देय होता है। आप अपना रजिस्ट्रेशन पत्र के माध्यम से आवश्यक शुल्क जमा करवा कर एजेन्ट बन सकते हैं। इस हेतु आप madhumati.udaipur@ gmail.com पर भी अपना प्रस्ताव प्रेषित कर सकते हैं।

सचमुच मैं अन्धेरे युग में जी रहा हूँ !

आशुतोष पाण्डेय

(स्वाधीनता आन्दोलन हिन्दी कविता और प्रतिबंधित हिन्दी कविता)

हिंदी कविता के इतिहास में छायावाद एक महत्त्वपूर्ण और शुरुआती पड़ाव है। 1918 से पहले हिंदी कविता की भाषा ब्रज भाषा थी। छायावाद के दौर में हिंदी कविता की भाषा खड़ी बोली को पूर्णतः स्थापित मान लिया गया। जिसके बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि *यह स्वच्छंद नूतन पद्धति अपना रास्ता निकाल ही रही थी कि श्री रविन्द्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई और कई कवि एक साथ रहस्यवाद और प्रतीकवाद या चित्रभाषा को ही एकांत ध्येय बनाकर चल पड़े। चित्रभाषा या अभिव्यंजन पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया। इस बँधे हुए क्षेत्र के भीतर चलने काव्य ने छायावाद का नाम ग्रहण किया।* छायावादी कविता जैसे ही अस्तित्व में आई। हिंदी कविता आलोचना में एक वाद-विवाद और सम्वाद की परम्परा उसको लेकर चल पड़ी । इस कविता के सिद्धहस्त कवियों में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा थीं। यह दौर देश और विदेश दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण था। एक तरफ जहाँ 1917 में रुसी क्रांति ने दुनिया का ध्यान अपने तरफ खींचा, तो वहीं दूसरे तरफ विश्वयुद्ध ने दुनिया में मानवतावादी सोच को सदमें में डाल दिया।

प्रतिबन्धित हिंदी कविताओं का तत्कालीन प्रासंगिकता और उसका सामाजिक सन्दर्भ उसके प्रतिबंधित होने से ही जहीर हो जाता है। लेकिन बीसवीं सदी के मध्य की रचनाओं की जब भी बात आती है, तो हिंदी कविता आलोचना प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी के बरक्स दिनकर, बच्चन आदि के सामजिक सन्दर्भों और कुछ सतही बहसों तक ही सीमित कर दिया गया है।

भारतीय सन्दर्भ में, 1915 में महात्मा गाँधी का भारत आगमन और भारतीय स्वधीनता आन्दोलन में योग देना । इसके बाद 1919 का जालियांवाला बाग़ हत्याकांड और 1922 का चौरी- चौरा कांड भी इस दौर के कविता आन्दोलन पर अपना छाप छोड़ा । छायावादी कविता ने एक तरह से देशी विषय-वस्तु के साथ विदेशी रूप ग्रहण कर हिंदी कविता आन्दोलन में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई। जैसा की माना जाता है कि 1918 से 1936 तक हिंदी साहित्य और कविता के इतिहास में छायावादी कालखंड था। जिसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को रेखांकित करते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है कि *रविन्द्रनाथ को किसी ज़माने में बँगला का शेली कहा जाता था और निरालाजी को हिंदी का रवीन्द्रनाथ तो नहीं परन्तु यथेष्ट आदर के साथ उनका अनुवर्ती अवश्य कहा जाता था। शेली, ठाकुर और निराला के युगों की परिस्थिति में एक बात समान रूप से विद्यमान है, और वह है पूँजीवाद का प्रारम्भिक विकास तीनों*

युगों में ही यांत्रिक पूँजीवाद से उत्पन्न होने वाली विषम परिस्थितियों के प्रति घोर असंतोष है, इसके साथ ही पूँजीवाद ने पुराने वर्ग शृंखलाओं को झकझोर कर आत्मविश्वासी पथिकों के लिए नए संगठन और नयी प्रगति का मार्ग निश्चित किया, उसकी चेतना भी इन कवियों में विद्यमान है। सामाजिक पृष्ठभूमि में समानता है, तो समाज को प्रतिबिम्बित करने वाले साहित्य में भी समानता होना अनिवार्य है।

रामविलास शर्मा एक तरफ भारत में मौजूद मध्यकालीन वर्ण की संकीर्णताओं के खिलाफ संघर्ष को भी छायावाद की पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार करते हैं। लेकिन यहाँ गौर करने वाली बात है कि उन्होंने उपनिवेशवादी ताकतों द्वारा थोपा हुआ पूँजीवाद को छायावाद के सन्दर्भ में इस्तेमाल नहीं किया। जबकि छायावादी कवि भारतीय सामन्ती प्रथा और उपनिवेशवादी शासनव्यवस्था दोनों ही वर्गों के साथ अपनी रचनाओं के माध्यम से संघर्ष कर रहे थे। जयशंकर प्रसाद ने 1918 में प्रकाशित अपने संग्रह *झरना* में लिखा है कि-

> *किरण! तुम क्यों बिखरी हो आज,*
> *रंगी हो तुम किसके अनुराग,*
> *स्वर्ण सरजित किंजल्क समान,*
> *उड़ाती हो परमाणु पराग।*

प्रसाद उसी नए पूँजीवाद से उत्पन्न हो रहे मानवीय संकट को रेखांकित करते हैं। जिसके बारे में क्रिस हरमन लिखते हैं कि *बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक संसार में हर कहीं पूँजी की मोहर लग चुकी थी। दुनिया में अंटार्कटिका के बर्फीले रेगिस्तानों, अमेजन घाटी के सुदूर जंगलों और न्यू गिनी के कुछ क्षेत्रों को छोड़ शायद ही कोई कोना बचा हो जहाँ पूँजीवाद के दूत सस्ता समान, बाइबिल, विषाणु और बिना कमाए धन की आशा लिए न पहुँच गए हों।*

बहरहाल पूँजी का प्रभाव हर जगह एक जैसा नहीं था। बहुत-सी जगहों पर अभी भी उसका मतलब था पसीना बहाना, स्थानीय उपभोग के लिए नहीं, दूर बैठे पूँजीपति के लिए। पर पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका में उद्योग, परिवहन और कृषि में यंत्रीकरण बढ़ता ही जा रहा था। हरमन जब पूँजी के प्रभाव को एक समान रूप से नहीं देखते हुए उसे श्रम से जोड़ते हैं, तो वहाँ *श्रम* एशिया और भारत के तरफ इशारा करता है। जहाँ पर सस्ते श्रमिक और उत्पादन दोनों ही सुलभ था। दूसरे विज्ञान के उपयोग की सुलभता भी इस मानवीय संकट को बढ़ाने में मददगार हुआ।

छायावाद की इन्हीं सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि के बीच हिंदी में उस दौर में कुछ ऐसी रचनाएँ भी मौजूद थीं। जिन्हें उपनिवेशी ताकतों द्वारा प्रतिबंधित किया गया। इन्हीं कविताओं के संग्रहों को रुस्तम राय 1999 में संग्रहित, सम्पादित और प्रकाशित किया। उन्होंने अपने सम्पादित पुस्तक में- *खून के छींटे* बलभद्र प्रसाद गुप्त द्वारा लिखित कविताओं का संग्रह है। जिन्हें 1930 में प्रकाशित किया गया था। *मुक्त संगीत* अभिराम शर्मा एवं प्रणयेश शर्मा की कविता संग्रह का प्रकाशन 1932 में हुआ था। *विद्रोहणी* और *तूफान* कविता संग्रह प्रह्लाद पाण्डेय *शशि* का है। जिन्हें 1942 और 1943 में प्रकाशित किया गया था।

इन कविता संग्रहों के बारे में रुस्तम राय ने लिखा है कि *कहने की आवश्यकता नहीं कि आज़ादी की लड़ाई की रफ्तार के साथ अंग्रेजी शासन के दमन की रफ्तार तेज हुई। 1857 तक भारतवर्ष पूरी तरह ब्रिटिश साम्राज्य की गिरफ्त में आ चुका था। व्यापारी अब स्वामी बन गए थे। 1857 की विफलता ने भारतीयों का मनोबल क्षय तो किया; किन्तु उन्हें एकता का पाठ भी पढ़ा दिया। भारतेंदु और उनके युग के लेखकों ने अंग्रेजों के शोषण और उनकी दमनमूलक नीति का विरोध करते हुए देश की तत्कालीन दुर्दशा और हीनावस्था के प्रति*

क्षोभ व्यक्त किया। परन्तु महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युग के लेखकों का विरोध क्रमशः कमजोर पड़ता गया। हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु युग वह प्रथम चरण है, जब ब्रितानी ताकतों का प्रतिरोध अपने साहित्य के माध्यम से किया। रुस्तम राय ने ऊपर लिखित क्रिस हरमन और रामविलास शर्मा की बातों को ही प्रतिबंधित हिंदी कविताओं के सम्दर्भ में लिखा है। अब तक हिंदी साहित्य और खासकर हिंदी कविता आलोचना के लिए विविध पद्धतियों का सहारा लेकर आलोचना हो चुकी है, और आलोचना विधा इन विषयों से काफी दूर और आगे बढ़ चुकी है लेकिन –

आह! अमित घायल है फिर भी खुले हैं सीने।
चमका दे बली–वेदी को भी क्यों न अमूल्य नगीने?
परधीन होकर भी हैं यदि कर सकते न गुजारा ।
तो फिर इस जीवन से जीवन–दान क्यों न हो प्यारा?

इन पंक्तियों को आलोचना और इतिहास दोनों के विषय–वस्तु से बाहर रखा गया । जबकि मैनेजर पाण्डेय ने *आलोचना की राजनीति* लेख में लिखा है कि *आधुनिक कल में साहित्य पहले से अधिक राजनीतिक हुआ है । टॉमस मान ने कहा था कि आधुनिक समय में मनुष्य की नियति राजनीति से निर्धारित हो रही है ।*

साहित्य अपने समय और समाज के मनुष्य की स्थिति तथा नियति की चिंता करता है, इसलिए उसमें मनुष्य की नियति को निर्धारित करने वाली राजनीति की चिंता भी मौजूद होती है । ऐसे साहित्य की व्याख्या की कोशिश करने वाली आलोचना राजनीति की उपेक्षा कैसे के सकती है। साहित्यकार समाज से रचना की प्रेरणा ही प्राप्त नहीं करता, वरन वह जिन वास्तविकताओं और आकंक्षाओं की अभिव्यक्ति करता है, वे भी सामाजिक सन्दर्भ से जुड़ी होती हैं और वह सामाजिक सन्दर्भ प्रक्रिया से बनता है। सामाजिक संरचना में वर्ग और विचारधाराएँ होती हैं और उनके बीच टकराहटें भी। जिन रचनाओं में ऐसी टकराहटों की चेतना मौजूद नहीं होती वे अपने समय में और बाद में भी प्रासंगिक नहीं होतीं। ऐसी रचनाओं की आलोचना में उन टकराहटों की पहचान और व्याख्या आवश्यक होती है। जिससे रचना की राजनीतिक चेतना समाने आए। इस प्रक्रिया में आलोचना राजनीतिक बनती है। मैनेजर पाण्डेय की यह बात रचना और रचना की प्रासंगिकता के साथ, उसके सामाजिक सन्दर्भ के तरफ इशारा करती है।

प्रतिबन्धित हिंदी कविताओं का तत्कालीन प्रासंगिकता और उसका सामाजिक सन्दर्भ उसके प्रतिबंधित होने से ही जहीर हो जाता है। लेकिन बीसवीं सदी के मध्य की रचनाओं की जब भी बात आती है, तो हिंदी कविता आलोचना प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी के बरक्स दिनकर, बच्चन आदि के सामजिक सन्दर्भों और कुछ सतही बहसों तक ही सीमित कर दिया गया है। इसलिए बलभद्र प्रसाद गुप्त विशारद *रसिक* ने अपना परिचय देते हुए लिखा–

श्रीकर हो दीनता का दर्प करता हूँ सदा,
तीक्ष्ण तम–तोम हरने के लिए रवि हूँ ।
एकमात्र भारत का पावन पुजारी हूँ मैं,
अग्नि की प्रचंड प्रतिभा का दिव्य छवि हूँ।
शशि–ज्योत्स्ना–सी मेरी कांति–कौमुदी है मंजु,
राजनीति, छत्र–दंड का प्रकांड पवि हूँ।
किसने न विश्व में है मान लिया लोहा मेरा,
शांत क्रान्तिकारी हूँ मैं रसिक सुकवि हूँ।

इन कवियों की कोई साहित्यिक महत्त्वकांक्षा नहीं थी । इन्होने अंग्रेजी हुकूमत के दौर में भारतीय स्थिति को बयान करने, और उस उत्पीड़न को इतिहास में दर्ज कराने के लिए कलम उठाया। *कवि–प्रतिभा* नामक एक कविता में लिखते हैं–

उज्ज्वल धवल धूमकेतु नभ-मंडल से,
टूट टूट कर भूमि पर गिर जाएँगे।
झंडा के झकोरों से न दिन का चलेगा पता,
सघन गगन-मध्य घन घहराएँगे।
वीर-रस-पूर्ण, महाकाव्य लिखने को जब,
सुकवि रसिक निज लेखनी उठाएँगे।

इन पंक्तियों और पूरी कविता को पढ़ने के बाद 1935 में लिखित और *अनामिका* में संग्रहित कविता *सरोज स्मृति* की सहज ही याद आएगी। जब निराला लिखते हैं–

अशब्द अधरों का सुना, भाष,
मैं कवि हूँ, पाया है प्रकाश
मैंने कुछ अहरह रह निर्भर
ज्योतिस्तरणा के चरणों पर ।
जीवित-कविते, शत-शत जर्जर
छोड़ कर पिता को पृथ्वी पर
तू गई स्वर्ग, क्या यह विचार

एक तरफ बलभद्र अंग्रेजी उत्पीड़न को मिटाने के लिए काव्य-रचना का आरम्भ किया तो वहीं, निराला उसी उत्पीड़न और देशी रूढ़िवादिता को नरक के समान बतलाते हैं। निराला की इस कविता पर जब भी बात होती है तो *सम्पादकगण* और *शोकगीत* के रूप में ही चिह्नित होती है। लेकिन निराला और बलभद्र दोनों ही कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से आलोचना की राजनीति और समपादन की राजनीति को तिरछी निगाह से देखने के साथ उनके निगाह में अंग्रेजी उत्पीड़न भी है। *सरोज स्मृति* के बारे में नामवर सिंह लिखते हैं कि *निराला ने अपनी पुत्री सरोज की स्मृति में शोकगीत लिखा और उसमें अपने नीजी जीवन की अनेक बातें साफ-साफ कह डालीं । सम्पादकों द्वारा मुक्त छंद की रचनाओं का लौटाया जाना विरोधियों के शाब्दिक प्रहार, मातृहीन लड़की को ननिहाल में पालन-पोषण, दूसरे विवाह के लिए निरंतर आते हुए प्रस्ताव और उन्हें ठुकराना, सामाजिक रुढ़ियों को तोड़ते हुए एकदम नए ढंग से कन्या का विवाह करना, उचित दवा-दारू के अभाव में सरोज का देहावसान और उस पर कवि का शोकोदगार।* निराला का यह गीत केवल एक सरोज के लिए ही नहीं है, बल्कि देश की पराधीनता की वजह से उत्पन्न संकट के वजह से भारतमाता के सुपुत्रियों के लिए भी है । जिनके माता को गुलामी की जंजीरों ने जकड़ रखा था ।

स्वाधीनता आन्दोलन के दौर के कवियों की कविताओं में व्यक्तिगत पीड़ा के माध्यम से सामाजिक पीड़ा को अभिव्यक्त करने का कार्य, उस दौर के कवियों ने किया है । इसीलिए जन-जन को जागृत करते हैं । निराला ने लिखा कि –

जागो फिर एक बार!
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण-पंख तरुण-किरण
खड़ी खोलती है द्वार-
जागो फिर एक बार !

वहीं बलभद्र प्रसाद लिखते हैं–

जागृति की ज्योति-चंद ज्योत्स्ना जगा दे तू।
चढ़ा दें रसिक प्राण-सुमन समोद हम;-
बलि-वेदी पर, ऐसी लगन लगा दे तू।
भैरवी भयंकरी कराल कलिका-सी फिर,
लेखनी! सदा के लिए भीरुता भगा दे तू।

यहाँ *जाग्रति* या *जागो* दोनों ही भारतीयों को पराधीनता से मुक्ति और अत्याचारों से मुक्ति की उत्कंठा है । जिस कार्य में स्वतन्त्रता सेनानी लगे हुए थे । इसके लिए नामवर सिंह ने लिखा है कि *...बुद्धिजीवी मध्य-वर्ग के नेतृत्व में भारतीय जनता ने अपना राजनीतिक और सामजिक स्वाधीनता के लिए जो संघर्ष किया, उसके कई पहलुओं को छायावाद ने सच्चाई के साथ प्रतिबिम्बित किया और यथाशक्ति उसे आगे बढ़ाने में योग भी दिया ।* नामवर सिंह ने आगे *स्वाधीनता की भावना का उदय पुनरुत्थान-भावना से होता है* कहा

लेकिन पुनरुत्थान की भावना को अभिव्यक्त करने के लिए केवल व्यंजना ही उपयोगी है, जहाँ अत्याचार और पीड़ा को महसूस करने मात्र से ही हृदय कांप उठता हो? अपने *खून के छींटे* कविता संग्रह में बलभद्र प्रसाद ने लिखा है कि–

रक्त-धार से सिंच रहे हैं स्वतन्त्रता की क्यारी।
आज पूर्णतः धधक रही है विप्लव की चिनगारी।
नमक बनाकर जग को दिखलाते निज नमकहलाली।
नवजीवन के लिए पिए लेते हैं विष की प्याली।

इस कविता में नमक सत्याग्रह या दांडी मार्च को सन्दर्भ बनाया गया। लेकिन *नमक* के हवाले से ही देश की निर्धन जनता के हाल को बयाँ किया गया। जिसके लिए लिखा गया कि *देश को आज़ाद कराने वाले दीवाने तुम्हारे इस निर्धनता की नमक अदा कर रहे हैं। जिनके सीनों पर गोलियाँ चलाई जा रही है।* उपर्युक्त कविता का शीर्षक *मतवाला भिक्षुक* है। जिसका प्रकाशन वर्ष 1930 है। प्रथमतः यह कविता महात्मा गाँधी के दांडी मार्च से प्रभावित है। लेकिन 1930 में ही निराला का कविता संग्रह *परिमल* प्रकाशित हुआ। जिसमें *भिक्षुक* कविता संकलित है। निराला ने लिखा–

प्रतिबंधित हिंदी कविताओं में स्वतन्त्रता युगीन फाँसी, कैदी और भगत सिंह, गाँधी और अन्य स्वतन्त्रता सेनानियों को रचना का आधार बनाया गया है। इसी प्रकार एक कैदी शीर्षक नाम से कविता है।

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लुकटिया टेक,
मुट्ठी फटी पुरानी झोली का फैलता–
दो टूक कलेजे के करता पछताता।
पथ पर आता।

निराला के यहाँ पेट और पीठ दोनों मिलकर एक इसलिए हो गया कि देश में कोई ऐसी वस्तु नहीं रही, जिस पर अंग्रेजों ने कर न लगा रखा हो। बलभद्र प्रसाद फिर लिखते हैं–

ऐसी हो गई है हाय! हालत हमारी हीन,
जुल्म हुआ आज राष्ट्रिय गान गाना भी

हो गई पतन की परम पराकाष्ठा है,
जुल्म हुआ आज निज वेदना सुनाना भी
रसिक समस्त विश्व को थे जो खिलाते रहे,
जुल्म हुआ आज उन्हें रुखा सूखा खाना भी
किया था विकास जिन लोगों ने ही सभ्यता का,
जुल्म हुआ उन्हें आज नमक बनाना भी।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि महात्मा गाँधी का 1915 में भारत आगमन हुआ था। उसके बाद 1917 में उन्होंने *चंपारण सत्याग्रह* से स्वाधीनता आन्दोलन में *अहिंसात्मक* आन्दोलन की नींव रखी। जिसे किसान आन्दोलन के नाम से भी जाना जाता है। महात्मा गाँधी ने अपनी आत्मकथा *सत्य के प्रयोग* में लिखा है कि *चम्पारण जनक राजा की भूमि है। जिस तरह चम्पारण में आम के वन है, उसी तरह सन 1917 में वहाँ नील के खेत थे। चम्पारण के किसान अपनी ही जमीन के 3/20 भाग में नील की खेती उसके मालिकों के लिए करने को कानून से बंधे हुए थे। इसे वहाँ 'तीन कठिया' कहा जाता था। बीस कट्ठे का वहाँ एक एक? था और उसमें से तीन कट्ठे जमीन में नील बोने की प्रथा को कठिया कहते थे।* हमें यहाँ *नील दर्पण* (नाटक–1860) को याद करना चाहिए। यह नाटक बंगाल में नील की खेती करने वाले किसानों पर अंग्रेजी अत्याचार का उदहारण है। लेकिन इसी नाटक से एक महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक तथ्य जुड़ा हुआ है कि, 1872 में जब यह नाटक खेला गया तो दर्शकों की भीड़ देख, अंग्रेजी हुकूमत ने 1876 में ड्रैमेटिक परफोर्मेंस कंट्रोल एक्ट को चलन में लाया। जिससे पुस्तकों और रचनाओं को प्रतिबन्धित किया जाने लगा, तो एक तरह से भारत में

प्रतिबंधन की शुरुआत भी *नील* या *किसानों* की आवाज दबाने के लिए हुई। वहीं गाँधी ने इसी आवाज लो लेकर अपने अहिंसात्मक सत्याग्रह की शुरुआत की । जिसके बारे में प्रतिबंधित कवियों ने लिखा–

इस ओर कृषकों की टूटी फूटी झोपड़ी है,
पूँजीपतियों की उस ओर है अटालिका
उस ओर बेबी, बाबा फिरते समोद देखो,
इस ओर रोती क्षुब्ध–गुस्सा दीना बालिका
देवियों कसाले सहती हैं इस ओर हाय!
मौज मारती हैं उस ओर नग्ना कालिका।
रसिक बताओ कैसे स्वागत तुम्हारा करें,
देख लो करुणा–दृश्य तुम भी दीपमालिका।

देश में तत्कालीन शासन की वजह से असामनता बढ़ती जा रही थी । जिसको लेकर स्वतन्त्रता सेनानी और प्रतिबन्धित रचनाकार अपनी आवाज बुलंद कर रहे थे । स्वयं गाँधी ने लिखा *मैं हिटलर की शक्ति का नहीं, एक स्वतंत्र कृषक की शक्ति का अभिलाषी हूँ । मैं इतने वर्षों से कृषक के साथ तादम्य स्थापित करने का प्रयास करता आ रहा हूँ, पर अभी तक इसमें सफल नहीं हो सका हूँ । आज मेरे और किसान के बीच में फर्क यह है कि वह स्वेच्छा से नहीं बल्कि हालातों की मजबूरी की वजह से किसान और मजदूर बना हुआ है, जबकि मैं स्वेच्छा से किसान और मजदूर बनना चाहता हूँ । जब मैं उसे भी स्वेच्छा से किसान और मजदूर बना सकूंगा तो उसे उन जंजीरों को भी तोड़ फेकने में सहायता दे पाउँगा जिनमें आज वह बँधा है और जिनके कारण वह अपने मालिक का हुक्म बजा लाने के लिए मजबूर है।* गाँधी किसानों और जमींदारों के असामनता को पहचानते थे। इसीलिए जमींदारों और किसानों की एकता की बात भी करते थे । अगर भारतीय जमींदारों और किसानों के बीच असमानता और खाई पैदा नहीं हुई होती तो देश के हलात कुछ और होते । जिससे स्वधीनता आन्दोलन के प्रारूप में भी फर्क पड़ता। *लाचारी* नाम के एक प्रतिबन्धित लोकगीत में पं. राजकुमार उपाध्याय लिखते हैं

कहवाँ चौहान कहवाँ राणाप्रताप गइलै ।
धनिया के रोटी जिनके जीवन आधार हो ।
पहरूवै बिना लूट गइलिन।
भारत कै देवी झाँसी रनिया कहाँ गइलिन।
पिठिया पर बांधे आपन राजकुमार हो।
पहरूवै बिना लूट गइलिन।
देसवा के कारण केतने गइले काले पानी भइया।
फंसिया पर झूले भगत सरदार हो।
पहरूवै बिना लूट गइलिन।

प्रतिबंधित हिंदी कविताओं में स्वतन्त्रता युगीन फाँसी, कैदी और भगत सिंह, गाँधी और अन्य स्वतन्त्रता सेनानियों को रचना का आधार बनाया गया है। इसी प्रकार एक *कैदी* शीर्षक नाम से कविता है। जिसमें कैदी कहता है –

विद्रोहात्मक गया विचार मेरा भाषण हलका।
निरपराध की माँगा जाता मुझसे आज मुचलका।
दिया गया हाँ ! ठूँस जेल में जैसे चोर उचक्का।
यह व्यवहार देखकर उनका मैं ही हूँ भौचक्का।

इस पूरी कविता में कैदी देश में फैले न्याय व्यवस्था के हाथों हो रहे अन्याय को बयाँ कर रहा है। उसका जुर्म सिर्फ यहीं है कि वह सत्याग्रही सिपाही है ।

प्रतिबंधित हिंदी कविताओं में देश की आर्थिक बदहाली को सजगता और आक्रमकता से उकेरा गया है । जैसा की हम जानते हैं कि हिन्दी कविता भारतेंदु युग से प्रगतिवाद तक में देश की आर्थिक बदहाली, चाहें गरीबी के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया हो, या चाहें उत्पीड़न के माध्यम से व्यक्त किया गया हो। लेकिन 1947 तक की कविताओं में आर्थिक मुद्दे प्रमुखता से रहे हैं। लेकिन प्रतिबंधित कविताओं में यह मुद्दा तीव्रता और आक्रमकता से अभिव्यक्त किया गया है। *खद्दर* कविता

में अभिव्यक्ति इस प्रकार है–

लन्दन, लिवरपूल लाखों लंकाशायर औ,
मान मैनचेष्टर का धूल में मिलावेगा।
फिर से स्वदेशी व्यवसाय का प्रचार कर,
राष्ट्र की दरिद्रता को खद्दर मिटावेगा।

इन लेखकों को कोई बाहरी विचार या सिद्धांत से मुक्ति की उम्मीद नहीं है। वह भारत के संकट को स्वदेशी तौर–तरीके और विचार या सिद्धांत से हल करने का उम्मीद रखते हैं–

मैं प्रबल सत्याग्रही हूँ,
मृत्यु–पति भी चिर निरंतर
चूमता मेरे चरण द्वय ।
है भरा विष–प्यालियों में,
अमरता का कोष अक्षय।

इसीलिए गाँधी के प्रति प्रतिबंधित हिंदी कविताओं में आशा भरी नजरों से देखा गया है। ये कवि जहाँ भी अपनी निगाह ले जाते है, वहाँ उन्हें खून से लथपथ लाल रहे ही दिखती हैं। जो अंग्रेजी हुकूमत द्वारा उत्पीड़न की निशानी है। ये किसी पशु–बल या अन्याय के प्यासे नहीं हैं, बल्कि इन्हें न्याय और सत्य ही इनको प्यारा है।

हिंदी साहित्य और कविता के इतिहास में शात्रीय रागों की उपेक्षा दिखता है। लेकिन प्रतिबंधित हिंदी कविताओं के कवियों ने अपनी रचनाओं में मुक्ति के गीत को शास्त्रीय रागों में भी गया है। हिंदी की स्वाधीनता आन्दोलन से पहले की कविताओं में निराला ने शास्त्रीय रगों को अपनी कविताओं में सचेतन रूप से इस्तेमाल किया है। रामचन्द्र शुक्ल ने *कविता क्या है* निबन्ध में रागों को भावों से जोड़ते हुए लिखा है कि *कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है । राग से यहाँ अभिप्राय प्रवृति और निवृति के मूल में रहनेवाली अंतःकरणवृति से है । जिस प्रकार निश्चय के लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है उसी प्रकार प्रवृति या निवृति के लिए भी कुछ विषयों का बाह्य या मानस प्रत्यक्ष अपेक्षित होता है । यही हमारे रागों या मनोवेगों के जिन्हें साहित्य में भाव कहते हैं– विषय है।* जब रामचंद्र शुक्ल ने कविता को *सृष्टि के साथ मनुष्य का रागात्मक सम्बन्ध* बताते हैं, तो अभिराम शर्मा, और प्रणयेश शर्मा ने *राग केदार ध्रुवपद* में भारतीय इतिहास के अतीत का सहारा लेते हुआ गाया कि –

भारत के बच्चे–बच्चे में, भर दे भाव महान ।...
प्राची–दिशी की हिलोर
पश्चिम का गहे छोर,
अन्य उभय दिशी को डोर–
खींचे ध्रूव तान–तान।
गूँज उठें मेरे गान।

पूरब की ओर अब स्वाधीनता की लहर थोड़ी ही दूर है। जब सबकी गति समान होगी कोई उच्च–नीच या भेद–भाव नहीं का भय नहीं रहेगा तो–

मन में है रट देश नाम की।
नाच रही नयनों में निशि दिन,
नवल घटा नयनाभिराम की मन में ...

नई सृष्टि के लिए भारत के जन–जन में लहर फ़ैल रही है । देश में फैले अत्याचारों से देश की मिट्टी काली हो चुकी है। जहाँ श्रम और प्रकृति मिल कर देश को अब निर्मल बनाएँगे–

बहु बल धारे– देश हमारे ।
गंगा–यमुना–जल–
अविरल निर्मल,

अब क्रांति इन्हीं नदियों के आसपास है। जो प्रलय के लिए आतुर है। कवि उम्मीद से कहता है –

उठ रही कैसी प्रबल हिलोर!
अरे अरे वह देखो! देखो!! विकट क्रांति का छोर!

और हुकूमत को सावधान करता है कि विप्लववादियों से मत उलझो । यह आग है, तुम्हें झुलसा देंगे। जिन्हें रण में विश्वास है–

आमंत्रण आया वीरों! साजों रण के साज।
सुना दिया है सेनापति ने–
रुचिकर सिंह निनाद ।
चलो–चलो अब मर मिटने का,
ले संजीवन स्वाद।

इन कवियों के ह्रदय में पराधीनता के वजह से हलचल पैदा हो रही है । इसी पराधीनता के फलस्वरूप देश में अत्याचार फैला हुआ है ।

इन कवियों को मजदूर–किसान की व्यथाओं को अपनी रचनाओं में चित्रित करने के लिए भी प्रतिबंधित किया गया । लेकिन इन कवियों ने मजदूरों और किसानों की व्यस्थाओं को, अपनी रचनाओं में भरपूर जगह देने से परहेज नहीं किया है । लिखा की–

जर्जर मेरे टूटे फूटे
छप्पर में चूता है पानी।
किसी एक कोने में सिमटी,
खड़ी भीगती मेरी रानी।

इस कविता का शीर्षक *विद्रोही किसान* है। जिसकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति को कवि ने अपने कविता का कथ्य बनाया है । जहाँ एक तरफ बारिश से बच्चा जड़ा के मारे काँप रहा है, वहीं दूसरी तरफ उसके खेत और किसान है । इस कविता में तीनों ही ऋतुओं में किसान की स्थिति के बरक्स राजमहलों के निवासियों को भी दिखया गया है–

मैंने देखा राजमहल भी,
थाने और कचहरी देखें ।
इधर उधर बंदूक लिए कुछ,
आते–जाते प्रहरी देखे।

इस कविता के अध्ययन के बाद निराला की कविता *वह तोड़ती पत्थर* की याद आना सहज है। लेकिन इस कविता का कथ्य *वह तोड़ती पत्थर* से आगे जाता महसूस होता है । जिसमें थाने, कचहरी और मंदिर–मस्जिद भी है–

मंदिर देखे मस्जिद देखीं,
पंडित और मौलवी देखे ।
शांत और गम्भीर किन्तु कुछ,
आकुल बड़े जोतिषी देखे।

प्रतिबंधित हिंदी कविताओं कथ्य जुल्मों के दौर में साहस और उम्मीदों के आधार पर बुनी गई है । जब देश में स्त्री–पुरुष, बच्चे–जवान और बूढ़े सब पीड़ित हैं। इनके लिए तीनों ही ऋतुएँ उत्पीड़न की ऋतुएँ हैं।

इन सभी जगहों पर किसान को बेदर्दी और अपमान ही मिला । किसानों ने जहाँ तक देखा, वहाँ तक केवल पैसे की पूजा होते देखा था । इससे क्षुब्ध होकर किसान ने तथाकथित सभ्य–संस्कृतियों पर सवाल खड़े किया। अंत में विद्रोही तेवर में कहता है कि, *यह गीत जाकर महलो में सुना दो*। इसी तरह से प्रहलाद पाण्डेय शशि ने मजदूरों की स्थिति का चित्र उकेरा है–

मेरे बच्चे–मेरे राजा,
पानी पी सो रहा रात भर।
सममुच भोर जरुर तुम्हें हम,
देंगे बेटा रोटी लाकर।

किसान की तरह मजदूर का परिवार भी दाने–दाने के लिए तरस रहा है, और एक तरफ धन–सम्पदा का वैभव है, तो दूसरी तरफ गरीबी। किसानों की गरीबी के आलम को दिखलाने के लिए देवनारायण

द्विवेदी ने अपनी प्रतिबन्धित पुस्तक *देश की बात* में कानपुर और पटना के कलक्टरों के हवाले से लिखा है की *कानपुर के सहकारी कलेक्टर मि. बार्ड ने कहा था* –

I have calculated the cost of food of male at £ v.vw s. per annum, of a female £ v.| s. y d. and minor v} s. }d.

मेरे हिसाब से एक पुरुष का वार्षिक खाने–पीने का खर्च 16 रु., स्त्री का 13 रु. 10 आना तीन पैसे और बालक का 9 रु. 5 आना 2 पैसे होता है ।

जहाँ के पूर्ण–व्यस्क आदमियों को दो वक्त खाने के लिए केवल तीन पैसे रोज मिलते हैं, वहाँ के लोगों के सुख–दु:ख का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। जरा बिहार के किसानों का हाल सुनिये। पटना के कलेक्टर ने कहा था कि, – जो किसान सात बीघा जमीन जोतता है, वह–

Can take one full meal insead of two

केवल एक वक्त पेटभर खा सकते हैं ।
गया के कमिश्नर ने लिखा था कि–

Forty percent of the population are insufficiently fed. *चालीस सैकड़ा आदमी भरपेट नहीं खाते। किन्तु ये कथन आज से बहुत पहले के हैं। तब से अबकी दशा और भी अधिक बुरी है।* ध्यान रहे यहाँ देवनारायण द्विवेदी 1870 से 1890 की बात कर रहे हैं। लेकिन जब अबकी स्थिति के तरफ इशारा करते है तो, उनका इशारा 1928–29 ई. की स्थिति की तरफ होता है। लेकिन प्रतिबंधित हिंदी कवियों ने इन जुल्मों को अपना बनाया और लिखा–

इसे भूलना मत ओ जालिम!
जुल्मी बार–बार हैं मरते।
एक बार–बस एक बार ही
वीर मौत से खेला करते

इसके बाद ये कवि अपने वीरों लाला लाजपत राय, सुखदेव, राजगुरु और भगत सिंह को याद करते हुए। वे जालियांवाला बाग जैसी नृशंस हत्याओं को भी नहीं भूलते।

प्रतिबंधित हिंदी कविताओं कथ्य जुल्मों के दौर में साहस और उम्मीदों के आधार पर बुनी गई है । जब देश में स्त्री–पुरुष, बच्चे–जवान और बूढ़े सब पीड़ित हैं। इनके लिए तीनों ही ऋतुएँ उत्पीड़न की ऋतुएँ हैं। जिस बसंत में *होली* जैसा त्यौहार, जो हंसी–खुशी का और मिलन का त्यौहार है। उसी होली को प्रतिबंधित कवि प्रश्नांकित करते हैं, और पूछते हैं कैसे आज मनाऊं होली ? जब –

हम भूखे कंकाल, हमारी,
हड्डी पर सत्ता का नर्तन ।
हाहाकारों की लपटों में,
होता भस्म हमारा जीवन।

गरीबी और भूखमरी से जनता एक तरफ अंग्रेजी हुकूमत से उत्पीड़ित है। वहीं दूसरी तरफ सम्प्रदायिक ताकतों ने भी अपना पैर फैला दिया। जिससे उन्हें अनेक स्तरों पर संघर्ष करना पड़ रहा है। जर्मन कवि ब्रेख्त ने 1936 के आसपास एक कविता *अगली पीढ़ी के लिए* लिखी। जिसमें उन्होंने लिखा कि *सचमुच मैं अन्धेरे युग में जी रहा हूँ।* इस पंक्ति को सामने रख जब हम प्रतिबंधित कविताओं का अध्ययन करेंगे तो यही पाएँगे कि 1947 के पहले का भारतीय समाज और रचनाशीलता सचमुच अँधेरे से उजाले के लिए संघर्ष कर रही था।

सन्दर्भ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* कमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ – 438
2. *निबन्धों की दुनिया,* डॉ. रामविलास शर्मा, प्र.

सम्पा. निर्मला जैन, सम्पा. रामेश्वर राय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ – 50

3. Access date – ®x.®}.w®w®, http://kavitakosh.org/kk/%E®%Ay%~z%E®%Ay%BF%E®%Ay%B®%E®%Ay%Ax_/_%E®%Ay%~C%E®%Ay%AF%E®%Ay%B{%E®%Ay%}w%E®%Ay%~z%E®%Ay%B®_%E®%Ay%AA%E®%Az%}D%E®%Ay%B®%E®%Ay%B}%E®%Ay%BE%E®%Ay%A{

4. क्रिस हरमन, *विश्व का जन इतिहास*, अनु. लाल बहादुर वर्मा, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ, 331

5. भूमिका से, रुस्तम राय, *प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य भाग– दो*, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

6. समर्पण खून के छीटे से, बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद *रसिक, खून के छीटे* रुस्तम राय (सम्पा.), राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली

7. मैनेजर पाण्डेय, आलोचना की समाजिकता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठः 22

8. बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद *रसिक, खून के छीटे* रुस्तम राय (सम्पा.), राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ : 13

9. वहीं, पृष्ठ– 14

10. *सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला* , रामविलास शर्मा (सम्पा.), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ : 80

11. *नामवर सिंह, छायावाद*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 20

12. *सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला*, रामविलास शर्मा (सम्पा.), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ :50

13. बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद *रसिक, खून के छीटे* रुस्तम राय (सम्पा.), राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ : 11

14. नामवर सिंह, *छायावाद*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 72

15. बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद *रसिक, खून के छीटे* रुस्तम राय (सम्पा.), राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ : 15

16. Access date – ®x.®}.w®w®, http://kavitakosh.org/kk/%E®%Ay%AD%E®%Ay%BF%E®%Ay%~z%E®%A

z%}D%E®%Ay%B|%E®%Az%}v%E®%Ay%~z_/_%E®%Ay%B}%E®%Az%}w%E®%Ay%B®%E®%Az%}D%E®%Ay%AF%E®%Ay%~z%E®%Ay%BE%E®%Ay%}w%

E®%Ay%Ay_%E®%Ay%Ay%E®%Az%}D%E®%Ay%B®%E®%Ay%BF%E®%Ay%

AA%E®%Ay%BE%E®%Ay%A®%E®%Az%}®_%ww%E®%Ay%A}

%E®%Ay%BF%E®%Ay%B®%

E®%Ay%BE%E®%Ay%Bw%E®%Ay%BE%ww

17. बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद *रसिक, खून के छीटे* रुस्तम राय (सम्पा.), राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ – 22

18. मोहनदास करमचंद गाँधी, सत्य के प्रयोग, पृष्ठ 440 Pdf, mkgandhi.org/ebks/hindi/gandhi-autobiography-hindi.pdf

19. बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद *रसिक, खून के छीटे* रुस्तम राय (सम्पा.), राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ –30

20. मोहनदास करमचंद गाँधी, महात्मा के विचार, खेतिहर किसान, श्रम, भाग 8 Pdf, https://www.mkgandhi.org/ebks/hindi/Mahatma-Gandhi-ke-Vichaar.pdf

21. पं. राजकुमार उपाध्याय वैद्य, *लाचारी*, रुस्तम राय सम्पा, प्रतिबंधित हिंदी साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 263

22. बलभद्रप्रसाद गुप्त विशारद *रसिक, खून के छीटे* रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य,

भाग 2 राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ –32

23. वहीं, पृष्ठ : 33

24. प्रह्लाद पाण्डेय *शशि, विद्रोहिणी,* रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, भाग 2 राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ –158

25. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रन्थावली भाग 3, ओमप्रकाश सिंह (सम्पा.), प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, पृष्ठ–54

26. अभिराम शर्मा, प्रणयेश शर्मा, *मुक्ति संगीत,* रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, भाग 2 राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 85

27. वहीं, पृष्ठ : 86

28. वहीँ, पृष्ठ : 87

29. वहीं, पृष्ठ –88

30. वहीँ, पृष्ठ: 94

31. प्रहलाद पाण्डेय *शशि, तूफान,* रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, भाग 2 राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ –215

32. वहीं, पृष्ठ: 216

33. वहीं, पृष्ठ : 221

34. देवनारायण द्विवेदी, *देश की बात,* मैनेजर पाण्डेय(सम्पा), स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 85

35. प्रहलाद पाण्डेय *शशि,* तूफान, रुस्तम राय (सम्पा.), प्रतिबन्धित हिंदी साहित्य, भाग 2 राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ –209

36. वहीं, पृष्ठ : 237

***

हिन्दी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय

Email:-ashutosh@uohyd.ac.in

मो. +94 9452806335

परमआवश्यक सूचना

पाठकवृंद/ग्राहकगण ध्यान दें

लेखकों और पाठकों तक मधुमती की पहुँच सुनिश्चित करने के क्रम में राजस्थान साहित्य अकादमी आगामी अंकों से संदेश सेवा (Massaging Service) आरंभ करने जा रहा है। अतः मधुमती के समस्त ग्राहकों से आग्रह है कि वे अपने–अपने मोबाइल नं. अविलम्ब कार्यालय समय में मो. 09214873143 और कार्यालय नं. 0294-2461717 पर अथवा madhumati.udaipur@ gmail.com पर ई–मेल पर उपलब्ध करावें। आपका सहयोग हमारी सेवा की गुणवत्ता और व्यवस्था को मजबूत बनाता है।